इकाई–1 स्वास्थ्य शिक्षा और जीवन–विज्ञान

पाठ–क

स्वास्थ्य की अवधारणा एवं परिभाषाएँ, निर्धारक तत्त्व, पर्यावरण और स्वास्थ्य के अन्तर्सम्बन्ध

प्रिय विद्यार्थियों,

बी.ए. द्वितीय वर्ष में आपका स्वागत है। प्रथम वर्ष में आपने काफी अध्ययन किया, जिसका परिणाम अच्छे अंकों के रूप में आपको प्राप्त हुआ। अब बी.ए. द्वितीय वर्ष में भी आपको अध्ययन में काफी श्रम करना है, इस संकल्प के साथ जीवन–विज्ञान—द्वितीय–पत्र 'जीवन विज्ञान एवं स्वास्थ्य' का अध्ययन प्रारम्भ करते हैं।

हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं—

उद्देश्य

1. आप स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होंगे।
2. स्वास्थ्य की अवधारणा को समझ सकेंगे।
3. विभिन्न व्यक्तियों तथा संस्थाओं के द्वारा स्वास्थ्य को किस रूप में परिभाषित किया गया, उसको जान सकेंगे।
4. वे कौन–कौन से तत्त्व हैं, जिनसे स्वास्थ्य निर्धारित होता है, उन्हें ज्ञात कर सकेंगे।
5. पर्यावरण तथा स्वास्थ्य के अन्तर्सम्बन्धों को आप समझ सकेंगे।
6. विश्व के चुनिन्दा प्रदूषित शहरों के विषय में आपको ज्ञान होगा, जिससे आपकी जागरूकता बढ़ेगी।
7. पर्यावरण के लिए आप क्या कर सकते हैं, यह जान सकेंगे।

विषय–वस्तु

1.0 स्वास्थ्य की अवधारणा
  1.1 जैव–चिकित्सकीय अवधारणा
  1.2 पारिस्थितिकीय अवधारणा
  1.3 मनोसामाजिक अवधारणा
  1.4 समग्र स्वास्थ्य अवधारणा
2.0 स्वास्थ्य की परिभाषाएँ
3.0 स्वास्थ्य के निर्धारक कारक
  3.1 आनुवांशिकता
  3.2 पर्यावरण
  3.3 जीवन शैली
  3.4 सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ
  3.5 स्वास्थ्य सेवाएँ
  3.6 अन्य कारक
4.0 पर्यावरण और स्वास्थ्य के अन्तर्सम्बन्ध
  4.1 जल प्रदूषण
  4.2 वायु प्रदूषण
  4.3 मृदा प्रदूषण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.4 ध्वनि प्रदूषण

4.5 रेडियोधर्मी प्रदूषण

5.0 संसार के प्रमुख प्रदूषित शहरों की स्थितियां

6.0 स्वस्थ पर्यावरण के उपाय

7.0 सारांश

8.0 प्रश्नावली

1.0 स्वास्थ्य की अवधारणा

स्वास्थ्य जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। इसकी अवधारणा को समझने के लिए विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी स्वास्थ्य संबंधी अवधारणाओं को समझना होगा, क्योंकि सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसे न केवल अलग-अलग रूप से परिभाषित किया गया है बल्कि उन क्षेत्रों में इसके सिद्धान्त भी अलग-अलग है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में नवीन शोधों के आधार पर स्वास्थ्य संबंधी नित नई विचारधाराएँ सामने आने से इसकी व्याख्याओं में भी समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। स्वास्थ्य को एक व्यक्तिगत समस्या के साथ-साथ मानवीय, सामाजिक एवं पर्यावरणीय लक्ष्य के रूप में भी देखा गया है। इस दृष्टि से स्वास्थ्य की निम्नलिखित अवधारणाएँ मुख्य हैं—

1. जैव-चिकित्सकीय अवधारणा
2. पारिस्थितिकीय अवधारणा
3. मनोसामाजिक अवधारणा
4. समग्र-स्वास्थ्य अवधारणा।

1.1 जैव-चिकित्सकीय अवधारणा

व्यक्ति को स्वस्थ तब कहा जाता है जब उसे कोई रोग नहीं होता है अर्थात् रोग न होने की अवस्था स्वास्थ्य है। इस विचारधारा के आधार पर ''जैव-चिकित्सकीय अवधारणा'' का जन्म हुआ। इस अवधारणा के आधार पर ''रोगों के रोगाणु सिद्धान्त'' का विकास हुआ। इस सिद्धान्त के आधार पर विभिन्न बीमारियों तथा उनके रोगाणुओं की खोज की गई तथा इन रोगाणुओं को समाप्त करने के उपाय भी खोज लिये गये। निश्चित ही यह सिद्धान्त प्राणी जगत् के साथ-साथ वनस्पति जगत् के लिए भी वरदान सिद्ध हुआ है लेकिन इसमें स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक व अन्य कारकों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया परिणामत: चिकित्सा विज्ञान इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के बाद भी अनेक बीमारियों, जैसे—कुपोषण, नशे की लत, पर्यावरण-प्रदूषण, मानसिक रोग आदि का कोई सफल निदान नहीं कर सका।

1.2 पारिस्थितिकीय अवधारणा

विभिन्न समस्याओं के निवारण में चिकित्सा विज्ञान की असफलताओं ने अन्य अवधारणाओं को जन्म दिया। उनमें से एक प्रमुख ''पारिस्थितिकीय अवधारणा'' है। **पारिस्थितिकी, जीवों तथा उनके पर्यावरण के परस्पर संबंधों का विज्ञान है।** पारिस्थितिकीविदों ने एक परिकल्पना प्रस्तुत की, जिसके अनुसार स्वास्थ्य मानव और उसके पर्यावरण के बीच एक शक्तिशाली संतुलन की अवस्था है तथा बीमारी उसमें असंतुलन का परिणाम। पर्यावरणविदों के अनुसार **स्वास्थ्य वह अवस्था है, जिसमें असुविधा तथा दर्द न्यूनतम् होते हैं तथा पर्यावरण के साथ सतत् सामंजस्य बना रहता है, जिसके परिणाम स्वरूप सभी शारीरिक एवं मानसिक क्रियाएँ उच्चतम् स्तर पर चलती रहती हैं।** मानव की पारिस्थितिकीय एवं सांस्कृतिक संतुलन की क्षमता में नकारात्मक परिवर्तन न केवल रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है बल्कि इससे खाद्य पदार्थों की उपलब्धता तथा जनसंख्या विस्फोट पर भी असर पड़ता है, जो भविष्य में स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। इस अवधारणा के द्वारा दो मुद्दे प्रमुखता से उठाये जाते हैं—प्रथम अपूर्ण मानव, द्वितीय अपूर्ण पर्यावरण। अपूर्ण मानव से तात्पर्य मानव के असंतुलित व्यवहार से है, जबकि अपूर्ण पर्यावरण से आशय पर्यावरण के अनिवार्य घटकों के असंतुलन से है। इन दोनों के मध्य अगर किसी को सर्वाधि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ाक हानि होती है तो वह है—**स्वास्थ्य**। नवीन शोधों के अनुसार प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति मानव का सामंजस्यपूर्ण और संतुलित व्यवहार अच्छे स्वास्थ्य और लम्बी उम्र का जन्म देता है। जो तत्त्व पर्यावरण के घटक तत्त्व हैं, उन्हीं तत्त्वों से व्यक्ति का निर्माण तथा विकास होता है इसलिए व्यक्ति और पर्यावरण के मध्य आवश्यक तत्त्वों का लेन-देन अनवरत चलता रहता है, जिससे निरन्तर व्यक्ति का चहुंमुखी विकास होता रहता है एवं व्यक्ति स्वस्थ रहता है। इसलिए लेन-देन के इस क्रम में निरन्तरता तथा संतुलन आवश्यक है।

1.3 मनोसामाजिक अवधारणा

सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में वर्तमान में किये गये शोधों से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वास्थ्य का दायरा केवल जैव-चिकित्सा तक ही सीमित नहीं है बल्कि इस पर सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक व अन्य कारकों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक रीति-रिवाज व्यक्ति को घिसी-पिटी आधारहीन लीक पर चलने को विवश करते हैं जबकि कमजोर आर्थिक स्थिति में व्यक्ति स्वास्थ्य के लिए आवश्यक न्यूनतम सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं कर पाता है। समाज विशेष के प्रचलित नियम व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर कर देते हैं। राजनैतिक कारणों से सरकारी सुविधाएँ जन-सामान्य तक नहीं पहुंच पाती हैं। मनोवैज्ञानिक स्थितियां यदि विपरीत हुई तो व्यक्ति तनाव, कुण्ठा, अवसाद आदि रोगों से ग्रसित हो सकता है। अत: जब किसी समाज, राज्य या राष्ट्र विशेष के स्वास्थ्य का आकलन करते हैं तब उपरोक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है।

1.4 समग्र अवधारणा

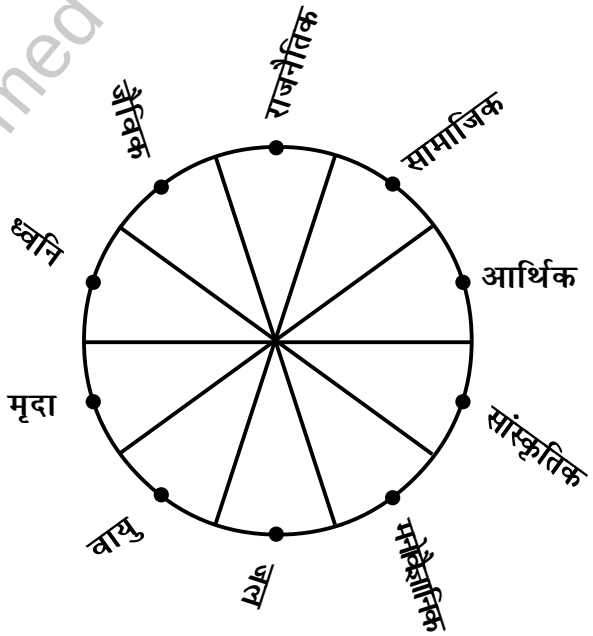

अगर उपरोक्त प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अवधारणा को मिला दिया जाए तो स्वास्थ्य की समग्र अवधारणा सामने आ जाती है अर्थात् समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा इन सभी कारकों को एक साथ सम्मिलित करके प्राप्त की जा सकती है। इस अवधारणा के अनुसार स्वास्थ्य एक ऐसी गेंद है, जिसमें कई चैम्बर या कक्ष हैं। प्रत्येक कक्ष में हवा जाने की अलग-अलग व्यवस्था है। गेंद तभी फूली हुई होगी जब प्रत्येक कक्ष में पूर्ण हवा भरी हुई हो। स्वास्थ्य रूपी गेंद के चैम्बर हैं—रोग मुक्ति, शुद्ध हवा, शुद्ध जल, अप्रदुषित मृदा, कम शोरगुल तथा सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक मजबूती।

समग्र अवधारणा में सभी कारकों को साथ लेकर व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वास्थ्य को पर्यावरण के संदर्भ में देखा जाता है और फिर उसके उच्चतम स्तर को प्राप्त करने की दिशा में सार्थक प्रयास किया जाता है अर्थात् समाज के सभी घटक जैसे—शिक्षा, भोजन, रोजगार, आवास, सामाजिक व मानसिक दशाएँ आदि, स्वास्थ्य को किसी-न-किसी रूप से प्रभावित करते हैं परन्तु सभी का लक्ष्य होता है—अच्छे स्वास्थ्य की सुरक्षा एवं संवर्धन।

स्वास्थ्य के संबंध में भारतीय प्राचीन मान्यता यह है कि स्वस्थ मन, स्वस्थ शरीर, स्वस्थ परिवार के लिए स्वस्थ वातावरण आवश्यक है। इसीलिए भारतीय सभ्यता में जल, भूमि, वायु, दिशा, वनस्पति, जीव आदि को सम्मानजनक स्थान दिया गया है।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—जैव-चिकित्सकीय अवधारणा मे क्या कमियाँ हैं?

प्रश्न—मनो-सामाजिक अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.0 स्वास्थ्य की परिभाषाएँ

स्वास्थ्य विज्ञान को अंग्रेजी भाषा में हाइजीन (Hygiene) कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा में 'हाईजिया' (Hygea) शब्द से हुई है। 'ग्रीक' को पौराणिक गाथाओं में 'हाईजिया' स्वास्थ्य की देवी का नाम है। इस देवी को यूनान के निवासी स्वास्थ्य का रक्षक मानते थे। इस प्रकार 'हाइजीन' शब्द का अर्थ 'स्वास्थ्य रक्षा' से संबंधित है। 'स्वास्थ्य' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण हेल्थ (Health) है, जिसका अर्थ है—सुरक्षित व सुन्दर रहना। शब्दकोष के अनुसार शरीर, मन और आत्मा का प्रसन्नचित्त और निरोग रहना ही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. शरीर, मन तथा चेतना की ओजस्वी अवस्था, जिसमें समस्त शारीरिक बीमारी और दर्द का अभाव हो, की स्थिति को स्वास्थ्य कहते हैं। —**वेब्सटर**

2. शरीर की रचना और क्रिया की ऐसी सापेक्ष साम्यावस्था जो किसी भी प्रतिकूल स्थिति में शरीर को सफलतापूर्वक, संतुलित एवं जीवन्त रखती है, स्वास्थ्य कहलाती है। स्वास्थ्य शरीर के आन्तरिक अवयवों और इन्हें आहत करने वाले कारकों के बीच निष्क्रिय प्रक्रिया न होकर इन दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की सक्रिय प्रक्रिया है। —**पर्किन्स**

3. शरीर और मन की तेजपूर्ण स्थिति, ऐसी अवस्था जिसमें समस्त शारीरिक और मानसिक कार्य समय से और पूरी क्षमता से सम्पादित हो रहे हों, ऐसी अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं। —**ऑक्सफोर्ड इंग्लिश कोष**

4. स्वास्थ्य जीवन का वह गुण है, जो व्यक्ति को अधिक सुखी ढंग से जीवित रहने तथा सर्वोत्तम रूप से सेवा करने के योग्य बनाता है। —**जे.एफ. विलियम्स**

5. स्वास्थ्य वस्तु अवस्था न होकर मानसिक अवस्था है। —**मेरीबेकरएड्डी**

6. किसी आनुवांशिक और पर्यावरणीय स्थिति में मनुष्य के जीवन चर्या का ऐसा गुणवत्तापूर्ण स्तर, जिसमें उसके द्वारा सारे कार्य यथोचित समय और सुचारू रूप से सम्पादित किये जा रहे हों, स्वाथ्य कहलाता है। —**विश्व स्वास्थ्य संगठन (नं. 137) 1957**

7. स्वास्थ्य वह दशा है, जिससे शरीर और मस्तिष्क के समस्त कार्य सामान्य रूप से सक्रियतापूर्वक सम्पन्न होते हैं। —**टैबर मेडिकल इंसाइक्लोपीडिया**

8. जीवन का ऐसा उपक्रम, जो व्यक्ति को प्रतिकूल परिस्थितियों और अपूर्व विश्व में सुखपूर्वक जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करता है, स्वास्थ्य कहलाता है। —**डयूवोस, आर., 1968**

9. **समदोषः समानिश्य समधातुमल क्रिया।**
प्रसन्नात्येन्द्रियमनाः स्वस्था इत्ययिधीयते।।

अर्थ—वात, पित्त एवं कफ—ये त्रिदोष सम हों, जठराग्नि, भूताग्नि आदि अग्नि सम हो, धातु एवं मल, मूत्र आदि की क्रिया विकार रहित हो तथा जिसकी आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हों, वही स्वस्थ है। —**आयुर्वेद**

10. संस्कृत व्युत्पत्ति के अनुसार—''स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थाः'' जो स्व में रहता है, वह स्वस्थ है।

11. स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक संतुलन की अवस्था है, केवल रोग या अपंगता का अभाव नहीं। —**विश्व स्वास्थ्य संगठन, 1948**

वर्तमान में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस परिभाषा में कुछ संशोधन किया है, जिसमें शारीरिक, मानसिक और सामाजिक संतुलन के साथ आर्थिक एवं सामाजिक रूप से उपयोगी जीवन को स्वास्थ्य कहा गया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा की आलोचना यह कहकर की गई कि यह मात्र आदर्शवादी है, इसमें व्यवहारिकता की कमी है। आलोचना करने वालों का कहना है कि विश्व में शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा होगा जो इस परिभाषा पर खरा उतर सके। इस दृष्टि से संसार का प्रत्येक व्यक्ति अस्वस्थ है। आलोचना के बाद भी यह परिभाषा सर्वाधिक मान्य है तथा स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में विश्व स्वास्थ्य संगठन की इसी परिभाषा को आधार बनाये जाने की स्वीकृति प्राप्त है।

बोध–प्रश्न

प्रश्न—विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपनी स्वास्थ्य की परिभाषा में क्या परिवर्तन किया?

प्रश्न—स्वास्थ्य की कोई दो परिभाषाएँ लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.0 स्वास्थ्य के निर्धारक कारक

स्वास्थ्य के अनेक कारक हैं। उनमें से कुछ कारक आंतरिक-वैयक्तिक हैं तथा कुछ कारक बाह्य सामाजिक वातावरण द्वारा प्रदत्त। मूलत: स्वास्थ्य में कमी के दो मुख्य समूह कारण होते हैं—आनुवांशिक तथा वातावरणीय। अच्छे स्वास्थ्य के लिए इन दोनों में आपसी तालमेल होना अति-आवश्यक है। तालमेल में कमी स्वास्थ्य को खराब कर सकती है। अत: स्वास्थ्य आंतरिक और बाह्य कारणों के परस्पर संतुलित या असंतुलित क्रियाओं पर निर्भर करता है। उक्त दोनों समूह कारकों में महत्त्वपूर्ण कारक निम्न हैं—

1. आनुवांशिकता (Heredity),
2. पर्यावरण (Environment),
3. जीवनशैली (Lifestyle),
4. सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां (Socio-economic conditions),
5. स्वास्थ्य सेवाएँ (Health services),
6. अन्य कारक (Other factors)।

3.1 आनुवांशिकता (Heredity)

मनुष्य सहित सभी उच्च कोटि के जीवों में लिंग अलग-अलग होते हैं अत: संतानोत्पत्ति के लिए लैंगिक सहवास आवश्यक है, जिसमें पुरुष के शुक्राणु का मादा के डिम्ब के साथ संयोग होता है। मानव शरीर की कोशिकाओं में केन्द्रक के भीतर गुणसूत्र पाये जाते हैं। सभी जीवों में गुणसूत्रों की संख्या में अंतर होता है। मनुष्य में इनकी संख्या 23 जोड़े अथवा 46 होती है। इनमें से 23 गुणसूत्र माता से तथा 23 गुणसूत्र पिता से आते हैं। संतान में इनकी पुन: व्यवस्था की प्रक्रिया होती है, जिससे प्रभावी जीन (Genes) के लक्षण संतान में दिखाई देने लगते हैं। जीन प्रत्येक क्रोमोसोम में एक विशेष प्रकार के सूक्ष्म कण होते हैं। ये जीन ही आनुवांशिक लक्षणों के पारगमन के लिए उत्तरदायी होते हैं, जैसे—कद, त्वचा का रंग, आंखों का रंग आदि। इसके साथ ही कुछ आनुवांशिक रोगों, जैसे—हीमोफीलिया, रंगांधता, मधुमेह आदि के लिए भी जीन ही उत्तरदायी होते हैं।

3.2 पर्यावरण (Environment)

मानव स्वास्थ्य से जुड़े पर्यावरण को दो भागों में बांटा जा सकता है—आंतरिक तथा बाह्य। इनमें आंतरिक पर्यावरण का संबंध शरीर की प्रत्येक कोशिका, अंग, तंत्र तथा इनके आपसी तालमेल के अतिरिक्त इनके द्वारा की जाने वाली यांत्रिक एवं जैव-रासायनिक क्रियाओं के बीच संतुलन और साम्यावस्था से है। ये विविध प्रक्रियाएँ ही हमारे स्वास्थ्य का निर्धारण करती हैं। बाह्य पर्यावरण को पुन: भौतिक, जैविक एवं मनोसामाजिक श्रेणी में निम्न प्रकार बांटा जा सकता है—

- **भौतिक**—सर्दी, गर्मी, नमी, बरसात, जल, वायु, मृदा आदि।
- **जैविक**—जीव, जन्तु, पेड़-पौधे आदि।
- **मनोसामाजिक**—आवास, रहन-सहन, संस्कृति, रीति-रिवाज, पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियां, उद्योग, आर्थिक स्थितियां आदि।

उपरोक्त तीनों प्रकार के बाह्य पर्यावरण कारक आपस में एक-दूसरे से संबद्ध हैं। ये सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। अच्छे स्वास्थ्य के लिए दो तरफा प्रयास आवश्यक है। प्रथम हम अपने आपको बाह्य पर्यावरण के अनुकूल बनायें, द्वितीय पर्यावरण को विकृत होने से बचाया जाए, जिससे वह हमारे अनुकूल बना रहे। बाह्य पर्यावरण के ठीक रहने से आन्तरिक पर्यावरण स्वत: ही अनुकूल कार्य करता रहता है।

3.3 जीवन शैली (Life Style)

जीवन शैली में कई बातें शामिल होती हैं, जैसे—व्यक्तिगत आदतें, दैनिक दिनचर्या, व्यक्ति का आचरण, स्वयं के मूल्य, सामाजिक मूल्य एवं परम्पराओं का निर्वहन, सांस्कृतिक तौर-तरीका आदि। यह सभी बातें व्यक्ति अपने माता-पिता, मित्र, सहपाठी,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शिक्षण संस्थाओं, साधु-साध्वियों, समाज, मीडिया आदि से सीखता है। इन सबका प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। वर्तमान में गुटखा, पान, सिगरेट आदि ऐसी आदतें हैं, जो हमारी आवश्यकता नहीं हैं, हमारे देश की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं है, फिर भी बहुत बड़ी संख्या इनका उपयोग करती है, जिससे स्वयं का तथा सम्पर्क में रहने वालों का स्वास्थ्य खराब होता है। वैज्ञानिक शोधों से यह पता चलता है कि जीवनशैली एवं स्वास्थ्य के मध्य गहरा सम्बन्ध है। आज के इस औद्योगिक युग में संघर्ष बढ़ा है, जिस कारण मनुष्य यंत्रवत जीवन यापन कर रहा है, जिसके कारण हृदयरोग, मोटापा, मधुमेह, तनाव, अवसाद, कुण्ठा, नशे की लत जैसी बीमारियां तेजी से फैल रही हैं। हम अपनी जीवनशैली में परिवर्तन कर इन बीमारियों से बच सकते हैं। इसके लिए हमें निम्न बातों पर ध्यान देना होगा—

1. फास्ट फूड त्याग कर सात्विक व पौष्टिक भोजन लेना होगा।
2. देर से सोना तथा देर से जागना बन्द कर जल्दी सोना तथा सूर्योदय से पूर्व जागना होगा।
3. स्वयं, परिवार, समाज तथा व्यवसाय के मध्य सामंजस्य रखना होगा।
4. नशे से दूर रहना होगा।
5. सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करना होगा।
6. दैनिक जीवन में आसन, प्राणायाम एवं ध्यान को अपनाना होगा।
7. 'संयम ही जीवन' यह महामंत्र जीवन में अपनाना होगा।

3.4 सामाजिक आर्थिक परिस्थितियां (Socio-Economic Condition)

विभिन्न शोधों एवं सर्वेक्षणों का निष्कर्ष यह दर्शाता है कि स्थान विशेष की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां वहां के निवासियों के स्वास्थ्य के स्तर को प्रभावित करती हैं। यह स्तर सामाजिक-आर्थिक विकास के अनुरूप बदलता रहता है। सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय, शिक्षा, पोषण, रोजगार के अवसर, जीवन-स्तर, राजनैतिक स्थिति आदि पर विचार किया जाता है।

किसी भी राष्ट्र या समुदाय के **आर्थिक स्तर** का मूल्यांकन प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय की गणना के माध्यम से होता है। किसी राष्ट्र की क्रय-विक्रय शक्ति, नागरिकों का जीवन स्तर एवं जीवन की गुणवत्ता, रोगों की उत्पत्ति तथा रोगों के प्रति जन-साधारण की प्रतिक्रिया का निर्धारण भी आर्थिक स्तर के आधार पर ही होता है। आर्थिक स्तर मजबूत होने पर स्वास्थ्य संवर्धन के प्रति जागरूकता बढ़ती है जबकि कमजोर आर्थिक स्तर स्वास्थ्य संवर्धन के प्रति जागरूकता में कमी लाता है।

आर्थिक स्तर ऊँचा होने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि स्वास्थ्य बहुत ऊँचे स्तर का ही होगा, क्योंकि यह सामान्यत: देखा गया है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्रों में हृदय-रोग, मधुमेह, मोटापा जैसी गंभीर बीमारियाँ बहुत अधिक हो रही हैं।

शैक्षणिक स्तर भी जन-सामान्य के स्वास्थ्य स्तर पर प्रभाव डालता है। विशेष रूप से महिला शिक्षा के द्वारा सामाजिक व वैयक्तिक स्वास्थ्य को ऊँचा उठाने में महत्त्वपूर्ण योगदान मिला है। कुपोषण, निर्धनता, शिशु मृत्यु दर जैसी स्वास्थ्य समस्याएँ जन-निरक्षरता के साथ बढ़ती हैं। अगर शिक्षा समुचित ढंग से उपलब्ध करवायी जाये तो इन स्वास्थ्य समस्याओं को नियंत्रित करने में काफी सहयोग मिलता है। इसलिए शिक्षा के माध्यम से भी स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता को बढ़ाया जा सकता है।

व्यवसाय भी स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है। अपने व्यवसाय से संतुष्ट व्यक्ति सदैव प्रसन्न और स्वस्थ अनुभव करता है। इसके विपरीत असंतुष्ट व्यक्ति भविष्य के प्रति चिंतित रहता है, साथ ही उदासीन और रुग्ण हो जाता है। व्यावसायिक कार्यों के प्रति उदासीन होने पर व्यक्ति में हीन भावना आ जाती है। ऐसी स्थिति लम्बे समय तक रहने पर व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक कष्ट उठाता है, जिससे अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक रोग हो जाते हैं, जो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। अतएव स्वस्थ बने रहने के लिए व्यवसाय के प्रति पूर्ण संतुष्टि का होना भी आवश्यक है। किसी भी राष्ट्र की राजनैतिक व्यवस्था का भी स्वास्थ्य पर प्रभाव देखा जा सकता है। जब स्वास्थ्य सेवाओं का राजनीतिकरण हो जाता है तो वे सेवाएँ जनता तक समय पर नहीं पहुंच पाती हैं, जिससे सही समय पर स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ नहीं मिल पाता। यह स्थिति उस समय और विकराल रूप ले लेती है, जब बहुदलीय सरकार हो। ऐसे में हर दल की अपनी नीतियां, अपने कार्यक्रम, अपने उद्देश्य होते हैं। जिसके कारण सही व एक नीति का निर्माण नहीं हो पाता। स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा उठाने के लिए राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत संसाध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ानों के आवंटन, जनशक्ति के उपयोग की नीति, उपयोगी व परिष्कृत तकनीक का चुनाव आदि का सही निर्णय मुख्य है। अत: इन सभी के सही निर्णय के द्वारा स्वास्थ्य के स्तर को सुधारा जा सकता है।

3.5 स्वास्थ्य सेवाएँ (Health Services)

विश्व के सभी देशों तथा राज्यों की सरकारें अपने नागरिकों के अच्छे स्वास्थ्य के लिए विविध प्रकार के कार्यक्रम संचालित करती हैं, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति एवं समुदाय को रोगों से मुक्त करना, रोगों की रोकथाम करना आदि उद्देश्य सम्मिलित होते हैं। इन कार्यक्रमों में गर्भवती महिलाओं की देखभाल, सुरक्षित प्रसव, रोगों की रोकथाम के लिए जच्चा-बच्चा का समय-समय पर टीकाकरण, बीमारी फैलने वाले गंदे स्थानों की सफाई, स्वच्छ जल की उपलब्धता, जनसंख्या नियंत्रण, विभिन्न बीमारियों से बचाव के लिए टीकाकरण करना, ड्राप्स पिलाना, शुद्ध एवं रोगमुक्त आहार की उपलब्धता आदि है।

जिन देशों में पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएँ हैं तथा ठीक ढंग से कार्य कर रही हैं, उन देशों में जनसंख्या नियंत्रण में है, जच्चा-बच्चा मृत्यु दर कम है, औसत उम्र अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। बीमारी को शीघ्र नियंत्रित कर लिया जाता है, अत: महामारी नहीं फैलती है। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के कार्यक्रमों में अशिक्षा के कारण व्यक्तियों को अपने सामाजिक तथा नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता का अभाव भी है अत: आवश्यकता इस बात की है कि नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति लोगों को जागरूक किया जाए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति एक अभियान की तरह इन कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर भाग ले सके।

3.6 अन्य कारक (Other Factors)

कुछ अन्य कारक भी जन-स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, जिसमें कृषि एवं खाद्यान्न की स्थिति अर्थात् उन्नत किस्म के बीज, उन्नत फसल एवं प्रति हेक्टेयर ऊपज आदि सम्मिलित हैं। उद्योगों की स्थिति, कार्य करने की स्थितियां एवं परिस्थितियां, समाजोपयोगी कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाएँ तथा अन्य। ये सभी कारक जन-साधारण के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इसके अतिरिक्त भी नगरपालिका की सक्रियता या निष्क्रियता, व्यक्ति का स्वयं शरीर, कपड़े, घर आदि की सफाई भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—स्वास्थ्य निर्धारण में स्वास्थ्य सेवाओं का क्या योगदान है?

प्रश्न—सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां स्वास्थ्य निर्धारण के लिए क्यों उत्तरदायी हैं?

4.0 पर्यावरण और स्वास्थ्य के अन्तर्संबंध

परिस्थितिकी के तीन कारक—वाहक (Agent), ग्राहक (Host) एवं पर्यावरण (Environment) ही किसी रोग के लिए उत्तरदायी होते हैं। रोग के वाहक को वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से पहचाना जा सकता है, ग्राहक भी अध्ययन के लिए उपलब्ध होता है, परन्तु पर्यावरण जिसमें से रोगी आया है, मुख्यत: अनजान रहता है, जबकि रोग की प्रकृति, उद्‌भव, निरोध एवं नियंत्रण का स्विच पर्यावरण है अत: मनुष्य के स्वास्थ्य का, पर्यावरण तथा पर्यावरणीय स्वच्छता से गहरा संबंध है।

'पर्यावरण' दो शब्दों से मिलकर बना है—'परि' एवं 'आवरण'। परि का अर्थ है—चारों तरफ तथा आवरण का अर्थ है—ढका हुआ अथवा चारों ओर से घिरा हुआ। इस प्रकार पर्यावरण का अर्थ उन सबसे है, जो किसी वस्तु को चारों तरफ से घेरे हुए या ढके हुए हैं। मानव के पर्यावरण में उसके चारों ओर वायु, जल, सूर्य, नमी, मृदा, वन, वनस्पतियां, जीव-जन्तु आदि शामिल हैं। इस प्रकार पर्यावरण जीवों की विविध अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग है अर्थात् पर्यावरण के अन्तर्गत वे सभी प्राकृतिक तथा जैविक व्यवस्थाएँ आती हैं, जिनमें मानव तथा अन्य जीव रहते हैं।

पर्यावरण के विभिन्न अवयवों का शुद्ध अवस्था में उपयोग ही स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है। परन्तु किसी पदार्थ को पूर्ण शुद्ध अवस्था में पाना कठिन है। जिस वायु में हम श्वास लेते हैं, जो जल हम पीते हैं, जो भोजन हम करते हैं, आदि उसमें कुछ-न-कुछ अशुद्धि अवश्य होती है। पानी में कुछ ठोस धूल कण, कुछ घुले हुए लवण तथा कुछ जीवाणु भी होते हैं।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वायु में कार्बन-मोनो-ऑक्साइड, सल्फर-डाई-ऑक्साइड तथा बारीक धूल कण मिले हुए होते हैं। यही बात मृदा एवं खाद्य पदार्थों के बारे में भी कही जा सकती है। किसी एक पदार्थ (यौगिक) में किसी अन्य पदार्थ/पदार्थों के अंश मिले होने को प्रदूषण कहते हैं। जब मिलावट का स्तर सामान्य से इतना अधिक हो जाता है कि उस पदार्थ का उपयोग हानिकारक हो जाता है तो हम उसे प्रदूषित पदार्थ कहते हैं। जिसका हमारे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण के जिन घटक तत्त्वों के प्रदूषण का हमारे स्वास्थ्य पर सर्वाधिक प्रतिकूल असर पड़ता है, वे हैं—

1. जल प्रदूषण,
2. वायु-प्रदूषण,
3. मृदा-प्रदूषण,
4. ध्वनि-प्रदूषण,
5. रेडियोधर्मी-प्रदूषण।

4.1 जल-प्रदूषण

'जल ही जीवन है' अर्थात् जल के बिना जीवन संभव नहीं है। हमारे शरीर का दो तिहाई भाग जल ही है। जल स्वयं एक पोषक तत्त्व है तथा हमारे शरीर की विविध यांत्रिक एवं जैव-रासायनिक क्रियाओं में जल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शारीरिक प्रक्रियाओं के अतिरिक्त भी जीवन के मूलभूत क्रियाकलापों में भी जल की आवश्यकता होती है, जैसे—घर की सफाई, भोजन पकाने, कृषि कार्य, विद्युत उत्पादन, उद्योग आदि में। इसलिए जल जीवन के लिए अति आवश्यक है। जल मुख्यतः वर्षा, समुद्र, नदी, झील, तालाब, झरना तथा कुओं से प्राप्त होता है।

जल में किसी भी ऐसे रोगाणु, जीवाणु तथा ठोस एवं तरल पदार्थों की उपस्थिति को, जिसके कारण उसके रासायनिक एवं भौतिक गुणों में इस रूप में परिवर्तन हो जाए कि जल स्वास्थ्य के हानिकारक हो जाए, उसे जल-प्रदूषण कहते हैं।

जल-प्रदूषण के कारण

जल-प्रदूषण के दो कारण हैं— 1. प्राकृतिक, 2. मानवकृत।

प्राकृतिक कारण— प्राकृतिक जल प्रदूषण उसे कहते हैं, जो भूक्षरण, खनिज पदार्थों, पेड़-पौधों के वनस्पति भागों, प्राणियों के अपशिष्ट मिलने से धीरे-धीरे होता है।

मानवकृत—मानवीय क्रियाकलापों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट जब जल में मिलकर हानिकारक स्थिति में पहुंच जाते हैं, उसे मानवकृत जल-प्रदूषण कहते हैं। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण एवं भोगवादी प्रवृत्ति ने जिन प्राकृतिक सम्पदाओं का विनाश किया है, उनमें जल प्रमुख है। मानव के विभिन्न क्रियाकलापों के फलस्वरूप प्राप्त निम्न अपशिष्ट जल में मिलकर जल को प्रदूषित कर रहे हैं—

1. घरेलु अपशिष्ट,
2. मल-जल,
3. औद्योगिक अपशिष्ट,
4. कृषि कार्यों से प्राप्त अपशिष्ट,
5. तापीय अपशिष्ट,
6. तैलीय पदार्थ,
7. रेडियोधर्मी अपशिष्ट।

जल-प्रदूषण का प्रभाव

प्रदूषित जल के पीने से, उससे भोजन पकाने से, स्नान करने से, हाथ-मुंह धोने से, कुल्ला करने से, कपड़े धोने से आदि किसी भी प्रकार से उसका उपयोग करने से, वह हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। जल-प्रदूषण के कारक तथा उनके संभावित प्रभाव की तालिका संलग्न है—

4.2 वायु-प्रदूषण

सभी जीव जीवित रहने के लिए श्वसन क्रिया करते हैं। बिना श्वसन क्रिया के जीव का जीवन कुछ सैकेण्ड का ही रह जाता है, इसलिए जीव के जीवित रहने के लिए सबसे आवश्यक एवं अनिवार्य तत्त्व वायु है। पौधे तथा जन्तु दोनों ही वायु में से ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड छोड़ते हैं। क्लोरोफिल वाले पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया हेतु कार्बन-डाइ-ऑक्साइड भी ग्रहण करते हैं तथा इस क्रिया में ऑक्सीजन निष्कासित करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्र.सं.	जल प्रदूषण के रासायनिक कारक	सम्भावित रोग एवं विकार
1.	मलजल में मिले हुए कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ	पाचन तंत्र के रोग
2.	कैल्शियम एवं मैग्नीशियम सल्फेट	आंतों में जलन एवं ऐंठन
3.	सोडियम एवं पौटेश्यिम	जहरीला प्रभाव
4.	फलोराइड	दांतों का रोग एवं अस्थियों का रोग
5.	सल्फाइड	श्वास के रोग
6.	क्लोराइड	गुर्दो के रोग
7.	अमोनिया	श्वास के रोग
8.	यूरिया	पाचन तंत्र के रोग
9.	क्लोरीन	श्वास के रोग
10.	फीनोल	श्वास के रोग
11.	तेल तथा चिकनाई (ग्रीस)	पाचन तंत्र के रोग
12.	सायनाइड	जहरीला प्रभाव
13.	पारा	गुर्दो, हृदय एवं तंत्रिका-तंत्र के रोग
14.	जस्ता	गुर्दो के रोग
15.	क्रोमियम	आंतों के घाव (अल्सर)
16.	सीसा	गुर्दो एवं हृदय रोग तथा जोड़ो का दर्द
17.	रंग तथा रंग युक्त रंजक	चर्मरोग, अनिद्रा तथा सिरदर्द
18.	टेनिल	चर्मरोग
19.	कीटनाशक पदार्थ	चर्मरोग, सिरदर्द, अनिद्रा एवं फेफड़ों तथा गुर्दे के रोग

जल के द्वारा फैलने वाले सूक्ष्म जीवाणु एवं उनसे उत्पन्न होने वाले रोग

क्र.सं.	जीवाणु एवं परजीवी का नाम	उनसे फैलने वाले सम्भावित रोग
1.	वायरस	वाइरल हैपेटाइटिस (पीलिया) पोलिया, डेंगू
2.	बैक्टीरिया	डिप्थीरिया, हैजा, टाइफाइड, गैस्ट्रोएंट्राइटिस, डायरिया
3.	प्रोटोजोआ	पेचिस, मलेरिया, अमीबिक अतिसार, थ्रोंबोइसिस
4.	हेलमिन्थस (कृमि)	अतिसार, राउंडवर्म, हुकवर्म, थ्रेडवर्म (सभी पेट के अन्दर)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शुद्ध वायु, जो कि समुद्र तल पर पाई जाती है, उसमें मुख्य पांच गैसे निम्न अनुपात में होती हैं—

गैसें	**अनुपात**
नाइट्रोजन	78.084
ऑक्सीजन	20.956
कार्बन-डाई-ऑक्साइड	00.934
आर्गन	00.931
नियान	00.002

मनुष्य श्वसन क्रिया में मात्र ऑक्सीजन का ही उपयोग करता है। शेष गैसें प्रश्वास के साथ बाहर आ जाती हैं। उपरोक्त अनुपात के अतिरिक्त जब उक्त या अन्य हानिकारक गैसें तथा कण वायुमण्डल में पहुंच जाते हैं तब वह वायु को प्रदूषित कर देते हैं। प्रदूषण की स्थिति में गैसों का उपरोक्त अनुपात भी बिगड़ जाता है। प्रदूषित वायु में रहने से सर्वाधिक नुकसान श्वसन तंत्र को होता है। कालान्तर में इसका प्रभाव अन्य अंगों पर भी पड़ता है।

कारण— वायु-प्रदूषण के भी दो कारण हैं— 1. प्राकृतिक, 2. मानवकृत।

1. प्राकृतिक कारण—प्राकृतिक कारणों से प्रदूषित वायु कुछ ही समय पश्चात् अपना अनुपातिक संतुलन पुनः बना लेती है इसलिए इसका स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। प्राकृतिक कारणों में मुख्यतः आंधी-तूफान, जंगल की आग का धुंआ, ज्वालामुखी की राख व धुंआ आदि वायु को कुछ समय के लिए प्रदूषित कर देते हैं।

2. मानवकृत कारण—मानव के क्रियाकलापों के फलस्वरूप (जैसे—फैक्ट्री का धुआं, गाड़ी का धुआं आदि) जब वायु प्रदूषित होती है, तब उसे मानवीयकृत वायु-प्रदूषण कहते हैं। इसका कारण भी मानव ही होता है। आधुनिकीकरण, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण के इस युग में वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है, ऑफिस, घर, वाहन आदि वातानुकूलित हो रहे हैं, फ्रिज हर घर की आवश्यकता बन गया है, परिवार के प्रत्येक सदस्य के पास मोटर वाहन भी आज की जरूरत है। फैक्टरी, मिलें, कारखाने तेजी से अपने पैर पसार रहे हैं। उपरोक्त सभी कुछ मानव ने अपनी सुविधा के लिए किया, वहीं इनसे निष्कासित होने वाली जहरीली गैसों ने धीरे-धीरे सुविधा को असुविधा में परिवर्तित कर स्वास्थ्य पर अपना दुष्प्रभाव डालना प्रारम्भ कर दिया है।

प्रभाव— प्रदूषित वायु से शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है, श्वसन-तंत्र से संबंधित विभिन्न प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। प्रदूषित वायु का प्रभाव आंखों तथा त्वचा पर भी पड़ता है। वायु प्रदूषण के मुख्य प्रदूषक, उनके स्रोत तथा प्रभाव निम्वत हैं—

वायु प्रदूषण के स्रोत एवं प्रभाव

प्रदूषक	**स्रोत**	**प्रभाव**
कार्बन-डाई-ऑक्साइड	प्रज्जवलन क्रियाएँ एवं मोटर गाड़ियां	पृथ्वी के तापमान में वृद्धि तथा गैस का जहरीला प्रभाव आदि
कार्बन-मोनो-ऑक्साइड	अपूर्ण दहन की क्रियाएँ, पेट्रोल का प्रज्जवलन	शरीर में ऑक्सीजन की कमी से होने वाले घातक रोग आदि
सल्फर-डाई-ऑक्साइड	डीजल एवं कोयले से चलने वाली मोटर गाड़ियों, कारखानों, तेलशोधक इकाइयों से निकलने वाला धुआं	श्वास के अनेक खतरनाक रोग, कफयुक्त खांसी आदि
नाइट्रोजन के ऑक्साइड	उर्जा संयंत्रों एवं वाहनों में प्रयुक्त ईंधन के प्रज्जवलन तथा जंगल की आग	श्वास के रोग, सिरदर्द, आंखों एवं त्वचा में जलन आदि
अन्य पदार्थों के ठोस कण	भारी उद्योगों, कल-कारखाने, सीमेंट के कारखाने, ताप विद्युतघर तथा कोयला एवं पत्थर की खदानें आदि	शरीर के आंतरिक अंगों पर विषैला प्रभाव, श्वसन संबंधी रोग एवं त्वचा पर जहरीला असर आदि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ग्रीन हाउस के प्रभाव

पृथ्वी के तापमान के संबंध में इस शब्दावली का प्रयोग किया जाता है। पूर्व में पृथ्वी का औसत तापमान 15°C था। पिछली अर्ध शताब्दी में पृथ्वी के तापमान में औसतन 1°C की वृद्धि हुई है। इस वृद्धि का मुख्य कारण कार्बन-डाई-ऑक्साईड गैस है, जो हमारे प्रश्वास के साथ-साथ हमारे उपयोग में आने वाले विभिन्न उपकरणों से निकलती है। कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा यदि दो गुनी हो जाए तो तापमान में 5°C की वृद्धि हो जाएगी, जिसके परिणाम बहुत भयानक होंगे, क्योंकि तापमान में 3.6°C की वृद्धि से पृथ्वी पर विभिन्न क्षेत्रों में जमी बर्फ पिघल कर समुद्र के जल स्तर में लगभग 1.5 मीटर तक की वृद्धि कर सकती है। जिससे समुद्र के किनारे बसे शहर डूब जाएँगे।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार अमेरीका का प्रत्येक व्यक्ति अपने उपयोग में आने वाले साधनों से प्रतिवर्ष 19 टन कार्बन का विसर्जन करता है। ब्रिट्रेन का प्रत्येक व्यक्ति प्रतिवर्ष 11 टन कार्बन का विसर्जन करता है। भारत का औसत प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष 1.2 टन ही है, लेकिन इसमें तेजी से वृद्धि हो रही है।

ओजोन के छिद्र

पृथ्वी तल से 12 से 50 कि.मी. ऊपर के क्षेत्र को स्ट्रेटोस्फेयर (Stratosphere) कहते हैं। इसी क्षेत्र में ओजोन गैस का एक आवरण होता है, जो सूर्य के प्रकाश से आने वाली हानिकारक किरणों को सोख लेता है। यदि ये किरणें पृथ्वी तक पहुँच जाए तो प्राणी जगत की—

1. त्वचा की स्तरीय कोशिकाएँ नष्ट हो जाएगी।
2. त्वचा में जलन व घाव हो जायेंगे।
3. आँखों में सूजन व जलन हो जाएगी।
4. प्रजनन क्षमता कम हो जाएगी।
5. रोग प्रतिरोधक क्षमता घट जाएगी।
6. गर्भावस्था से ही शिशुओं में विभिन्न प्रकार के रोग हो जाएंगे।

ओजोन परत में छिद्र होने का सबसे बड़ा कारण क्लोरोफलोरो कार्बन तथा हौलोन गैस है जिनका योगदान लगभग 90 प्रतिशत है इसके अतिरिक्त नाइट्रिक ऑक्साइड तथा क्लोरीन गैस भी जिम्मेदार है।

ओजोन परत में छिद्र होना पिछले कई वर्षो से प्रारम्भ हो चुका है। इसको रोकने का कोई उपाय वैज्ञानिकों के पास नहीं है, मात्र वायु प्रदूषण को रोककर ही इनसे बचा जा सकता है।

4.3 भू-प्रदूषण

शुद्ध जल, शुद्ध वायु की तरह शुद्ध मृदा नहीं होती है। हर स्थान की मृदा की बनावट, रासायनों की मात्रा, गुणवत्ता एवं उपयोगिता में भिन्नता है। ऐसी स्थिति में भू-प्रदूषण उस स्थिति को कहते हैं, जब अवांछित भौतिक या रासायनिक तत्त्व इतने अधिक हो जायें कि मृदा की गुणवत्ता एवं उसकी उपयोगिता में कमी आ जाए।

कारण—भू-प्रदूषण के निम्न कारण हैं—

- **घरेलु अपशिष्ट**—कचरा, जूठन आदि।
- **नगरपालिका अपशिष्ट**—कूड़ा कचरा, मल-मूत्र आदि।
- **औद्योगिक अपशिष्ट**—जहरीले रासायनिक पदार्थ, कचरा आदि।
- **कृषि अपशिष्ट**—रासायनिक खादें, कीटनाशक आदि।

प्रभाव—भू-प्रदूषण से कूड़ा-कचरा इकट्ठा होता है, जिसके कारण मक्खी, मच्छर, चूहे आदि तेजी से पैदा होते हैं, जो विभिन्न हानिकारक जीवाणु, कीटाणु, वायरस के वाहक होते हैं। इनसे निम्न रोग फैलते हैं—1. पेचिश, 2. कालरा, 3. मोतीझरा, 4. टायफाइड, 5. हैजा, 6. पोलियो, 7. आंत्रशोध, 8. प्लेग आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपरोक्त बीमारियों के अतिरिक्त प्रदूषित भूमि में पैदा होने वाले सब्जी-फल आदि खाद्य पदार्थ भी प्रदूषित हो जाते हैं, जो स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।

4.5 ध्वनि-प्रदूषण

औद्योगिक कल-कारखानों, मोटर-गाड़ियों, तीव्र ध्वनि वाले लाउडस्पीकरों आदि से इतना ज्यादा शोरगुल होने लगा है कि मनुष्य सहित पशु-पक्षी आदि जीव भी परेशान रहने लगे हैं। इस परेशानी की वजह से विभिन्न प्रकार के रोग होने लगे हैं। इन रोगों का कोई स्थाई उपचार नहीं होता है। मात्र बचाव ही इसका एक मात्र सफल उपाय है।

कारण — ❖ औद्योगिक कारखाने।

❖ रेल, जहाज, मोटर-गाड़ियां आदि।

❖ लाउड-स्पीकर, टेलीविजन, रेड़ियो, टेपरिकॉर्डर आदि मनोरंजन के साधन।

प्रभाव — ध्वनि मापने की इकाई को डेसीबल कहते हैं। 80 डेसीबल तक ध्वनि (शोर) का कोई विशेष प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर नही पड़ता है। इससे अधिक होने पर उसका हानिकारक प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है। विभिन्न ध्वनियों का शोर डेसीमल में एवं उनका हानिकारक प्रभाव निम्न प्रकार है—

शोर	प्रभाव
दिल की धड़कन	13 डेसीबल।
टाइप मशीन	40 डेसीबल (नींद की कमी, चिड़चिड़ाहट)
कार, ट्रक	80 डेसीबल (क्रोध, सिरदर्द आदि)
वायुयान के भीतर	85 डेसीबल (सुनने की क्षमता में कमी, उच्च रक्तचाप)
रेलगाड़ी के द्वारा	100 डेसीबल (पाचन तंत्र तथा स्नायु तंत्र के रोग, गर्भपात का खतरा आदि)
फैक्ट्री मिल आदि	90-140 डेसीबल (स्मरण शक्ति कमजोर होती है, घबराहट आदि)
वायुयान से 10 मीटर दूर	130 डेसीबल (रक्त धमनी का सिकुड़ना, दिल के दौरे आदि की संभावना)

जो ध्वनि सुनने में अच्छी नहीं लगती है, वह हमारे लिए शोर होती है।

4.6 रेड़ियो धर्मी प्रदूषण

X-ray मशीन, परमाणु कचरा आदि ने रेड़ियोधर्मी प्रदूषण से वातावरण दूषित कर दिया है। यह एक ऐसा प्रदूषण है, जो दिखाई नही देता है इसलिए इसके प्रति जागरूकता बहुत बाद में आती है। पैदा होने वाले शिशुओं पर इसका सबसे घातक प्रभाव देखने को मिलता है। जापान में हिरोशिमा, नागासाकी, यूक्रेन में चेर्नोविल के आस-पास तीन सौ किलोमीटर तक रेड़ियो एक्टिव प्रदूषण की वजह से नई पीढ़ी विकलांग पैदा हो रही है।

कारण — 1. रेडियो धर्मी उपकरणों का प्रयोग।

2. परमाणु कचरा आदि।

प्रभाव — विकलांगता, कैंसर, चर्म-रोग आदि।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—जल-प्रदूषण के कारण बताएँ।

प्रश्न—वायु प्रदूषण का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्रश्न—ग्रीन हाउस प्रभाव क्या है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.0 संसार के प्रमुख प्रदूषित शहर

यह दयनीय कहानी है संसार के उन दस शहरों की, जिन्होंने स्पर्धा के इस युग में विकास और समृद्धि की आस में अंधाधुंध औद्योगीकरण को आमंत्रित किया। परिणामत: विषैला जल, विषैली वायु, विषैली मृदा ने वहां के निवासियों पर बीमारियों के हमले कर दिये। उन दस शहरों की खौफनाक कहानी संक्षिप्त में आपके अध्ययन और आपको सचेत करने के लिए प्रस्तुत है—

सबसे प्रदूषित दस शहर—

01. समगेयित, अजरबैजान

प्रभावित लोग—2 लाख, 75 हजार

प्रदूषक तत्त्व—कार्बनिक रसायन, तेल, पारा समेत भारी धातुएँ

स्रोत—पेट्रोकेमिकल और औद्योगिक कॉप्लेक्स

स्वास्थ्य पर प्रभाव—शेष अजरबेजान की तुलना में कैंसर की 22 से 51 फीसदी अधिक दर। सोवियत काल में रुग्णता की उच्च दर।

02. लिन्फेन, चीन

प्रभावित लोग—30 लाख

प्रदूषक तत्त्व—उड़ती राख, कार्बन मोनो ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड्स, पीएम-2.5 पीएम-10, सल्फर-डाई-ऑक्साइड, परिवर्तनशील कार्बनिक कपाउड्स, आर्सेनिक, सीसा

स्रोत—ऑटोमोबाइल और औद्योगिक निष्पादन

स्वास्थ्य पर प्रभाव—ब्रोंकाइटिस, निमोनिया और फेफड़े के कैंसर के बढ़ते मामले। साथ ही सीसे के जहरीले प्रभावों की रिपोर्टें भी रही हैं।

03. तियानयिंग, चीन

प्रभावित लोग—1 लाख, 40 हजार

प्रदूषक तत्त्व—सीसा और अन्य भारी धातुएँ

स्रोत—खनन और प्रोसिंसग

स्वास्थ्य पर प्रभाव—बच्चों में सीसे के जहर और उससे संबंधित रोग, कम आईक्यू, ध्यान केन्द्रित न हो पाना, सीखने में अक्षमताएँ, अति सक्रियता, असामान्य शारीरिक वृद्धि, सुनने और देखने में दिक्कतें, पेट की जलन, आंत में दर्द आदि।

04. सुकिंदा, उड़ीसा

प्रभावित लोग—26 लाख

प्रदूषक तत्त्व—हेक्सावेलेंट क्रोमियम और अन्य धातुएँ

स्रोत—क्रोमाइट खदानें और अन्य प्रक्रियाएँ

स्वास्थ्य पर प्रभाव—पाचन तंत्र में रक्तस्राव, तपेदिक और दमा, बंध्यता, जन्मजात विकृतियां और समय पूर्व प्रसव।

05. वापी, गुजरात

प्रभावित लोग—77 हजार

प्रदूषक तत्त्व—रसायन और भारी धातुएँ

स्रोत—औद्योगिक क्षेत्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वास्थ्य पर प्रभाव—श्वसन तंत्र के रोग, त्वचा, फेफड़े और गले का कैंसर, गर्भपात के मामले, गर्भधारण के दौरान रक्तस्राव, असामान्य भ्रूण और जनन बंध्यता।

06. ला ओरोया, पेरू

प्रभावित लोग—35 हजार

प्रदूषक तत्त्व—सीसा, कॉपर, जस्ता, सल्फर-डाई-ऑक्साइड

स्रोत—भारी धातुओं की खदानें और प्रोससिंग

स्वास्थ्य पर प्रभाव—ला ओरोया और आसपास रहने वाले 99 फीसदी बच्चों के खून में सीसे का स्तर स्वीकार्य सीमा से ज्यादा। सलफर-डाई-आक्साइउ की सांद्रता भी विश्व स्वास्थ्य संगठन की गाइडलाइंस से अधिक।

07. देरझिंस्क, रूस

प्रभावित लोग—3 लाख

प्रदूषक तत्त्व—सरीन और वीएक्स गैस सहित रसायन और जहरीले उप-उत्पाद, सीसा।

स्रोत—शीत युद्ध के दौरान रासायनिक हथियारों का निर्माण

स्वास्थ्य पर प्रभाव—2003 में जन्म दर की तुलना में 260 फीसदी अधिक मृत्यु दर रिकॉर्ड की गई। पुरुषों के लिए औसत आयु महज 42 वर्ष और महिलाओं की औसत आयु केवल 47 वर्ष।

08. नॉरिल्स्क, रूस

प्रभावित लोग—1 लाख, 34 हजार

प्रदूषक तत्त्व—हवा में तैरते कण, सल्फर-डाई-ऑक्साइड, भारी धातुएँ, फिनॉल्स, हाइड्रोजन सल्फाइड

स्रोत—निकेल और उससे संबंधित अन्य धातुओं का खनन व प्रोसेसिंग।

स्वास्थ्य पर प्रभाव—बच्चों में श्वास रोग, ऐसे रोगों के कारण होने वाली मौतों की उच्च दर, बच्चों की मौतों में 15. 8 फीसदी श्वास रोगों के कारण।

09. चेर्नोबिल, यूक्रेन

प्रभावित लोग—35 लाख

प्रदूषक तत्त्व—यूरेनियम, प्लूटोनियम, सीजियम-137, स्ट्रोंटियम की रेडियोएक्टिव धूल और अन्य धातुएँ

स्रोत—1986 में परमाणु संयंत्र में दुर्घटना

स्वास्थ्य पर प्रभाव—1992 से 2002 के दौरान बेलारूस और यूक्रेन में बच्चों और अवयस्कों में थाइराइड कैंसर के चार हजार से अधिक प्रकरणों का उपचार।

10. काब्वे, जांबिया

प्रभावित लोग—2 लाख, 55 हजार

प्रदूषक तत्त्व—सीसा, कैडमियम

स्रोत—सीसा खनन और अन्य प्रोसेसिंग

स्वास्थ्य पर प्रभाव—काब्वे और समीप के क्षेत्रों में बच्चों के खून में सीसे का स्तर स्वीकार्य सीमा से 10 से 15 गुना अधिक पाया गया।

(स्रोत—ब्लैक स्मिथ इंस्टीट्यूट स्टडी 2007)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.0 स्वस्थ पर्यावरण के उपाय

रोग का अच्छा इलाज कराने से ज्यादा अच्छा है कि रोग होने ही नहीं दिया जाए, इसीलिए प्रदूषण से बचने के उपाय खोजने की अपेक्षा प्रदूषण न हो—इस विषय में चिन्तन किया जाए तथा उन्हें अपनाया जाए—इस विषय में हम जो कर सकते हैं। वे निम्न हैं—

1. अधजले शव को नदी आदि में न डालें।
2. प्लास्टिक की थैली के स्थान पर जूट या अन्य कपड़ें के थेलो का प्रयोग करें।
3. रेफ्रिजरेटर को ठण्डे स्थान पर रखें।
4. साधारण बल्ब व ट्युब के स्थान पर सी. एफ. एल. बल्ब/ट्युब जलाएँ।
5. खुले में मल-मूत्र का विसर्जन न करें।
6. कम दूरी पर जाने के लिए मोटर गाड़ी के स्थान पर पैदल या साइकिल से जाएँ।
7. ज्यादा दूरी के लिए बस या ट्रेन का उपयोग करें।
8. आवश्यकता न होने पर गाड़ी तथा घर का एअर कन्डीशन उपकरण बन्द कर दें।
9. हरे-भरे वृक्ष न काटें तथा जीवन में कम से कम प्रतिवर्ष एक वृक्ष अवश्य लगायें क्यों कि वृक्ष से प्राप्त आक्सीजन से ही हम सब जीवित हैं।
10. पानी तथा विद्युत का अनावश्यक उपयोग न करें।

7.0 सारांश

स्वास्थ्य की अवधारणा

ये निम्न चार हैं—

1. जीवचिकित्सकीय अवधारणा—रोगों के रोगाणु सिद्धान्त पर आधारित है, इस सिद्धान्त ने कई रोगों पर अपना नियन्त्रण स्थापित किया है लेकिन तनाव, चिन्ता, कुण्ठा, लालच, नशे की लत आदि पर पर्याप्त नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सका।

2. पारिस्थितिकीय अवधारणा—मानव तथा प्रकृति के मध्य निरन्तर लेन-देन की प्रक्रिया में संतुलन पर जोर देना।

3. मनो-सामाजिक अवधारणा—मनो-सामाजिक स्थितियों को मानव स्वभाव एवं स्वास्थ्य के अनुकूल बनाने पर जोर देने के साथ आर्थिक राजनेतिक आदि स्थितियों को भी मानवीय आवश्यकताओं के लिए उपयोगी बनाने पर जोर दिया।

4. समग्र अवधारणा—उपरोक्त तीनों को मिलाने में बनती है।

स्वास्थ्य की परिभाषा

1. स्वं में अवस्थित होना ही स्वास्थ्य है।
2. शारीरिक, मानसिक और सामाजिक संतुलन के साथ-साथ आर्थिक एवं सामाजिक रूप से उपयोगी जीवन ही स्वास्थ्य है।

स्वास्थ्य के निर्धारक कारण

1. आनुवांशिकता, 2. पर्यावरण, 3. जीवन-शैली, 4. सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां, 5. स्वास्थ्य सेवाएँ, 6. अन्य।

पर्यावरण और स्वास्थ्य के अन्तर्संबंध

पर्यावरण के विभिन्न अवयवों को शुद्ध रखने से ही स्वास्थ्य को अच्छा रखा जा सकता है। निम्न प्रदूषणों पर ध्यान देना आवश्यक है—

1. जल प्रदूषण, 2. वायु प्रदूषण,
3. मृदा प्रदूषण, 4. ध्वनि प्रदूषण, 5. रेडियोधर्मी प्रदूषण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य से क्या अभिप्राय है? स्वास्थ्य के निर्धारक कारकों को विस्तार समझाइये।
2. पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के अन्तर्संबंधों को विस्तार से लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ग्रीन हाउस प्रभाव क्या है?
2. वायु-प्रदूषण के कारण लिखिए।
3. संसार के प्रमुख प्रदूषित शहर कौन-से हैं?
4. पर्यावरण को स्वस्थ रखने के उपाय बताइए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. दिल की धड़कन की ध्वनि कितने डेसीबल तक होती है?
2. समुद्र तल पर पाई जाने वाली वायु में ऑक्सीजन की मात्रा कितनी होती है?
3. कार्बन-मोनो-ऑक्साइड गैस से कौन-सी बीमारी होती है?
4. पृथ्वी से 12 से 15 कि.मी. ऊपर के क्षेत्र को क्या कहते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–1 स्वास्थ्य शिक्षा और जीवन–विज्ञान

पाठ–ख

स्वास्थ्य शिक्षा : सिद्धान्त एवं प्रविधि, जीवन विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन (प्रेक्षा–चिकित्सा)

प्रिय विद्यार्थियों,

पिछले पाठ में आपने स्वास्थ्य की अवधारणा, स्वास्थ्य की परिभाषाएँ, स्वास्थ्य के निर्धारक तत्त्व तथा स्वास्थ्य और पर्यावरण के अन्तर्संबंधों के विषय में पढ़ा। अध्ययन के पश्चात् आपने अनुभव किया होगा कि स्वास्थ्य शिक्षा हमारे जीवन के लिए कितनी आवश्यक है। बिना इसके बीमारियों की रोकथाम संभव नहीं है। प्रस्तुत पाठ में हम आपको स्वास्थ्य शिक्षा के विषय में ही जानकारी देंगे कि स्वास्थ्य शिक्षा क्या है? इसके उद्देश्य एवं इसके महत्त्व क्या हैं तथा जीवन विज्ञान की शिक्षा किस प्रकार हमारे स्वास्थ्य संवर्धन में सहयोगी बनती है आदि।

हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं–

1. स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति आपकी रुचि जागृत होगी।
2. आप स्वास्थ्य शिक्षा के मूल सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।
3. आप स्वास्थ्य के प्रति आम नागरिकों को जागृत कर सकेंगे।
4. स्वास्थ्य शिक्षा की प्रक्रिया के विषय में जान सकेंगे।
5. आप यह भी जान सकेंगे कि जीवन विज्ञान की शिक्षा किस प्रकार स्वास्थ्य संवर्धन में सहायक है।

विषय–वस्तु

1.0 स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ
2.0 स्वास्थ्य शिक्षा की परिभाषाएँ
3.0 स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य
4.0 स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व
5.0 स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त
  5.1 रुचि
  5.2 सहभागिता
  5.3 सम्प्रेषण
  5.4 अभिप्रेरणा
  5.5 बौद्धिक स्तर
6.0 स्वास्थ्य शिक्षा की प्रविधि
  6.1 वैयक्तिक स्तर
  6.2 समूह स्तर
  6.3 जन–साधारण स्तर
7.0 जीवन–विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन
  7.1 प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन
    7.1.1 सहायक अंगों के द्वारा
      7.1.1.1 आसन
      7.1.1.2 प्राणायाम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.1.1.3 मुद्रा
7.1.1.4 ध्वनि
7.1.2 मुख्य अंगों के द्वारा
7.1.2.1 कायोत्सर्ग
7.1.2.2 अन्तर्यात्रा
7.1.2.3 श्वास-प्रेक्षा
7.1.2.4 शरीर-प्रेक्षा
7.1.2.5 चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा
7.1.2.6 लेश्या-ध्यान
7.1.2.7 भावना
7.1.2.8 कायोत्सर्ग
7.2 अणुव्रत जीवनशैली से स्वास्थ्य संवर्धन
8.0 सारांश
9.0 प्रश्नावली

किसी भी देश की उन्नति एवं समृद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश के नागरिकों का स्वास्थ्य और शिक्षा का स्तर क्या है। जिन देशों में इन दोनों का स्तर ऊँचा है, वह देश विकास की नित नवीन ऊँचाइयों को छूता है तथा जिन देशों में स्तर नीचा है, उनका विकास अवरुद्ध रहता है।

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन और स्वस्थ बुद्धि का निवास होता है। इसलिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास के लिए स्वस्थ शरीर का होना पहली आवश्यकता है। अच्छे स्वास्थ्य के कारण ही व्यक्ति एक कुशल, सार्थक, सुखी और परोपकारी जीवन जीता है। अच्छा स्वास्थ्य व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा चरित्र को भी प्रभावित एवं निर्मित करता है।

व्यक्ति के अच्छे स्वास्थ्य का दायित्व मात्र डॉक्टर और सरकार का ही नहीं है बल्कि इसका दायित्व प्रत्येक व्यक्ति का है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं के, परिवार के तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति के स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहना चाहिए। यह तभी संभव हो सकेगा जब व्यक्ति को स्वास्थ्य से संबंधित मूलभूत जानकारी हो। इसलिए स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व है तथा वर्तमान की परम आवश्यकता है।

1.0 स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ

स्वास्थ्य शिक्षा वह अभियान है जो जन-साधारण को ऐसे ज्ञान व आदतों के सीखने में सहायता प्रदान करता है जिससे वे स्वस्थ रह सकें। स्वास्थ्य शिक्षा से, जन-साधारण जीवन की बदलती हुई अवस्थाओं में स्वस्थ रहकर समस्याओं का धैर्य से सामना करना सीखता है।

कोई भी कार्य जो जन-साधारण को स्वास्थ्य के विषय में नया सिखाये या नई जानकारी दे, वह स्वास्थ्य शिक्षा है। वैसे **''स्वास्थ्य शिक्षा वह शिक्षा है जो स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं की पहचान करने और इन आवश्यकताओं से मेल खाते उचित व्यवहार सुझाने के लिए दी जाती है।''** सरल शब्दों में लोगों को स्वास्थ्य व बीमारियों संबंधी जानकारी देना, उनका स्वास्थ्य सुधारने के लिए प्रयत्न करना, उनको बीमारियों के ऊपर नियंत्रण होने के योग्य बनाना आदि स्वास्थ्य को उत्साहित करने की समूची प्रक्रिया ही स्वास्थ्य शिक्षा है।

''आम शिक्षा की तरह स्वास्थ्य शिक्षा भी लोगों के ज्ञान, भावनाओं व व्यवहार में परिवर्तन से संबंधित है। अपने स्वरूप में यह स्वास्थ्य संबंधी ऐसी आदतों को विकसित करने की ओर ध्यान देती है, जो लोगों को स्वस्थ होने का अहसास पैदा कर सके।'' विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) की वर्ष 1954 की तकनीकी रिपोर्ट की इस परिभाषा से यह स्पष्ट ही है कि स्वास्थ्य शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो लोगों को स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं के बारे में जानने में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सहायता करता है। उचित व्यवहार व उचित जीवनशैली अपनाने के लिए प्रेरित करता है और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने व बनाये रखने के लिए उत्तम दृष्टिकोण विकसित करता है। स्वास्थ्य शिक्षा जन-साधारण के ज्ञान व रवैये में बदलाव लाती है तथा स्वास्थ्य की देखरेख से जुड़ी उनकी आदतों व सोच को नया रूप प्रदान करती है।

संक्षेप में स्वास्थ्य शिक्षा के तीन मुख्य भाग हैं—

1. मानव की शारीरिक, मानसिक व सामाजिक पहलुओं की एकता।
2. स्वस्थ व्यवहार को संभव बनाने के लिए ज्ञान, सोच व आदतों को विशेष महत्त्व देना।
3. व्यक्ति, परिवार और भाईचारे पर केन्द्रित स्वास्थ्य शिक्षा।

स्वास्थ्य शिक्षा के ये सभी भाग एक-दूसरे पर निर्भर हैं। इनका आपस में मेलजोल निरन्तर बना रहता है।

2.0 स्वास्थ्य शिक्षा की परिभाषाएँ (Definition of Health Aducation)

I. ''स्वास्थ्य शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी व ज्ञान को शैक्षिक तरीके के माध्यम से व्यक्ति व सामुदायिक आचार-व्यवहार में ढालने की विधि के साधन हैं।'' ***—रुथ ई. ग्राउट***

II. ''स्वास्थ्य शिक्षा, आम शिक्षा की तरह लोगों के ज्ञान, भावनाओं व व्यवहार में परिवर्तन से संबंधित है। अपने आप रूपों में यह स्वास्थ्य से जुड़ी ऐसी प्रथाओं व आदतों को विकसित करने पर केन्द्रित होती है, जो लोगों के अंदर स्वरूप होने की भावना उजागर करती है।'' ***—विश्व स्वास्थ्य संगठन की तकनीकी रिपोर्ट (1954)***

III. ''स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य जिन्दगी की ऐसी गुणवत्ता स्थापित करना है, जो व्यक्ति को अधिक से अधिक जीवन जीने और बेहतरीन ढंग से समाज के काम आने के योग्य बना सके।''

—स्वास्थ्य शिक्षा के बारे में विश्व स्वास्थ्य संगठन के विशेषज्ञों की कमेटी

IV. ''स्वास्थ्य शिक्षा स्कूल व दूसरी जगहों पर हुए उन सारे अनुभवों का सार है, जो व्यक्ति, भाईचारे व समाज के स्वास्थ्य से जुड़ी आदतों, रवैयों और ज्ञान पर सुखद प्रभाव डालती है।'' ***—थामस वुड***

V. ''स्वास्थ्य शिक्षा वह प्रक्रिया है, जो कि लोगों को स्वस्थ आदतों, आचार-व्यवहार व जीवनशैलियों को अपनाने व जारी रखने के प्रति सचेत व प्रेरित करता है और इस काम में उनके लिए सहायक भी साबित होता है। साथ ही इस लक्ष्य की पूर्ति को संभव बनाने के लिए पर्यावरण में पर्याप्त परिवर्तन भी सुझाता है और फिर इस आशय तक पहुंचने के लिए पेशेवर प्रशिक्षण व खोज को संभव बनाता है।'' ***—एन.आर. सोमर्स***

VI. ''स्वास्थ्य शिक्षा लोगों के स्वास्थ्य से जुड़े व्यवहार से संबंधित है।'' ***—सोफी (Sophic)***

VII. ''स्वास्थ्य शिक्षा वह प्रक्रिया है, जो स्वास्थ्य संबंधी जानकारी और स्वास्थ्य से जुड़ी प्रथाओं व आदतों के बीच के अन्तराल को दूर करती है। स्वास्थ्य शिक्षा व्यक्ति को जानकारी ग्रहण करने और इसे अपनाने तथा अपने आपको तंदुरुस्त रखने के योग्य बनाती है और उन कार्यवाहियों से बचने के लिए प्रेरित करती है, जो हानिकारक हो सकती है।''

—स्वास्थ्य शिक्षा के बारे में अमेरिकी राष्ट्रपति की कमेटी, न्यूयार्क (1973)

3.0 स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य (Importance of Health Education)

एन.आर. सोमर्स की परिभाषा का अध्ययन व विश्लेषण करने के बाद जे.ई. पार्क ने स्वास्थ्य शिक्षा के तीन मुख्य उद्देश्य बताये—

(i) लोगों को जागरूक करना,
(ii) लोगों को प्रेरित करना,
(iii) लोगों को कार्यवाही के लिए दिशा-निर्देश देना।

अन्य विद्वानों ने भी ऐसे ही मिलते-जुलते उद्देश्य सुझाये हैं, जो निम्न हैं—

(i) स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान का विकास करना,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) स्वास्थ्य संबंधी सही दृष्टिकोण का विकास करना,

(iii) स्वास्थ्य के बारे में वांछित आदतों का विकास करना।

I. लोगों को जानकारी देना/स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान का विकास करना—अनुसंधानों के आधार पर प्राप्त की गई वैज्ञानिक जानकारी जन-साधारण तक पहुंचाना स्वास्थ्य शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है। ऐसी जानकारी जन-साधारण को स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं की पहचान करने और उसका उपयोग करने में सहायक साबित होती है। इस प्रकार की जानकारी स्वास्थ्य व सफाई से जुड़े अज्ञानता, पूर्वाग्रहों, गलत धारणाओं और अंधविश्वासों को दूर करने में सहायक सिद्ध होती है।

II. लोगों को प्रेरित करना/स्वास्थ्य के बारे में वांछित दृष्टिकोण का विकास करना—जन-साधारण को स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान या जानकारी देना ही अपने आप में पर्याप्त नहीं है। उन्हें इस प्रकार प्रेरित करने व उत्साहित करने की आवश्यकता है कि वे उस ज्ञान को अपने जीवनचर्या में वांछिप रूप से उपयोग में लायें और इसके आधार पर अपने व्यवहार, अपनी सोच, अपनी आदतों और अपनी जीवनशैली में सुखद परिवर्तन करने के लिए प्रेरित हो।

III. कार्यवाही के लिए दिशा-निर्देश देना/वांछित आदतों का विकार करना—ज्ञान या जानकारी तभी लाभकारी होती है जब जन-साधारण दिशा-निर्देशानुसार कार्य करने लगे तथा अपनी आदतों में सुधार कर ले। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि दिशा-निर्देश की प्रेरणा जन-साधारण की आदतों में परिवर्तन कर दे, ऐसी चमत्कारी होनी चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा के अन्य उद्देश्य निम्न हैं—

(i) व्यक्ति का सर्वोत्तम विकास मुख्य रूप से शारीरिक व भावात्मक विकास।

(ii) मानव संबंधों की बेहतरी, मुख्य रूप से स्वास्थ्य के मापदंडों के बिन्दु की ओर से।

(iii) वस्तुओं व सेवाओं में उत्पादन और खपत के क्षेत्र में आर्थिक कार्यकुशलता और इसी सन्दर्भ में स्वास्थ्य संबंधी तथ्यों व नियमों का उपयोग।

(iv) नागरिक कर्त्तव्य विशेषत: स्वास्थ्य के संबंध में।

4.0 स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व (Importance of Health Education)

स्वास्थ्य शिक्षा के ज्ञान का बहुत महत्त्व है क्योंकि बहुसंख्यक आबादी स्वास्थ्य व सफाई के बुनियादी सिद्धान्तों से अनजान है। इस अज्ञानता के कारण लोग बीमारियों की रोकथाम नहीं कर पाते हैं। लोगों में यह अज्ञानता दूर करना बहुत बड़ी आवश्यकता व चुनौती है। उन्हें स्वास्थ्य व सफाई के बुनियादी सिद्धान्तों व नियमों से अवगत करवाया जाना चाहिए। स्वास्थ्य शिक्षा वैज्ञानिक तथ्यों व वैज्ञानिक विधियों की जानकारी प्रदान करती है तथा यह जानकारी अज्ञानता दूर कर कई बीमारियों को रोकने व उनको समाप्त करने में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम मुख्य तौर पर सावधानी व रोकथाम की किस्म का कार्यक्रम है क्योंकि ईलाज के साथ परहेज हमेशा ही आवश्यक होता है। इसलिए ऐसे कार्यक्रम जानकारी व ज्ञान के संचार के लिए काफी उपयोगी साबित होते हैं।

स्वास्थ्य शिक्षा में जन-साधारण को भिन्न-भिन्न खतरनाक बीमारियों की जानकारी देते हैं और इन बीमारियों को आने से रोकने के ढंग व उपाय बताते हैं। इस तरह स्वास्थ्य शिक्षा बच्चों, नौजवानों, प्रौढ़ों और समस्त समाज पर बुरा असर डालने वानी कई समस्याओं को दूर करने में अहम भूमिका निभाती है।

1. स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व इसलिए है क्योंकि यह शिक्षा परिवार व समाज में अच्छे स्वास्थ्य और सुरक्षित रीति-रिवाज व आदतों के महत्त्व के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण विकसित करती है।

2. नित्य के जीवन में स्वास्थ्यपरक व अच्छी आदतें डालने के रुझान को उत्साहित करती है।

3. विद्यार्थियों को स्वास्थ्य के साथ जुड़ी जानकारी व उनके क्षेत्रों के बारे में बताती व शिक्षित करती है। इस तरह उन्हें निजी व सामाजिक स्वास्थ्य समस्याओं को बेहतर ढंग से समझने व उनसे निपटने में समर्थ बनाती है।

4. जन-साधारण को मानव शरीर की बुनियादी प्रणालियों व कार्यों से अवगत कराती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. जैविक, सामाजिक व शारीरिक विज्ञान में स्वास्थ्य से जुड़ी जानकारी के कई स्रोतों को संघटित बनाती है ताकि पूर्ण स्वास्थ्य का संकल्प स्थापित करने के लिए इन स्रोतों का सार्थक उपयोग किया जा सके।

6. जन-साधारण को सामाजिक जीवन व पारिवारिक जिन्दगी के स्वभाव संबंधी गहरा ज्ञान प्रदान करती है।

7. जन-साधारण को पारिवारिक नियंत्रण का ध्यान रखने की हिदायत देकर उनके अंदर जिम्मेदारी व आपसी सहयोग की भावना विकसित करती है।

8. अंगहीनों व लाचारों की शिक्षा में योगदान देती है और उन्हें उपलब्ध शैक्षणिक सुविधाओं का अधिक से अधिक लाभ लेने के प्रति उत्साहित करती है।

पिछले कुछ सालों से स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व दिनो दिन बढ़ता जा रहा है। इसकी वजह यह है कि मीडिया की ओर से सामाजिक व स्वास्थ्य समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इससे लोगों में स्वास्थ्य चिंता के साथ-साथ सूझ भी बढ़ती जा रही है। वर्तमान में तो अच्छा स्वास्थ्य सुविधा दुनिया भर के देशों के लिए सामाजिक उद्देश्य ही बन गयी है।

स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व इसलिए है क्योंकि इसका मुख्य लक्ष्य व्यक्ति के लिए सर्वोत्तम, सर्वपक्षीय स्वास्थ्य सुनिश्चित करना है। ऐसे सर्वपक्षीय स्वास्थ्य में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व भावनात्मक आयामों समेत लगभग सभी पक्ष शामिल हैं, जो कि व्यक्ति को स्वस्थ व अच्छा नगारिक बना सकते हैं। यही कारण है कि स्वास्थ्य शिक्षा को शिक्षा की सबसे अहम कड़ी माना जाने लगा है।

बोध-प्रश्न

प्रश्न-1. स्वास्थ्य शिक्षा के मुख्य तीन भाग कौन-से हैं?

प्रश्न-2. स्वास्थ्य शिक्षा की कोई दो परिभाषाएँ बताइये।

प्रश्न-3. स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

5.0 स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त

स्वास्थ्य शिक्षा वर्तमान समय की महत्ती आवश्यकता है। स्वास्थ्य शिक्षा को शिक्षण और अधिगम के माध्यम से ही सभी लोगों तक पहुंचाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि सीखने और स्मृति की प्रक्रिया के द्वारा स्वास्थ्य शिक्षा को नई दिशा दी जा सकती है। हर व्यक्ति अपने जीवनकाल में कुछ-न-कुछ सीखता है और सीखी हुई बात के आधार पर उसका जीवन-व्यवहार संचालित होता है। प्रशिक्षण, अध्यापक और विधार्थी के बीच चलने वाली प्रक्रिया है। जब तक सीखने वाला तैयार नहीं हो तब तक उसे कुछ भी शिक्षाप्रद व अनुकरणीय नहीं लगता है। सीखने और सिखाने की यह प्रक्रिया केवल विद्यालय तक ही सीमित नही होती है वरन् समाज व परिवार के द्वारा भी यह प्रयास किया जाता है। स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य के प्रति संचेतना जागृत कर समुदाय को जागृत किया जाता है ताकि जन-साधारण स्वास्थ्यगत परेशानियों से अपना बचाव कर सकें। इसके तहत कतिपय सिद्धान्त शिक्षाविदों द्वारा बताये गये हैं— 1. रुचि 2. सहभागिता 3. सम्प्रेषण 4. अभिप्रेरणा 5. बौद्धिक स्तर।

5.1 रुचि- मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि अधिकतर जनता उन बातों को गंभीरता से नहीं लेती, जिनमें उसे रुचि नहीं होती। यही कारण है कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता में कमी रहती है। स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों का कर्त्तव्य है कि पहले जनता में स्वास्थ्य कार्यक्रमों के प्रति रुचि पैदा करें। स्वास्थ्य को लेकर जनता की क्या अपेक्षाएँ हैं, उनका पता लगायें तत्पश्चात् नीतियों व कार्यक्रमों का निर्माण किया जाये ताकि स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम को सफलता प्राप्त हो सके न-साधारण की रुचि के बिना किया जाने वाला कोई कार्य सफल नहीं हो सकता अतएव रुचि का जागृत होना अनिवार्य है।

5.2 सहभागिता- सीखने की प्रक्रिया कारगर तभी होती है, जब व्यक्ति सक्रिय होकर कोई कार्य के लिए तत्पर होता है। स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम में समूह चर्चा, विशेषज्ञ चर्चा, कार्यशाला आदि कार्यक्रमों का आयोजन कर स्वास्थ्य शिक्षा को सफल करने का प्रयास किया जाता है। इन कार्यक्रमों में जनता की अधिक भागीदारी इस बात की परिचायक होती है कि स्वास्थ्य के प्रति आम जनता कितनी सजग है। यही सजगता स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रमों को सफलता प्रदान करती है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.3 सम्प्रेषण– शिक्षा को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सरलता से पहुंचाने के लिए भाषा महत्त्वपूर्ण होती है। स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम में अधिकतर उन्हीं लोगों को शामिल किया जाता है, जिनका शिक्षा का स्तर या तो बहुत नीचे होता है अथवा मध्यम स्तर का। अतएव ऐसे लोगों को प्रशिक्षण देते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि भाषाशैली उन्हीं लोगों के स्तर की हो ताकि समझाने में कठिनाई नहीं आये। अगर भाषा शैली इन लोगों से उच्च स्तर की होगी तो स्वास्थ्य कार्यक्रमों का लाभ नहीं ले पायेंगे। ऐसे कार्यक्रम की सफलता उचित सम्प्रेषण से ही संभव है।

5.4 अभिप्रेरणा– प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ सीखना चाहता है। अन्तर मात्र इतना होता है कि किसी में यह इच्छा जागृत रहती है और किसी में जागृत नहीं होती है। जिन लोगों को सीखने की इच्छा सुप्त होती है, उन्हें अभिप्रेरणा के माध्यम से उद्दीप्त करना पड़ता है। अभिप्रेरणा भी दो प्रकार की होती है—1. प्राथमिक, जैसे—भूख, कामवासना, जीवन जीने की इच्छा, 2. द्वितीयक, जैसे—प्रतिस्पर्धा, पुरस्कार, प्रशंसा, दण्ड आदि। प्राथमिक अभिप्रेरणाओं को जागृत करने के लिए अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता जबकि द्वितीयक अभिप्रेरणा हेतु विशेष विधियों का सहारा लेना पड़ता है। अगर किसी गुटखा खाने वाले व्यक्ति को 'यह खराब चीज है, इसे नहीं खाना चाहिये' ऐसा कहकर रोकेंगे तो उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। लेकिन जब उसे गुटखा खाने वाले लोगों के साथ हुई बीमारियों की विस्तार से जानकारी देंगे और ऐसा ही हश्र उसके साथ होगा, यह बतायेंगे तब इसका प्रभाव उस पर तत्काल पड़ेगा और अपने स्वास्थ्य के प्रति वह सजग होगा।

5.5 बौद्धिक स्तर– शिक्षा से बहुत सारी जानकारियां प्राप्त होती हैं लेकिन शिक्षा देने से पूर्व पाने वाले समूह के बौद्धिक स्तर की स्पष्टता होनी आवश्यक है। शिक्षा देने वाले के लिए यह जानना जरूरी होता है कि उसके द्वारा जिन्हें शिक्षा प्रदत्त की जा रही है, वे किस रूप में, किस स्तर तक शिक्षण सामग्री को ग्रहण करने में समर्थ हैं। यदि जो कुछ सिखाया जाता है, उसे संबंधित व्यक्ति ग्रहण नहीं कर पा रहा है तो उसे सिखाने का प्रयास व्यर्थ होगा। इसलिए स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व लक्षित लोगों के बौद्धिक स्तर की जानकारी करना आवश्यक होता है ताकि उन्हीं के स्तर के तरीके से उन्हें ज्ञान दिया जा सके।

6.0 स्वास्थ्य शिक्षा की प्रविधि

स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम को जन-साधारण तक पहुंचाने के लिए तीन स्तर प्रयुक्त किये गए हैं—

1. वैयक्तिक स्तर,
2. समूह स्तर,
3. जन-साधारण स्तर।

6.1 वैयक्तिक स्तर– वैयक्तिक स्तर पर स्वास्थ्य कर्मियों के द्वारा रोगियों और उनके सगे-संबंधियों, जिनसे व्यक्तिगत रूप से जुड़े होते हैं, को स्वास्थ्य की जानकारी दी जाती है। रोग के लक्षण, रोकथाम के उपाय आदि के बारे में पूरी जानकारी दी जाती है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से सम्पर्क में आने वाला हर व्यक्ति लाभ ले सकता है। अगर उसे कोई रोग है तो समय पर प्राप्त जानकारी के आधार पर रोकथाम के उपाय अपना कर रोग पर नियंत्रण कर सकता है। व्यक्तिगत शिक्षा का प्रमुख लाभ यही होता है कि लोगों को स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न विषयों की जानकारी का पूरा अवसर मिलता है। साथ ही सभी अपने दायित्व को सही तरह से निभाकर रोग-मुक्ति अभियान को सफल बनाने में अपना योगदान देते हैं।

6.2 समूह स्तर – समूह स्तर के अन्तर्गत स्कूल के बच्चे, उद्योगों से जुड़े कर्मचारी, गर्भवती माताएँ, एक ही तरह के रोगी आते हैं। एक जैसी समस्या का चयन कर इनहें समूह के रूप में एक साथ जानकारी दी जाती है। इसके लिए दो विधियां प्रयुक्त की जाती हैं—

1. एकतरफा या उपदेशात्मक विधियाँ—

(क) फिल्म (ख) प्रदर्श (ग) चार्ट (घ) भाषण (ङ) फ्लैश कार्ड

2. दो तरफा या सुकराती विधियाँ—

(क) अभिनय (ख) कार्यशाला (ग) समूह चर्चा (घ) संगोष्ठी (ङ) विशेष-परिचर्चा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इन दोनों विधियों का समूह स्तर पर प्रयोग करके विभिन्न समूहों को रोगों के विषय में व्यापक ज्ञान कराया जाता है ताकि रोगों का निदान सही समय पर हो सके।

6.3 जन-साधारण स्तर

स्वास्थ्य शिक्षा प्रक्रिया का तीसरा स्तर जन-साधारण को माना गया है। इसमें स्वास्थ्य शिक्षा की जानकारी हेतु विभिन्न सम्प्रेषण के जन-माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में ये माध्यम काफी कारगर भी साबित हो रहे हैं। इसलिए इनका महत्त्व व प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक रहता है। ये माध्यम निम्न हैं—

1. समाचार-पत्र,
2. रेडियो व टी.वी.,
3. स्वास्थ्य प्रदर्शनी,
4. स्वास्थ्य संग्रहालय,
5. स्वास्थ्य पत्रिकाएं,
6. पोस्टर।

स्वास्थ्य संबंधी सामग्री का सर्वाधिक व्यापक माध्यम समाचार-पत्र हैं। समाचार-पत्र की पकड़ हर वर्ग में है। अतएव समाचार-पत्रों में स्वास्थ्य की जानकारी देना लाभप्रद कहा जा सकता है। रेडियो व टी.वी. की उपलब्धता हर जगह है। इसलिए इनके माध्यम से भी स्वास्थ्यगत जानकारी दी जा सकती है। स्वास्थ्य प्रदर्शनी, स्वास्थ्य संग्रहालय व स्वास्थ्य पत्रिकाओं के माध यम से भी लोगों को स्वास्थ्य के प्रति सजग बनाया जा सकता है। पोस्टर के द्वारा भी जन-साधारण का ध्यान आकर्षित किया जाता है। इसलिए पोस्टर में कलात्मकता आवश्यक होती है। पोस्टर में अंकित संदेश सरल, सीधा, संक्षेप में, स्पष्ट व आसान होना चाहिए ताकि हर व्यक्ति उस संदेश को सरलता से समझ सके व स्वास्थ्य संबंधी प्रक्रियाओं का एक भाग स्वयं को बना सके।

बोध-प्रश्न

प्रश्न-1. स्वास्थ्य शिक्षा के कोई दो सिद्धान्त बताइये।

प्रश्न-2. स्वास्थ्य शिक्षा की प्रविधि में कौन-से तीन स्तर प्रयुक्त किये जाते हैं?

7.0 जीवन-विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन

अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का समग्र विकास हो क्योंकि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य संबंध ी अपनी परिभाषा में रोगमुक्त होने के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक विकास पर विशेष जोर दिया है। यही नहीं बल्कि उन्होंने सामाजिक व आर्थिक मजबूती पर भी विशेष ध्यान दिाय है। जीवन विज्ञान शिक्षा व्यक्ति के इन सभी पक्षों के विकास की एक सैद्धान्तिक व प्रायोगिक प्रक्रिया है। जीवन विज्ञान इस बात पर ध्यान देता है कि व्यक्ति में—

1. बौद्धिक और भावनात्मक विकास का संतुलन हो,
2. आध्यात्मिक और वैज्ञानिक सोच हो,
3. भावनाओं पर नियंत्रण की क्षमता विकसित हो,
4. शरीर के अन्दर यांत्रिक और रासायनिक क्रियाओं का संतुलन रहे,
5. कार्यकौशल की क्षमता बढ़े,
6. तनाव मुक्त जीवन जीए,
7. अनुशासित एवं सहिष्णु जीवनशैली बने,
8. मैत्री एवं सामंजस्य की क्षमता विकसित हो,
9. संकल्प शक्ति एवं आत्मविश्वास का विकास हो,
10. मानवीय संबंधों के प्रति संवेदनशीलता पैदा हो।

प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों के द्वारा इन सभी गुणों का विकास करने में भरपूर सहायता मिलती है जो अन्ततोगत्वा स्वास्थ्य संवध नि में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.1 प्रेक्षाध्यान प्रयोगों के द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन

7.1.1 सहायक अंगों के द्वारा

प्रेक्षाध्यान के सहायक अंग—

1. आसन,
2. प्राणायाम,
3. मुद्रा,
4. ध्वनि।

7.1.1.1 आसन

विभिन्न आसनों के माध्यम से शरीर के सभी तंत्रों को स्वस्थता प्रदान होती है। इससे शरीर के विजातीय तत्त्व सही रूप से बाहर निकल जाते हैं। साथ ही आवश्यक पोषक तत्त्वों का पर्याप्त रूप से अवशोषण एवं उनका उपयोग हो जाता है, जिससे शरीर स्वस्थ रहता है।

7.1.1.2 प्राणायाम

प्राण तत्त्व वह तत्त्व है, जो हमें जीवित बनाये हुए है। प्राणायाम में प्राण-ऊर्जा के माध्यम से प्राण तत्त्व को उद्दीप्त बनाये रखते हैं, जिससे हमारा स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहता है।

7.1.1.3 मुद्रा

जीवन विज्ञान के अनुसार—

जैसी मुद्रा, वैसे भाव
जैसे भाव, वैसे स्राव (हार्मोन्स)
जैसे स्राव, वैसा स्वभाव,
जैसा स्वभाव, वैसा व्यवहार।

अर्थात् मुद्रा अप्रत्यक्ष रूप से हमारे व्यवहार को बनाती है। अगर हम सुस्त, निढाल, आलस्य, बुढ़ापा, रोगी आदि जैसी नकारात्मक मुद्रा में रहेंगे तो रोगी बनने में देर नहीं लगेगी। वहीं अगर हम अपनी मुद्रा को सुधार लें तो एक स्वस्थ, ऊर्जावान व्यक्ति के रूप में व्यवहार करेंगे।

7.1.1.4. ध्वनि

वैज्ञानिक शोधों के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि ध्वनि का मनुष्य ही नहीं समस्त प्राणी एवं वनस्पति जगत पर भी प्रभाव पड़ता है। प्रेक्षाध्यान में प्रयोग की जाने वाली महाप्राण ध्वनि, अर्हम ध्वनि, ॐ ध्वनि आदि मंत्र हमारे शरीर के चारों तरफ एक सुरक्षा कवच का निर्माण करते हैं तथा विभिन्न रोगों से दूर करते हैं।

7.1.2 मुख्य अंगों के द्वारा

प्रेक्षाध्यान के मुख्य अंग—

1. कायोत्सर्ग	2. अन्तर्यात्रा
3. श्वास प्रेक्षा	4. शरीर प्रेक्षा
5. चैतन्य केन्द्रप्रेक्षा	6. लेश्याध्यान
7. भावना	8. अनुप्रेक्षा।

7.1.2.1 कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग के माध्यम से तनाव मुक्त तो होते ही हैं, साथ ही इसके अतिरिक्त निम्न परिवर्तन भी घटित होते हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. स्नायु तंत्र प्रभावित होता है।
2. मस्तिष्क तरंगों और मस्तिष्कीय विद्युत में परिवर्तन आ जाता है।
3. शरीर की कार्यक्षमता बढ़ जाती है।
4. श्लेष्म आदि दोष दूर होते हैं।
5. अनैच्छिक मांसपेशियों पर अल्प नियंत्रण स्थापित हो जाता है।
6. सर्दी-गर्मी द्वन्द्वों को सहने की क्षमता बढ़ती है।
7. कायोत्सर्ग तनाव से होने वाले सभी रोगों को दूर करता है।

7.1.2.2 अन्तर्यात्रा

प्रेक्षाध्यान का दूसरा चरण है—अन्तर्यात्रा। इसके द्वारा नाड़ी-तंत्र की प्राण-शक्ति (Nervous Energy) को विकसित करते हैं। हमारे केन्द्रीय नाड़ी-तंत्र का मुख्य स्थान है—सुषुम्ना (Spinal Cord) है। सुषुम्ना के नीचे का छोर शक्ति-केन्द्र, ऊर्जा या प्राणशक्ति का मुख्य केन्द्र है। अन्तर्यात्रा में चित्त को शक्ति-केन्द्र से सुषुम्ना के मार्ग से होते हुए ज्ञान-मार्ग तक ले जाना होता है। चेतना की इस यात्रा से ऊर्जा का प्रवाह या प्राण की गति ऊर्ध्वगामी होती हे। इस यात्रा की अनेक आवृत्तियों से नाड़ी-तंत्र की प्राणशक्ति विकसित होती है, जो अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

7.1.2.3 श्वास-प्रेक्षा

श्वास शरीर में चलने वाली चयापचय की क्रियाओं का अभिन्न अंग है। श्वास और प्राण, श्वास और मन—अटूट कड़ी के रूप में काम करते हैं। मन को हम सीधा नहीं पकड़ सकते लेकिन श्वास के माध्यम से पकड़ सकते हैं। मन को एकाग्र करने का एक सरल और सूक्ष्म उपाय है—श्वास-प्रेक्षा। श्वास-परिवर्तन के द्वारा हम मानसिक विकास कर सकते हैं। एकाग्र मन हमें विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों से बचाता है।

(अ) दीर्घश्वास प्रेक्षा—प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाला सबसे पहले श्वास की गति को नियंत्रित करता है। वह श्वास को लम्बा और लयबद्ध बना देता है। सामान्यत: आदमी एक मिनट में 15-17 श्वास लेता है। दीर्घश्वास प्रेक्षा के अभ्यास से यह संख्या घटाई जा सकती है। अभ्यास के बाद यह संख्या एक मिनट में 10 से कम तक की जा सकती है और विशेष अभ्यास के बाद इसे और अधिक कम किया जा सकता है। श्वास को मन्द या दीर्घ करने के लिए तनुपट (Diaphragm) की मांसपेशियों का समुचित उपयोग किया जाता है। श्वास छोड़ते समय पेट की मांसपेशियां सिकुड़ती हैं और लेते समय वे फैलती हैं। इससे आन्तरिक अंगों की रुक्षरत व मालिस होती है।

श्वास को मंद, दीर्घ या सूक्ष्म करने से मन शांत होता है। इसके साथ-साथ आवेश शांत होते हैं, कषाय शांत होते हैं, उत्तेजनाएँ व वासनाएँ शांत होती हैं। श्वास जब छोटा होता है तब वासनाएँ उभरती हैं, उत्तेजनाएँ आती हैं, कषाय जागृत होते हैं। उभरने वाली वृत्ति तत्काल शांत हो जाती है। व्यक्ति उन वृत्तियों की उत्तेजनाओं का शिकार नहीं होता है। इससे कार्यक्षमता भी बढ़ती है तथा व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ बना रहता है।

(ब) समवृत्ति श्वास प्रेक्षा—इस प्रक्रिया में बाएं नथुने से श्वास लेकर दाएं से निकालते हैं और दाएं से लेकर बाएं से निकालते हैं। इसे देखना, इसकी प्रेक्षा करना, इसके साथ चित्त का योग करना ही श्वासप्रेक्षा है। लेकिन ध्यान यह रखना है कि दोनों ही तरफ श्वास लेने व छोड़ने में समान समय लगे। यह प्रयोग शरीर में संतुलन स्थापित कर व्यक्ति को स्वस्थ बनाता है।

7.1.2.4 शरीर-प्रेक्षा

इस प्रयोग में चित्त के द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग एवं अवयव की प्रेक्षा की जाती है। इससे जहां कहीं भी किसी प्रकार की अनियमितता दिखती है, वह प्राणऊर्जा के द्वारा ठीक कर ली जाती है। शरीर प्रेक्षा से रोग-प्रतिरोधक क्षमता का भी विकास होता है।

7.1.2.5 चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा

इस प्रक्रिया में शरीर के तेरह चैतन्य केन्द्रों पर प्रेक्षा की जाती है। अगर हम वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो पाते हैं कि इस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रक्रिया के माध्यम से हम अपने अन्त:स्रावी ग्रंथियों के स्रावों पर नियंत्रण स्थापित करते हैं जो भावों को जन्म देती है एवं भावात्मक रूप से व्यक्ति को स्वस्थ या अस्वस्थ बनाती है।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार हमारे शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियां हैं—वाहिनीयुक्त एवं वाहिनीरहित वाहिनी-रहित ग्रंथियां अन्त:स्रावी होती हैं। इन्हें 'एण्डोक्राइन ग्लैण्ड्स' कहा जाता है। पीनियल, पिच्यूटरी, थाइराइड, पेराथाइराइड, थाइमस, एड्रीनल और गोनाड्स—ये सभी अन्त:स्रावी ग्रंथियां हैं। इनके स्राव हार्मोन कहलाते हैं। हमारी शारीरिक, मानसिक और भावात्मक प्रवृत्तियों के संचालन में इन ग्रंथियों के द्वारा उत्पन्न स्रावों (हार्मोनों) का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। हमारी शरीर की चयापचय सम्बन्धी सभी क्रियाओं के संचालन में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है जो कि स्वास्थ्य संतुलन के लिए जिम्मेदार होती हैं।

मनुष्य की जितनी दीर्घकालीन आदतें बनती हैं उनका मूल उद्गम-स्थल है—ग्रंथि-तंत्र। हमारे शरीर के दो नियामक तंत्र हैं—एक है नाड़ीतंत्र (Nervous System) और दूसरा है ग्रंथितंत्र। नाड़ीतंत्र में हमारी सारी वृत्तियां अभिव्यक्त होती हैं, अनुभव में आती हैं और फिर व्यवहार में उतरती है। व्यवहार, अनुभव या अभिव्यक्तिकरण—ये सब नाड़ी-तंत्र के काम हैं किन्तु आदतों का जन्म, आदतों की उत्पत्ति ग्रंथि-तंत्र में होती है। जो हमारी अन्त:स्रावी गंथियां हैं, उनमें आदतें जन्म लेती हैं। वे आदतें मस्तिष्क के पास पहुंचती हैं, नाड़ी तंत्र के द्वारा अभिव्यक्त होती हैं और व्यवहार में उतरती हैं। इसलिए विज्ञान में एक शब्द का प्रयोग हुआ है—न्यूरो-एण्डोक्राइन सिस्टम।

अन्त:स्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो शारीरिक उत्तेजना को बढ़ाते हैं औद दूसरे वे जो उत्तेजना को कम करते हैं। चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के अभ्यास से इन हार्मोनों के स्रावों में संतुलन स्थापित हो जाता है जिससे भाव भी संतुलित हो जाते हैं। यह भाव सन्तुलन अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

7.1.2.6 लेश्या-ध्यान

'लेश्या' का अर्थ है—विशिष्ट रंग वाले पुद्गल द्रव्य (Matter) के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला जीव का परिणाम या चेतना का स्तर। कषाय की तरंगें और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य की तरंगें—इन सब तरंगों को भाव के रूप में निर्माण करना और उन्हें विचार, कर्म और क्रिया तक पहुंचा देना—यह लेश्या का काम है। लेश्या ही सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर के बीच सम्पर्क-सूत्र है।

इस स्तर तक पहुंचने पर व्यक्तित्व का रूपान्तरण घटित होता है। लेश्याएँ अच्छी होंगी तो व्यक्तित्व अच्छा हो जाएगा। लेश्याएँ बुरी होंगी तो व्यक्तित्व बुरा हो जाएगा। दोनों ओर बदलाव, रूपान्तरण घटित होगा। इसके लिए हमें रंगों का सहारा लेना होगा। रंग हमारे व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते हैं। यदि हम रंगों की क्रियाओं और उनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझ लेते हैं तो व्यक्तित्व के रूपान्तरण में हमें बड़ा सहयोग मिलता है। व्यक्तित्व रूपान्तरण का सीधा प्रभाव हमोर स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। सन्तुलित एवं समग्र व्यक्तित्व विकास ही स्वास्थ्य है।

7.1.2.7 भावना

हमारी जैसी भावना होगी, वैसा हमारा व्यक्तित्व होगा और वैसा ही हमारा आचरण होगा। अगर हम शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक रूप से स्वस्थ रहने की भावना करें तो हम सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ हो सकते हैं। इसका कारण है कि मनुष्य जैसी भावना करता है, जिस अभ्यास को दोहराता है, उसी के अनुरूप उसका संस्कार निर्मित हो जाता है। यह आत्म-सम्मोहन की प्रक्रिया है। इसे 'जप' भी कहा जा सकता है। आत्मा की भावना करने वाला आत्मा में स्थिर हो जाता है। 'सोऽहं' के जप का यही मर्म है। 'अर्हम्' की भावना करने वाले में 'अर्हत्' होने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। स्वस्थ रहने की भावना करने से व्यक्ति स्वस्थ रहता है। अगर रोगी है तो स्वस्थ हो जाता है।

7.1.2.8 अनुप्रेक्षा

प्रेक्षा की समाप्ति के पश्चात् मन की मूर्च्छा को तोड़ने वाले विषयों का अनुचिंतन करना ही अनुप्रेक्षा है। जिस विषय का अनुचिंतन बार-बार किया जाता है, उससे मन प्रभावित हो जाता है। कोई भी चिंतन या अभ्यास तभी फलीभूत होता है जब वह अचेतन मन तक पहुंच जाता हैं अनुप्रेक्षा का प्रयोग अचेतन मन से सम्पर्क करने की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा करने से अचेतन मन मस्तिष्क में स्वास्थ्य सम्वर्धन से जुड़ी प्रक्रियाओं को उद्दीप्त करता है और वे सक्रिय हो उठती हैं। जहां कहीं भी साम्यावस्था का असन्तुलन होता है अथवा कोई अन्य अनियमितता होती है, उसे ठीक करने का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार धीरे-धीरे स्वास्थ्य की सामान्य स्थिति बन जाती है।

7.2 अणुव्रत जीवनशैली से स्वास्थ्य संवर्धन

अणुव्रत एक आचार-संहिता है जिसके व्रत हमें एक विशेष प्रकार की जीवनशैली अपनाने की प्रेरणा देते हैं, इसमें सह-अस्तित्व, सद्भाव, करुणा, मैत्री, अहिंसा एवं सहिष्णुता की प्रधानता होती है। इन व्रतों के माध्यम से हमें उन जीवन-मूल्यों की अनुपालना में सहायता मिलती है जिनसे न केवल व्यक्तिगत तौर पर लाभ होता है बल्कि प्राकृतिक एवं पारिस्थितिकीय संतुलन भी स्थापित होता है। साथ ही उन शारीरिक एवं मनोजैविक उद्दीपनों के स्रोत से भी मुक्ति मिलती है जो हमारे भीतर विविध प्रकार के विकार उत्पन्न करते हैं। अणुव्रतों के व्रत सामान्य जीवन जीते हुए व्यक्ति का नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान करने, उन्हें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह जैसे जीवन मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देने के लिए किया गया। हमारे दैनिक जीवन में इन जीवन मूल्यों का अभाव हमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक रूप से कमजोर तो बनता ही है, भांति-भांति से रोगी भी बना देता है। अणुव्रत के नियमों का पालन करके हम इस रुग्णता से छुटकारा पा सकते हैं और एक स्वस्थ तथा खुशहाल जीवन जी सकते हैं। अणुव्रत आचार-संहिता मूलत: एक चारित्रिक आन्दोलन है। नैतिकता और सत्याचरण इसके मूल मंत्र हैं। आत्मविवेचन और आत्मपरीक्षण इसके साधन हैं। इसके पालन करने से शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक, सामाजिक व आर्थिक विकास संभव है जो स्वास्थ्य की मूल आवश्यकता है।

अणुव्रत के निदेशक तत्त्व

1. दूसरों के अस्तित्व के प्रति संवेदनशीलता।
2. मानवीय एकता।
3. सह-अस्तित्व की भावना।
4. साम्प्रदायिक सद्भाव।
5. अहिंसात्मक प्रतिरोध।
6. व्यक्तिगत संग्रह और भोगोपभोग की सीमा।
7. व्यवहार में प्राथमिकता।
8. साधन-शुद्धि की आस्था।
9. अभय, तटस्थता और सत्य-निष्ठा।

अणुवत : आचार-संहिता

1. मैं किसी भी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।
   - ❖ आत्म-हत्या नहीं करूंगा।
   - ❖ भ्रूण-हत्या नहीं करूंगा।
2. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।
   - ❖ आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
   - ❖ विश्व-शांति तथा नि:शस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।
3. मैं हिंसात्मक एवं तोड़-फोड़ मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।
4. मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।
   - ❖ जाति, रंग आदि के आधार पर किसी को ऊंच-नीच नहीं मानूंगा।
   - ❖ अस्पृश्य नहीं मानूंगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।
   - ❖ साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊँगा।

6. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।
   - ❖ अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।
   - ❖ छलनापूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।

7. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।

8. मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।

9. मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।

10. मैं व्यसन-मुक्त जीवन जीऊँगा।
    - ❖ मादक तथा नशीले पदार्थों—शराब, गांजा, चरस, हेराइन, भांग, तम्बाकू आदि का सेवन नहीं करूंगा।

11. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।
    - ❖ हरे-भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।
    - ❖ पानी का अपव्यय नहीं करूंगा।

अणुव्रत आचार-संहिता के उपरोक्त सभी नियम स्वस्थ व्यक्ति एवं स्वस्थ समाज दोनों के लिए आवश्यक हैं। अणुव्रत का **प्रथम नियम** व्यक्ति को आत्महत्या की प्रवृत्ति से बचने को प्रेरित करता है, वहीं भ्रूण-हत्या को रोककर मातृशक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य की रक्षा करता है।

स्वास्थ्य की सबसे खराब स्थिति उन देशों की है, जहाँ आक्रमण या गृहयुद्ध हो रहे हैं। अणुव्रत का **द्वितीय एवं तृतीय नियम** आक्रमण को रोकने की बात करते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से वे समाज पिछड़े हुए हैं, जिन्हें घृणा की दृष्टि से देखा गया, जिनके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया गया, जैसे—रंग-भेद के शिकार अफ्रीका के देश। जाति भेद के शिकार हमारे देश की निम्न जातियों के लोग। इन सभी के स्वास्थ्य की स्थिति संतोषजनक नहीं है। जहां-जहां ये भेद समाप्त हुए हैं, वहां के व्यक्तियों के स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ है। अणुव्रत का **चतुर्थ एवं पंचम नियम** हमें ये भेद समाप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं।

स्वास्थ्य को सर्वाधिक हानि अगर किसी से हुई है तो वह है मिलावटी वस्तुएँ। अब दूध में पानी बहुत दूर की बात हो गई है। वर्तमान में नकली दूध, नकली खोया, नकली घी आम बात हो गयी है। हल्दी, धनिया, मिर्च, तेल समस्त खाद्य पदार्थ नकली व मिलावटी मिल रहे हैं। उससे भी ज्यादा खतरनाक स्थिति तब होती है जब इन मिलावटी वस्तुओं के उपयोग के पश्चात् बीमार हों तथा बीमारी को दूर करने के लिए दवा लेते हैं लेकिन दवा भी नकली निकलती है। अणुव्रत का **छटवां नियम** इस प्रकार के व्यवहार को हतोत्साहित करता है।

एड्स एक ऐसा रोग है, जिसका कोई उपचार आज तक संभव नहीं हुआ है। इस बीमारी का कारण अनैतिक व अप्राकृतिक संबंध रहा है। अन्य कई रोग इस प्रकार के संबंधों की देन है, जैसे—सुजाक, गनोरिया, सिफलिस आदि आचार-संहिता का **सप्तम नियम** इस प्रकार के आचरण को रोकता है।

आप पूर्व में पढ़ चुके हैं कि अच्छी राजनैतिक स्थितियां अच्छी स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करती हैं। अष्टम नियम एक अच्छी राजनैतिक स्थिति पैदा करने में सहायक है। **अष्टम नियम** हमें सही लोकतंत्र व्यवस्था लाने के लिए प्रेरित करता है।

समाज के दकियानूसी रीति-रिवाज समाज के साथ-साथ व्यक्ति के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं। आचार-संहिता का **नवां नियम** कुरूढ़ियों को दूर कर स्वस्थ समाज की स्थापना करता है।

नशा हमारे स्वास्थ्य के लिए कितना हानिकारक है, वह आप जानते ही हैं। कैंसर जैसे रोग, तंत्रिका तंत्र की बीमारियां, दुर्घटनाएँ आदि नशे की ही देन हैं। **दसवां नियम** हमें नशामुक्त जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हमारा शरीर जिन तत्त्वों से निर्मित है, वे सभी हमारे पर्यावरण में उपलब्ध हैं लेकिन प्रदूषण व अन्य कारणों से उनका अनुपात बिगड़ गया है। हानिकारक तत्त्वों की अधिकता हो गई है (देखें इकाई–1–क), जो हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहे हैं। **ग्यारहवां नियम** हमें पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति जागरूक करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अणुव्रत के सभी नियम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे स्वास्थ्य में सहायक हैं।

बोध–प्रश्न

प्रश्न–1. अणुव्रत का दसवां नियम हमारे स्वास्थ्य संवर्धन में किस प्रकार सहायक है?

प्रश्न–2. चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा के द्वारा अच्छा स्वास्थ्य कैसे प्राप्त होगा? स्पष्ट करें।

8.0 सारांश

स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ

यह वह अभियान है, जो जन–साधारण को स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान व आदतों के सीखने में सहायता प्रदान करता है।

स्वास्थ्य शिक्षा की परिभाषाएँ

स्वास्थ्य शिक्षा लोगों के स्वास्थ्य से जुड़े व्यवहार से संबंधित है।

स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य

लोगों को जागरूक करना, लोगों को प्रेरित करना, कार्यवाही हेतु आवश्यक दिशा–निर्देश देना।

स्वास्थ्य शिक्षा का महत्त्व

व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक स्वास्थ्य के लिए एवं रोगी की देखभाल हेतु स्वास्थ्य शिक्षा का बहुत बड़ा महत्त्व है।

स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त

स्वास्थ्य शिक्षा के निम्न सिद्धान्त हैं—

- ❖ रुचि
- ❖ सहभागिता
- ❖ सम्प्रेषण
- ❖ अभिप्रेरणा
- ❖ बौद्धिक स्तर

स्वास्थ्य शिक्षा की प्रविधि

जन–साधारण तक इस कार्यक्रम को पहुंचाने के लिए निम्न तीन स्तर प्रयुक्त किये गए हैं—

- ❖ वैयक्तिक स्तर
- ❖ समूह स्तर
- ❖ जन–साधारण स्तर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जीवन-विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन

अहिंसा, अनेकान्त, अणुव्रत एवं प्रेक्षाध्यान के द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने से स्वास्थ्य संवर्धन किया जा सकता है।

प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन

सहायक अंगों के द्वारा–

- ❖ आसन
- ❖ प्राणायाम
- ❖ मुद्रा
- ❖ ध्वनि

मुख्य अंगों के द्वारा–

- ❖ कायोत्सर्ग
- ❖ अन्तर्यात्रा
- ❖ श्वास-प्रेक्षा
- ❖ शरीर-प्रेक्षा
- ❖ चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा
- ❖ लेश्या-ध्यान
- ❖ भावना
- ❖ कायोत्सर्ग

अणुव्रत जीवनशैली से स्वास्थ्य संवर्धन

अणुव्रत की आचार संहिता के सभी ग्यारह नियम स्वास्थ्य संवर्धन में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होते हैं।

9.0 प्रश्नावली

निबंधनात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ, परिभाषाएँ एवं सिद्धान्त बताइये।
2. स्वास्थ्य शिक्षा का सिद्धान्त बताते हुए उसकी प्रविधि भी लिखिए।
3. जीवन-विज्ञान विषय किस प्रकार स्वास्थ्य संवर्धन में सहायक है? विस्तार से लिखिए।

लघु-उत्तरात्मक प्रश्न

1. स्वास्थ्य शिक्षा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. स्वास्थ्य शिक्षा की कोई चार परिभाषाएँ लिखिए।
3. स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त बताइये।
4. प्रेक्षाध्यान के सहायक अंग स्वास्थ्य-संवर्धन में सहायक हैं, सिद्ध कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किसने कहा कि स्वास्थ्य शिक्षा लोगों के स्वास्थ्य से जुड़े व्यवहार से संबंधित है?
2. अणुव्रत का कौन-सा नियम हमें व्यसन-मुक्त जीवन जीने की प्रेरणा देता है?
3. प्रेक्षाध्यान का कौन-सा प्रयोग रंगों के ध्यान के माध्यम से हमारे व्यक्तित्व में परिवर्तन करता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–2 शरीर का रचनात्मक संगठन

पाठ–क

कोशिका, ऊतक एवं तंत्रों का संगठनात्मक परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

पिछले अध्याय में आपने स्वास्थ्य की अवधारणा, स्वास्थ्य के निर्धारक तत्त्व, पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के अन्तर्संबंध, स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त एवं प्रविधि तथा जीवन–विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन का ज्ञान प्राप्त किया।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए शरीर को जानना बहुत आवश्यक है। अगर हम शरीर के अंगों की रचना, उनकी बनावट एवं उनकी कार्यप्रणाली को समझ लेंगे तो उसके अनुरूप ही कार्य करेंगे, जो हमारे स्वास्थ्य के अनुकूल होगा। इसलिए प्रस्तुत पाठ के खण्ड–क में कोशिका, ऊतक एवं तंत्रों का संगठनात्मक परिचय दिया जा रहा है। यदि आपने इस पाठ में थोड़ा–सा श्रम अधिक कर लिया तो आगे के पाठों में बहुत सुगमता हो जाएगी।

हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं—

उद्देश्य

1. आप शरीर की सबसे छोटी इकाई की संरचना को जान सकेंगे।
2. कोशिका के अंगों की कार्य–प्रणाली का सामान्य परिचय आपको प्राप्त होगा।
3. ऊतक को संरचना की दृष्टि से समझ सकेंगे।
4. ऊतक के प्रकार एवं उनके कार्यों का ज्ञान होगा।
5. शरीर के विभिन्न तन्त्रों की संरचना का ज्ञान होगा।
6. तन्त्रों की कार्यप्रणाली का सामान्य परिचय भी प्राप्त कर सकेंगे।

विषय–वस्तु

1.0 कोशिका
- 1.1 कोशिका भित्ति
- 1.2 कोशिका जीव–द्रव्य
  - 1.2.1 माइटोकोन्ड्रिया
  - 1.2.2 गाल्गीजाल
  - 1.2.3 अन्तर्द्रव्य जालिका
  - 1.2.4 लाइसोसोम
  - 1.2.5 राइबोसोम
  - 1.2.6 सेन्ट्रोसोम
- 1.3 केन्द्रक

2.0 ऊतक
- 2.1 आच्छादक ऊतक
  - 2.1.1 साधारण उपकला ऊतक
  - 2.1.2 संयुक्त उपकला ऊतक
- 2.2 संयोजी ऊतक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.1 श्वेत स्रोत्रिक ऊतक
2.2.2 पीत प्रत्यास्था ऊतक
2.2.3 अवकाशी ऊतक
2.2.4 जालक ऊतक
2.2.5 लसीकाभ ऊतक
2.2.6 वसामय ऊतक
2.2.7 उपस्थि ऊतक
2.2.8 अस्थि ऊतक
2.2.9 रक्त ऊतक
2.3 तंत्रिका ऊतक
2.4 पेशी ऊतक
2.4.1 ऐच्छिक पेशी
2.4.2 अनेच्छिक पेशी
2.4.3 हत्पेशी
3.0 तंत्र
3.1 तंत्रिका तंत्र
3.2 श्वसन तंत्र
3.3 पाचन तंत्र
3.4 रक्त परिसंचरण तंत्र
3.5 अन्त:स्रावी ग्रंथि तंत्र
3.6 अस्थि तंत्र
3.7 पेशीय तंत्र
3.8 उत्सर्जन तंत्र
3.9 जनन तंत्र
4.0 सारांश
5.0 प्रश्नावली

1.0 कोशिका

जीव द्रव्य (Protoplasm) सजीव होने की पहचान है, जो एक कोमल आवरण से ढका रहता है, जिसे ''कोशिका'' (Cell) कहते हैं। किन्हीं-किन्हीं प्राणियों में मात्र एक तथा किन्हीं-किन्हीं में असंख्य कोशिकाएँ होती हैं। अमीबा, पैरामीशियम आदि जीव एक कोशीय हैं, वहीं मनुष्य बहुकोशीय जीव है। जीव की वृद्धि कोशिका विभाजन से होती है। कोशिका में ही जीव की लम्बाई, रंग, कई बीमारियों आदि की कुण्डली होती है, जिसे उपकरणों के माध्यम से देखकर जीव के विषय में सत्य भविष्यवाणी की जा सकती है।

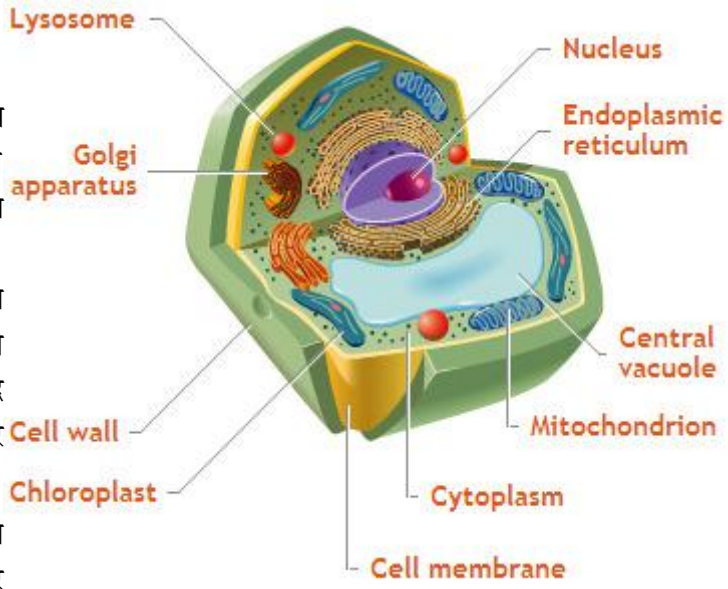

कोशिका शरीर की सबसे छोटी इकाई होती है। ये विभिन्न आकार की होती हैं। कोशिका को निम्न प्रकार

Jan Nayak Chaudhary Devi Lal Shiksha Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

परिभाषत किया जा सकता है—**'कोशिका', जीवित पदार्थ की एक रचनात्मक तथा क्रियात्मक इकाई है, जो स्वतंत्र रूप से जीवन की क्रियाओं को चलाने की क्षमता रखती है।**

समान रचना तथा कार्यों वाली कोशिकाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार के ऊतकों का निर्माण करती है। ऊतकों से अंगों का निर्माण होता है। अंगों से तंत्रों का निर्माण होता है तथा सभी तंत्र मिलकर शरीर का निर्माण करते हैं। कोशिका रचना को अलग-अलग भागों में निम्न प्रकार समझ सकते हैं—

1.1 कोशिका भित्ति (Cell Membrane)

सम्पूर्ण कोशिका को ऊपर से ढकने वाले आवरण को कोशिका भित्ति कहते हैं। कोशिका भित्ति की उत्पत्ति वास्तव में भीतर के गाढ़े तरल पदार्थ के ठोस हो जाने से ही होती है। इसका निर्माण वसा, प्रोटीन तथा लवणों से होता है। यह पारदर्शी होती है। इसमें बहुत छोटे-छोटे बारीक छिद्र होते हैं जिनसे कोशिका को पोषण प्राप्त होता है तथा हानिकारक पदार्थ बाहर निकलते हैं। कोशिका भित्ति की मोटाई 7nm (Nano meters), लगभग 3/10,000,000 इंच होती है। अत: इलेक्ट्रॉनिक माइक्रोस्कोप से देख पाना ही संभव है। कोशिका भित्ति के मुख्य कार्य निम्न हैं—

1. बाह्य उत्तेजनाओं को ग्रहण करना।
2. कोशिका के कोमल अंगों की रक्षा करना।
3. कोशिका के विकारों को बाहर निकालना।
4. अनावश्यक पदार्थों को भीतर नहीं आने देना।
5. पौष्टिक पदार्थों को ग्रहण करना।

1.2 कोशिका जीव द्रव्य (Cell Protoplasm or Cytoplasm)

कोशिका जीव द्रव्य किन मौलिक तत्त्वों से मिलकर बना है तथा इसका वास्तविक गठन किस प्रकार का है, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसका अध्ययन जीवित अवस्था में कर पाना संभव नहीं है अत: इसका अध्ययन रासायनिक रंगों से रंगकर किया जाता है जिससे इसकी मृत्यु हो जाती है तथा इसका विघटन हो जाता है। मृत्यु पश्चात् अध्ययन से वैज्ञानिकों का यह मानना है कि यह एक जैली की तरह गाढ़ा, लसलसा, साफ तरल पदार्थ की तरह दिखाई देती है। कभी यह फेनदार तथा कभी जाल के रूप में भी दिखाई देती है।

इस जीव द्रव्य या कोशिका सार में वसा, प्रोटीन, कार्बोज, कैल्शियम, पोटेशियम आदि पाये जाते हैं। कोशिका में कुछ सक्रिय अंग भी होते हैं जिन्हें जीव द्रव्य का जीवित भाग कहा जाता है। ये निम्न हैं—

1. माइटोकोन्ड्रिया (Mitocondria)
2. गोल्गीजाल (Golgi Apparatas)
3. अन्तर्द्रव्य जालिका (Endoplasmic Reticulum)
4. लाइसोसोम (Lysosome)
5. राइबोजोम (Ribosome)
6. सेन्ट्रोसोम (Centrosome)।

1.2.1 माइटोकोन्ड्रिया (Mitocondria)

माइटोकोन्ड्रिया कोशिका का पावर-हाऊस (Power-House) है क्योंकि यह आहार से प्राप्त ऊर्जा को ए.टी.पी. (Adenosin Triphosphate) में परिवर्तित कर अपने में एकत्र (store) कर लेता है।

'माइटोकोन्ड्रिया' शब्द का प्रयोग बेन्डा (Benda) ने सन् 1897 में किया। माइट्रोकोन्ड्रिया का आकार 0.25μ तक तथा संख्या 500-1500 तक होती है। इसमें प्रोटीन 70%, लिपिड्स 25-30% होते हैं। कुछ मात्रा में सल्फर, कॉपर तथा आयरन भी पाया जाता है। इसमें RNA व DNA (Ribonucleic Acid and Deoxyribonucleic Acid) भी होता है जो प्रोटीन संश्लेषण में कार्य करता है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.2.2 गोल्गीजाल या गाल्गीकाय (Golgi Appratus or Golgi Network or Golgi Body)

इनकी रचना सूक्ष्म धागों के समान दिखाई देती है। यह लाइपोप्रोटीन से बनी होती है। सामान्यत: ये कोशिका के एक छोर पर रहती हैं।

गाल्गीकाय के मुख्य तीन कार्य हैं—

1. कोशिका स्राव इसका मुख्य कार्य है। इससे लगातार स्राव बाहर की ओर जाते रहते हैं। ये स्राव एन्जाइम, हार्मोन्स व म्यूकस आदि हैं।
2. उपरोक्त स्रावित पदार्थ अलग-अलग भागों में बनते हैं। गाल्गी में पहले इनका सान्द्रण व संग्रह किया जाता है।
3. लाइसोसोम का निर्माण करना।

1.2.3 अंतर्द्रव्य जालिका (Endoplasmic Reticulum)

ये वेसीकल्स कुंड एवं नलिकाओं के रूप में होते हैं। इनके मुख्य कार्य निम्न हैं—

1. स्टेरायड हार्मोन्स का संश्लेषण करना,
2. हाइड्रोक्लोरिक एसिड को स्रावित करना,
3. यकृत की कोशिकाओं में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेड का संश्लेषण करना,
4. कोशिका के विभिन्न पदार्थों के लिए परिवहन का कार्य।

1.2.4 लाइसोसोम (Lysosome)

लाइसोसोम को सर्वप्रथम De Duve ने 1955 में कोशिका द्रव्य के अन्दर देखा। इनकी आकृति अधिकांशत: गोलाकार बैग के समान होती है लेकिन यह अनियमित आकृति की भी होती है। इनका आकार 0.1-2μ होती है। कुछ कोशिकाओं में 5μ तक भी पाई जाती है।

लाइसोसोम का प्रधान कार्य अन्तर-कोशिकीय पाचन है। विशेष परिस्थितियों में यह क्षतिग्रस्त कोशिकाओं एवं अंत:पदार्थ को भी पचा जाता है। इसलिए इसे आत्महत्या की थैली (Suicide Bag) भी कहते हैं।

1.2.5 राइबोजोम (Ribosome)

राइबोजोम सूक्ष्म कण है। यह अन्तर्द्रव्य जालिका (Endoplasmic Reticulum) की झिल्लियों में लगे हुए अथवा समूह में बिखरे हुए रहते हैं। यह RNA से भरपूर रहते हैं तथा समस्त कोशिका का 60% प्रोटीन इन्हीं में रहता है। प्रोटीन संश्लेषण से संबंधित होने के कारण राइबोजोम को प्रोटीन की फैक्ट्री (Protein-Factories) भी कहते हैं।

1.2.6 सैन्ट्रोसोम (Centrosome)

सेन्ट्रोसोम को आकर्षण मंडल कहते हैं। इसके मध्य में गहरे रंग के दाने होते हैं, जो गोलाभ सिलिण्डर के समान दिखाई देते हैं। इनका व्यास 0.15-0.25μ तथा लम्बाई 0.3-2.0μ तक होती है। यह प्रोटीन, लिपिड के बने होते हैं।

कोशिका विभाजन के समय सर्वप्रथम इनका विभाजन होता है। विभाजित सेन्ट्रोसोम दो विपरीत दिशाओं की तरफ चले जाते हैं। फिर केन्द्रक के भीतर स्थित गुणसूत्रों का पुनर्विन्यास (Re-Arrangement) होता है, फिर वे विशेष प्रकार की क्रिया के पश्चात् दो दिशाओं (ध्रुवों) पर एकत्र हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे कोशिका दो भागों में बंट जाती है। इस प्रकार दो नवीन कोशिकाएँ बन जाती हैं। इनका पुन: विभाजन भी इसी प्रकार होता है।

1.3 केन्द्रक (Nucleus)

विद्युतीय सूक्ष्मदर्शी से देखने पर कोशिका के मध्य में एक गोलाकार रचना दिखाई देती है, जिसे केन्द्रक कहते हैं। इसके दो भाग होते हैं—1. केन्द्रक झिल्ली (Nuclear Membrane) 2. केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm).

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. केन्द्रक झिल्ली (Nuclear Membrane)—केन्द्रक के चारों तरफ दोहरी परत की एक पारदर्शी झिल्ली होती है, जो केन्द्रक द्रव्य को चारों तरफ से घेरे रहती है। इसका मुख्य कार्य है—कोशिका जीव द्रव्य एवं केन्द्रक द्रव्य के मध्य आवागमन पर नियंत्रण रखना।

2. केन्द्रक द्रव्य (Nucleoplasm)—केन्द्रक के अन्दर जो द्रव्य भरा होता है, उसे केन्द्रक द्रव्य कहते हैं। इसमें क्रोमोटिन (Chromotin) तथा क्रोमोसिन (Chromosin) रहता है। क्रोमोटिन ही बाद में क्रोमोसोम (Chromosome) में बदल जाता है। मानव में इनकी संख्या 23 जोड़े अर्थात् 46 होती है। ये राड के समान होते हैं। इनमें मोती पिरोये धागे समान जीन (Gene) होते हैं। ये ही संतति में पैतृक गुण-दोष के वाहक होते हैं। इन्हीं के कारण हमारा रंग, ऊँचाई, बीमारी, शरीर आकृति आदि माता-पिता से मिलते-जुलते होते हैं।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—गोल्गीकाय के मुख्य कार्य बताइये।

प्रश्न—कोशिका भित्ति के मुख्य कार्य बताइये।

प्रश्न—क्रोमोटिन क्या है?

2.0 ऊतक (Tissue)

ऊतक कोशिकाओं के ऐसे समूह को कहते हैं जिनमें सभी कोशिकाएँ उद्गम, रूप, कार्य तथा विकास में एक समान होती है। एक वर्ग के ऊतक एक ही वर्ग के विशिष्ट गुण युक्त कोशिकाओं से निर्मित होते हैं। अर्थात् समान रचना तथा समान कार्यों वाली कोशिका का समूह ऊतक कहलाता है। ऊतक (Tissue) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसीसी वैज्ञानिक 'बाइकाट' (Bichat) ने किया था।

ऊतक के प्रकार (Types of Tissues)

विकास के आधार पर ऊतक को मुख्य चार भागों में बांटा जा सकता है—

1. आच्छादक ऊतक (Epithelial Tissues)
2. संयोजी ऊतक (Connective Tissues)
3. तंत्रिका ऊतक (Nervous Tissues)
4. पेशीय ऊतक (Muscular Tissues).

2.1 आच्छादक ऊतक (Epithelial Tissues)

इसे उपकला ऊतक भी कहते हैं। एपीथेलियल शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वैज्ञानिक रयूश (Ruysch) ने किया था। ये ऊतक हमारे शरीर की रक्षा उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार फलों व सब्जियों की रक्षा छिलका करता है। ये ऊतक अंगों की सीमा, स्वतंत्र सतहों तथा अस्तर कला को बनाते हैं। पाचन संस्थान एवं श्वसन तंत्र की नलियों को भी एक आवरण देता है। मुख से लेकर गुदा मार्ग तक की भीतरी दीवार भी इसी ऊतक की बनी होती है। शरीर की समस्त रक्त वाहिनियों को भी यही ऊतक ढककर रखता है। इनका पोषण लसिका (Lymphs) करती है। रचना के अनुरूप आच्छादक ऊतक निम्न प्रकार के होते हैं। इन कोशिकाओं को जोड़ने का कार्य म्यूको प्रोटीन द्वारा होता है। इसके मुख्य प्रकार निम्न हैं—

2.1.1 साधारण उपकला ऊतक

1. शल्की ऊतक (Squamous Tissues)
2. रोमि का ऊतक (Ciliated Tissues)
3. स्तम्भाकार ऊतक (Columnar Tissues)
4. ग्रंथिक ऊतक (Glandlar Tissues)
5. संवेदी ऊतक (Sensory Tissues)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.1.2 संयुक्त-उपकला ऊतक (Compound-Epithelium Tissues)

1. शल्की ऊतक (Squamous Tissues)—इसकी कोशिकाएँ षष्टकोण या अष्टकोण होती हैं तथा एक-दूसरे से लगी रहती हैं। इनमें कई कोशिकाएँ पर्तों में होती हैं। शल्की ऊतक अधिकांशत: त्वचा, फेफड़ों के वायुकोश तथा गाल के अन्दर की झिल्ली में पाये जाते हैं।

2. रोमिका ऊतक (Ciliated Tissues)—इनकी कोशिकाएँ स्तम्भाकार व घनाकार होती हैं। प्रत्येक कोशिका के छोर पर 20 से 30 रोमिकाएँ (Cilia) रहती हैं, जिनमें रोमक गति (Ciliary Movement) होती है। यह प्रति सैकेण्ड 10 से 20 बार तक होती है। ये ऊतक श्वसन मार्गों डिम्बवाही नली, सुषुम्ना की मध्य नलिका व अन्य स्थानों पर होते हैं।

3. स्तम्भाकार ऊतक (Columnar Tissues)—इसकी कोशिकाएँ स्तम्भ की तरह पतली तथा लम्बी होती हैं। ये अंगों को धागे की तरह आधार प्रदान करती हैं। मुख्यत: ये ऊतक, आमाशय, छोटी आंत, वायु-कोशिका, कोषों, ग्रंथियों की नलिकाओं आदि जगह पाये जाते हैं। इनका मुख्य कार्य स्रावण (secretion) एवं अवशोषण (absorption) है।

4. ग्रंथिक ऊतक (Glandlar Tissues)—इस ऊतक की कोशिकाओं का आकार स्थान के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। ये प्राय: एक ही स्तर में रहती हैं। इनमें सदैव नये पदार्थ का निर्माण और उत्पादन करने की विशेषता रहती है। ये ऊतक मुख्यत: वायु-कोष्ठिका-कोषों ग्रंथियों की वाहिनियों के कुछ भागों में दुग्ध, स्वेद लार, आंत्रिक, चुल्लिका आदि ग्रंथियों पर पाये जाते हैं।

5. संवेदी ऊतक (Sensory Tissues)—इनको कोशिकाओं के एक सिरे पर बहुत से रोएँ जैसे बारीक बाल होते हैं तथा दूसरा सिरा संवेदक तंत्रिका से जुड़ा रहता है। ये कान के अन्दर, नाक व आंख में पाये जाते हैं।

उपरोक्त पांचों ऊतक साधारण उपकला ऊतक (Simple Epithelium) कहलाते हैं। इनमें कोशिकाएँ केवल एक स्तर में रहती हैं।

2.1.2 संयुक्त-उपकला ऊतक (Compound-Epithelium Tissues)

संयुक्त उपकला ऊतक में कोशिकाओं के कई स्तर होते हैं। ये ऊतक कई प्रकार के होते हैं। कुछ में इनके ऊपर वाला स्तर कठोर हो जाता है, जैसे—त्वचा, बाल, नख, खुर, सींग आदि। इस समूह के ऊतक मुख, ग्रसनी, मूत्रमार्ग, नेत्र-श्लेष्मल, कंठच्छद, स्वर-यंत्र, तालू आदि स्थानों में होते हैं।

2.2 संयोजी ऊतक (Connective Tissues)

इन्हें संयोजक ऊतक भी कहते हैं। ये शरीर में सबसे ज्यादा फैले होते हैं। लगभग 30 प्रतिशत भाग में इनका फैलाव होता है। इन कोशिकाओं के बीच में स्थान होता है, जिसमें एक रचना विहीन अंत:कोशिका पदार्थ (Inter-Cellular-Substance) भरा रहता है।

संयोजी ऊतकों का मुख्य कार्य संयोजन करना, अंगों को आच्छादित करना, अंगों को यथा-स्थान रखना आदि। ये अंगों के ऊभार एवं गहराइयों को भरने का कार्य भी करते हैं, इसलिए इन्हें भराई करने वाले ऊतक (Filler Tissues) भी कहते हैं।

संयोजी ऊतक के निम्न मुख्य प्रकार हैं—

1. श्वेत स्रोत्रिक ऊतक (White Fibrous Tissues)
2. पीत प्रत्यास्था ऊतक (Yellow Elastic Tissues)
3. अवकाशी ऊतक (Areolar Tissues)
4. जालक ऊतक (Reticular Tissues)
5. लसीकाभ ऊतक (Lymphoid Tissues)
6. वसामय ऊतक (Adipose Tissues)
7. उपास्थित ऊतक (Cartilageous Tissues)
8. अस्थि ऊतक (Bone Tissues)
9. रक्त ऊतक (Blood Tissues)

2.2.1 श्वेत स्रोत्रिक ऊतक (White Fibrous Tissues)

ये कंडराओं, स्नायुओं, संधि-संपुटों, अंगों के तंतुमय आवरणों तथा कुछ झिल्लियों में रहते हैं। इस ऊतक का मुख्य कार्य विभिन्न ऊतकों एवं शरीर के विभिन्न भागों को जोड़ना है। ये 'कोलेजन' (Collogen) नामक प्रोटीन से बनते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.2 पीत प्रत्यास्था ऊतक (Yellow Elastic Tissues)

इनका रंग पीला होता है। सूत्र कुछ मोटे होते हैं तथा उनसे स्वतंत्र शाखाएँ निकलकर जाल-सा रूप बना लेती हैं। ये श्वास नली की भित्तियों, स्वर-यंत्र की उपास्थि को जोड़ते हैं। ये फुप्फुस तथा धमनियों में भी रहते हैं। इनका कार्य अंगों को लचक तथा प्रत्यास्था-प्रतिक्षेप (Elastic Recoil) देना है। ये अवकाशी ऊतकों के साथ पाये जाते हैं। ये 'एलास्टिन' (Elastin) नामक प्रोटीन से बने होते हैं।

2.2.3 अवकाशी ऊतक (Areolar)

ये उपरोक्त तीनों प्रकार के ऊतकों की कोशिकाओं से मिलकर बनते हैं। अलग-अलग स्थानों पर इनके कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं। ये त्वचा, आंखों आदि को रंग प्रदान करते हैं। इन्हीं के कारण बहुत से जीव अपना रंग बदल लेते हैं।

2.2.4 जालक ऊतक (Reticular Tissues)

ये बारीक एवं पतले होते हैं। इनकी कोशिकाओं के बीच खाली स्थान कम ही होता है, जिनमें ऊतक तरल भरा रहता है। ये उपकला ऊतक (Epithelium Tissues) की धारक कला (Basment Membrance) बनाते हैं। ये यकृत, प्लीहा, अस्थिमज्जा तथा अन्य अंगों में रहते हैं।

2.2.5 लसीकाभ ऊतक (Lymphoid Tissues)

इसके अन्तर्गत लसीका, लसीका कोशिकाएँ, लसीका ग्रंथियां तथा लसीका वाहिनियां आती हैं। इनकी कोशिकाएँ छोटी एवं गोल आकार की होती हैं, जिनमें केन्द्रक भरे रहते हैं। ये लसिका ग्रंथियों, टांसिल, अपेंडिक्स, प्लीहा, थायमस ग्रंथि, अस्थि मज्जा आदि स्थानों में रहते हैं।

2.2.6 वसामय ऊतक (Adipose Tissues)

इनकी कोशिकाओं में वसा, कणों के रूप में भरा रहता है। ये अधिकांशत: त्वचा के नीचे अन्त:कला में, पीत-अस्थिमज्जा, दुग्ध ग्रंथियों आदि स्थानों पर बहुतायत में पाये जाते हैं।

2.2.7 उपास्थि ऊतक (Cartilageous Tissues)

ये अंगों को दृढ़ता व लचक प्रदान करते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—

1. कोशिकी-उपास्थि (Cellular Cartilage)
2. शुभ्र-उपास्थि (Hyaline Cartilage)
3. तान्तव-उपास्थि (Fibre Cartilage)

I. कोशिकी-उपास्थि (Cellular Cartilage)—ये उच्च श्रेणी के जीवों में नहीं पाई जाती है।

II. शुभ्र-उपास्थि (Hyaline Cartilage)—इसकी कोशिकाएँ बड़ी होती हैं तथा इनमें सूत्र नही होते हैं। ये पसलियों के अग्रछोर, नासिका, बहि:कर्ण, स्वर यंत्र, श्वास नली आदि स्थानों में पाई जाती हैं।

III. तान्तव-उपास्थि (Fibre Cartilage)—इनके सूत्र पीले तथा सफेद दो रंगों के होते हैं। ये बाह्य कर्ण, कंठ-कर्ण-नली, कंठच्छन्द तथा स्वर-यंत्र में पाये जाते हैं।

2.2.8 अस्थि ऊतक (Bone Tissues)

ये सबसे अधिक कड़े एवं दृढ़ ऊतक होते हैं। इनका निर्माण अस्थि कोशिका तथा कैल्शियम से होता है। अस्थियों का निर्माण तीन स्तर पर होता है—

1. सबसे बाहर के स्तर को सघन स्तर (Compact Layer) कहते हैं जहाँ सघन अस्थि (Compact Bone) होती है।
2. मध्य में सुधिर स्तर (Spongy Layer) होती है जहाँ सुधिर अस्थि (Compact Bone) होती है।
3. सबसे भीतर खोखली नली होती है जहाँ अस्थि मज्जा (Bone Marrow) होती है। यहीं लाल रक्त कणिका का निर्माण होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.9 रक्त ऊतक (Blood Tissues)

यह एक ऐसा ऊतक है जो निरन्तर बहता रहता है। रक्त शरीर परिमाण का 1/20 भाग होता है तथा मात्रा लगभग छः लीटर होती है। रक्त में तरल पदार्थ होता है जिसे रक्त प्लाविका (Plasma) कहते हैं जो 55 प्रतिशत होता है, शेष 45 प्रतिशत में रक्त कण (Blood Corpuscles) तथा अन्य पदार्थ होते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

रक्त प्लाविका (Blood Plasma)—यह हल्के पीले रंग का क्षारीय पदार्थ है। इसमें 90 प्रतिशत जल होता है तथा शेष 10 प्रतिशत में प्रोटीन, एलव्यूमिन, ग्लोव्युलिन तथा फाइबिनोजन रहता है। प्रोटीन के कारण यह चिपचिपा रहता है। फाइब्रिनोजन रक्त स्राव के समय थक्का बनाने का कार्य करता है। थक्का बनते समय कुछ तरल-सा पदार्थ बाहर निकलता है, जिसे 'सीरम' कहते हैं।

प्लाविका में पोषक तत्त्व कैल्सियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम धातुओं के कार्बोनेट, क्लोराइड तथा फास्फेट रहते हैं। इसके अतिरिक्त ग्लुकोज, वसीय अम्ल, एमीनो अम्ल आदि पोषक तत्त्व भी घुले रहते हैं। ये ही समस्त शरीर को पोषण प्रदान करते हैं।

रक्त कण (Blood Corpuscles)—ये तीन प्रकार के होते हैं—

1. लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles or Erythrocytes)
2. श्वेत रक्त कण (White Blood Corpuscles or Leucocytes)
3. बिम्बाणु (Platelets or Thrombocytes)।

I. लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles or Erythrocytes)—इन कणों का व्यास 7.2 माइक्रोन होता है। अधिकांशतः ये समूह में पाये जाते हैं। ये केन्द्रक विहीन होते हैं। इनमें हीमोग्लोबिन नामक जटिल प्रोटीन पाया जाता है, जो प्रोटीन ग्लोबिन तथा हेमाटिन नामक लोह तत्त्व से बना होता है। हीमोग्लोबिन ही ऑक्सीजन को फेफड़ों से कोशिकाओं तक ले जाने का तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड को कोशिकाओं से वापिस फेफड़ों तक छोड़ने का कार्य करता है। लाल रक्त कणों की औसत आयु 90 से 120 दिन होती है। इनका अन्त प्लीहा में होता है, वहां इनके शरीर का लोह तत्त्व संचित कर शेष पदार्थ को बाहर भेज दिया जाता है।

II. श्वेत रक्त कण (White Blood Corpuscles or Leucocytes)—ये आकार में लाल रक्त कण से बड़े होते हैं। प्रतिघन मिलीमीटर इनकी संख्या 8 हजार होती है। इनमें केन्द्रक पाया जाता है। इनकी उत्पत्ति भी लाल रक्त कणों की तरह अस्थि मज्जा में होती है। लसिका ग्रंथियों में भी इनकी उत्पत्ति होती है।

अमीबा की भांति इनकी आकृति परिवर्तनशील होती है। इनका मुख्य कार्य विजातीय पदार्थों तथा रोगजनक जीवों को नष्ट कर शरीर की रक्षा करना है। इस कार्य के लिए इनकी संख्या में वृद्धि भी हो जाती है।

III. बिम्बाणु (Platelets or Thrombocytes)—ये लाल रक्त कण से भी छोटे होते हैं। इनका निर्माण भी अस्थि मज्जा में होता है। प्रतिघन मिलीमीटर में इनकी संख्या ढाई लाख के लगभग होती है। इनका जीवनकाल 5 से 9 दिन होता है तथा इनका अन्त प्लीहा तथा आर.ई. कोशिका (Reticulo-Endothelial Cells) में होता है।

बिम्बाणुओं का मुख्य कार्य रक्त को जमने में सहायता करना होता है। इनकी संख्या कम हो जाने पर त्वचा में रक्त का निस्रवण होने लगता है जिससे त्वचा पर लाल रंग के चकत्ते पड़ जाते हैं।

2.3 तंत्रिका ऊतक (Nervous Tissues)

इन ऊतकों का निर्माण तंत्रिका कोशिका (Nerve Cell) तथा उसमें प्रवर्धित सूत्रों (Nerve Fibres) से मिलकर बनते हैं। दोनों को एक साथ 'न्यूरॉन' (Neuron) कहा जाता है। तंत्रिका कोशिका के निम्न भाग होते हैं—

1. पार्श्व तन्तु (Dendrite),
2. केन्द्रक (Nucleus),
3. अक्ष तंतु (Axon)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस ऊतक के मुख्य कार्य निम्न हैं—

1. शरीर का नियंत्रण।
2. उत्तेजनाओं को मस्तिष्क तक ले जाना।
3. आदेशों को संबंधित अंग या अंगों तक पहुंचाना व क्रिया करवाना।
4. रक्त संचालन में सहयोग करना।
5. ग्रंथियों से स्राव उत्पन्न करवाना।

2.4 पेशी ऊतक (Muscular Tissues)

अंगों की गति के लिए एक विशेष प्रकार की पेशियां होती हैं जिन्हें पेशी ऊतक कहते हैं। शरीर का लगभग 40 से 50 प्रतिशत भाग इन्हीं से बनता है। इनका रंग लाल या सफेद होता है। पेशी ऊतक के तीन प्रकार होते हैं—

1. ऐच्छिक पेशी या रेखित पेशी (Voluntary or Striped Muscles)
2. अनैच्छिक या अरेखित पेशी (Involuntary or Unstriped Muscles)
3. हृत्पेशी या हार्दिकी पेशी (Cardiac Muscles).

2.4.1 ऐच्छिक पेशी या रेखित पेशी (Voluntary or Striped Muscles)

इन पेशियों का संकुचन इच्छा के अनुसार होता है। कंकाल पेशियां इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं इसलिए इन्हें कंकाल पेशी (Skeletal Muscles) भी कहते हैं।

रेखित पेशी आकार में लम्बे, बेलनाकार या सूत्र के सदृश्य होती है। इनके तंतु 1 मिमी से 30 मिमी तक लम्बे तथा 1/500 इंच तक चौड़े होते हैं। प्रत्येक तंतु पर एक आवरण होता है, जिसे सार्कोलेमा (Sarcolemma) कहते हैं।

2.4.2 अनैच्छिक या अरेखित पेशी (Involuntary or Unstriped Muscles)

ये पेशियां इचछा के अधीन नहीं होती हैं। इनका नियंत्रण स्वचालित तंत्रिका-तंत्र (Autonomic Nervous System) के द्वारा होता है। इनका आवरण अर्थात् सार्कोलेमा अस्पष्ट एवं अधूरा रहता है। ये ग्रंथि की नलियों, श्वास नली, पाचक नाल, गर्भाशय, मूत्राशय, मूत्र वाहिनी, डिम्ब वाहिनी, प्लीहा आदि स्थानों पर पाई जाती है।

2.4.3 हृत्पेशी या हार्दिकी पेशी (Cardiac Muscles)

यह पेशी दोनों वर्ग की पेशियों से मिलती-जुलती भी है तथा भिन्न भी है। रचना में रेखित पेशी के समान है लेकिन इच्छाधीन न होने से ये अनैच्छिक पेशी के समान है। इसके तंतु छोटे-मोटे व बेलनाकार होते हैं। आवरण सार्कोलेमा अस्पष्ट तथा अधूरा रहता है। इस पेशी में अनुद्धैर्ध्य तथा अनुप्रस्थ दोनों दिशाओं में धारियां होती हैं।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—बिम्बाणु क्या है?

प्रश्न—संयोजी ऊतक के मुख्य प्रकार लिखिए।

प्रश्न—ऊतक किसे कहते हैं?

प्रश्न—रक्त में रक्त प्लाविका कितने प्रतिशत होती है?

3.0 तंत्र

जैसा कि आपने पहले पढ़ा कि हमारा शरीर छोटी-छोटी कोशिकाओं से मिलकर बना हुआ है। कोशिकाओं से मिलकर ऊतक का निर्माण होता है तथा ऊतक अंगों का निर्माण करते हैं। एक विशेष प्रकार का कार्य करने वाले अंग, तंत्र का निर्माण करते हैं तथा तंत्रों से मिलकर शरीर बना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपरोक्त सभी अलग-अलग कार्य करते हुए भी एक-दूसरे के पूरक हैं। सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, अध्ययन की सुविधा से हमें इन्हें विभिन्न भागों में बांटते हैं, जो निम्नानुसार है—

1. तंत्रिका तंत्र (Nervous System)
2. श्वसन तंत्र (Respiratory System)
3. पाचन तंत्र (Digestive System)
4. रक्त परिसंचरण तंत्र (Circulatory System)
5. अन्तःस्रावी ग्रंथि तंत्र (Endocrine System)
6. अस्थि तंत्र (Skeletal System)
7. पेशीय तंत्र (Muscular System)
8. उत्सर्जन तंत्र (Excretory System)
9. जनन तंत्र (Reproductiv System)।

3.1 तंत्रिका तंत्र (Nervous System)

तंत्रिका तंत्र का मुख्य कार्य विभिन्न अंगों की भिन्न क्रियाओं को संचालित व नियंत्रित करना है। इसके द्वारा ही समस्त मानसिक कार्यों का नियंत्रण होता है। इसके निम्नलिखित भाग होते हैं—

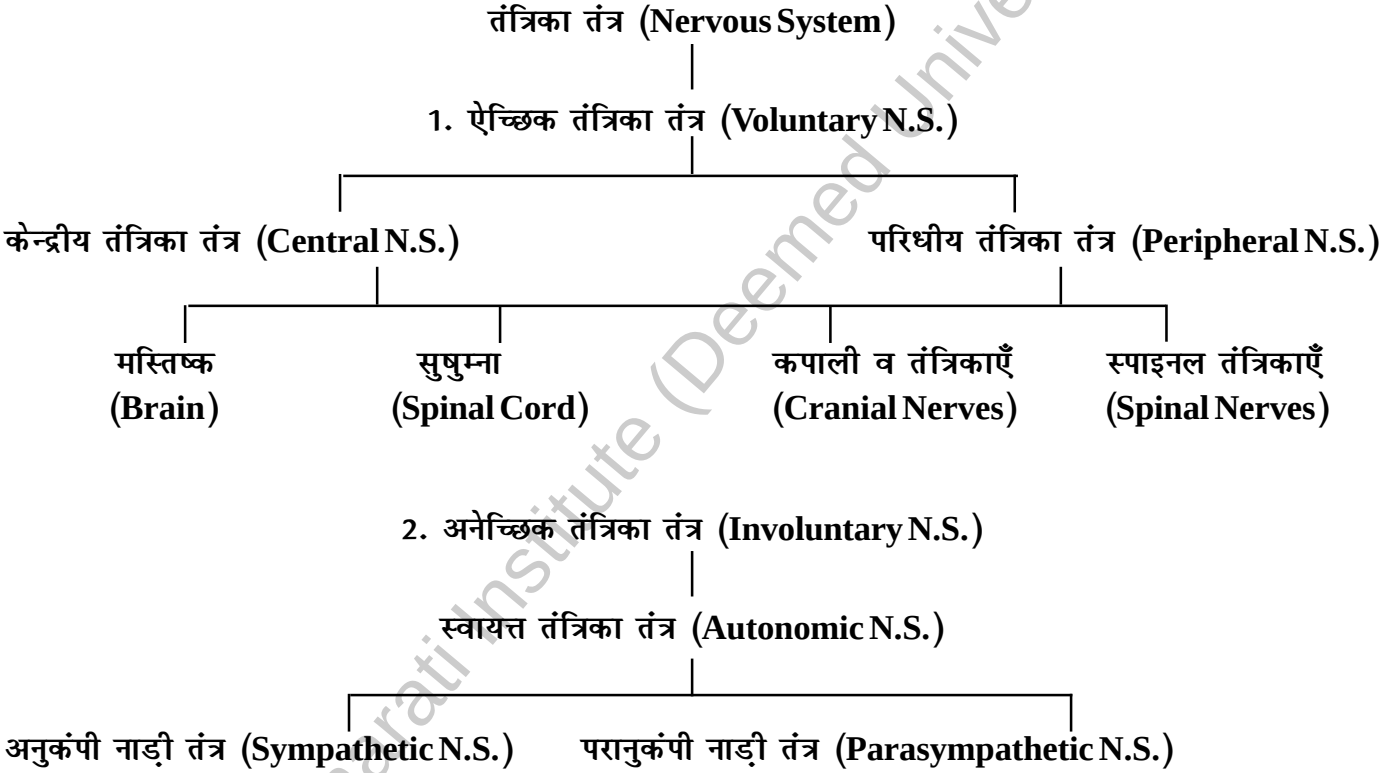

❖ केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के दो भाग होते हैं—मस्तिष्क तथा सुषुम्ना।

❖ मस्तिष्क पुरुषों में 1400 ग्राम तथा महिलाओं में 1300 ग्राम का होता है। शरीर के भार का लगभग 3 प्रतिशत। सामान्यत: 10 अरब तंत्रिकाएँ (न्यूरान) पाई जाती हैं। ये कुल ऑक्सीजन का 20 प्रतिशत, कुल ऊर्जा का 20 प्रतिशत तथा कुल रक्त का 15 प्रतिशत उपयोग करता है।

❖ सुषुम्ना का कार्य संवेदी आवेगों को मस्तिष्क तक लाना व ले जाना है। यह प्रतिवर्ती क्रिया के केन्द्र का कार्य करता है।

❖ परिधीय तंत्रिका तंत्र में वे सभी तंत्रिकाएँ आती हैं जो मस्तिष्कीय तथा सुषुमना से निकलकर अंगों तक जाती हैं। इनमें मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से निकलने वाली तंत्रिकाएँ क्रमश: कपालीय तंत्रिका तथा स्पाइनल तंत्रिका (Cranial Nerves and Spinal Nerves) कहलाती है।

❖ स्वायत्त तंत्रिका स्वचालित होता है। इस पर किसी का नियंत्रण नहीं होता है, यह शरीर के विभिन्न अंग हृदय फेफड़े गर्भाशय, मूत्राशय आदि सभी पर नियंत्रण रखता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

❖ अनुकंपी नाड़ीतंत्र अंगों में उत्तेजना लाती है।

❖ परानुकम्पी नाड़ीतंत्र अंगों में शिथिलता लाती है।

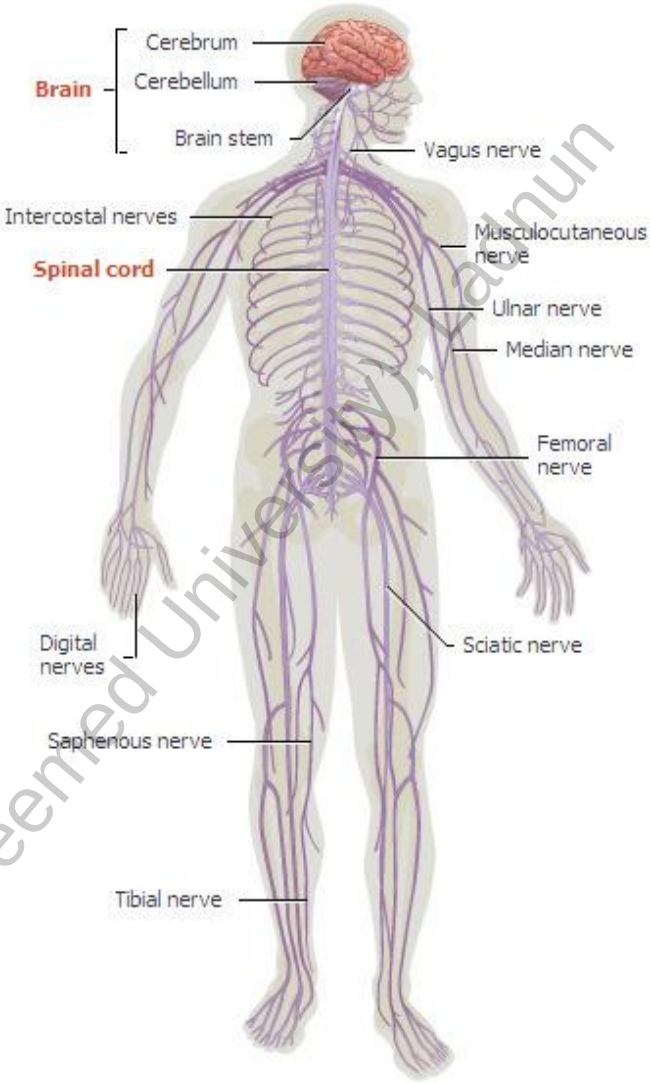

3.2 श्वसन-तंत्र

कोशिकाओं में ग्लुकोज एवं ऑक्सीजन की क्रिया के फलस्वरूप हमें ऊर्जा मिलती है तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड मुक्त होती है। वायुमंडल की ऑक्सीजन को कोशिकाओं तक लाना तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड मुक्त करने की क्रिया को श्वसन कहते हैं। इसमें मुख्य रूप से नासिका, श्वासनली (Nasalcavity Trachea) तथा फेफड़े (Lungs) होते हैं।

❖ नासिका (Nasal Cavity) में रोम व म्यूकस होता है जो गंदगी को भीतर नहीं जाने देते हैं।

❖ श्वास नली (Trachea)—यह 12 सेमी लम्बी नली होती है जो अन्त में दो शाखाओं में बंट जाती है। ये शाखाएँ पुन: प्रशाखाओं में बंटती चली जाती हैं। देखने में ये पूरा एक उल्टे पेड़ की भांति लगती हैं।

❖ फेफड़े दो होते हैं—दायां फेफड़ा बायें से कुछ बड़ा होता है। दायां लगभग 620 ग्राम एवं बायां लगभग 570 ग्राम वजन का होता है। इनमें लगभग 300 करोड़ श्वास प्रकोष्ठ होते हैं जो एक गुब्बारे की भांति होते हैं। ये प्रत्येक प्रशाखा के अन्त में होते हैं तथा देखने में अंगूर के गुच्छे की भांति दिखते हैं। श्वास-प्रकोष्ठ को यदि खोलकर फैला दिया जाए तो ये 90 वर्गमीटर क्षेत्र में फैल सकते हैं। (विशेष विवरण के लिए देखें इकाई-4 (क))

3.3 पाचन तंत्र (Digestive System)

मुख से लेकर गुदा मार्ग तक लगभग 33 फुट लम्बी नली है। विभिन्न स्थानों पर इसका आकार एवं कार्य भिन्न-भिन्न है। इसके मुख्य भाग निम्न हैं—

मुख (Mouth)
ग्रासनली (Oesophogus)
आमाशय (Stomach)
छोटी आंत (Small Intestine)
बड़ी आंत (Large Intestine)

मुख (Mouth)—यहां 16 नीचे तथा 16 ऊपर के दांत भोजन को काटते, कूटते एवं पीसते हैं। यहां पर ही लार भोजन को चिकना बनाता है। टायलिन नामक एंजाइम भी मिलता है।

ग्रासनली (Oesophogus)—यह 23 से 26 से.मी. लम्बी नली है, जो भोजन को आमाशय तक पहुंचाती है।

आमाशय (Stomach)—ये 26 से.मी. लम्बा तथा 10 से.मी. चौड़ा भाग है। यहां भोजन को और अधिक महीन कर दिया जाता है तथा यहां पर ही जठर रस (पेप्टीन, रेनीन, लाइपेज, जल, HCL) भोजन को अम्लीय बना देते हैं।

छोटी आंत (Small Intestine)—जीवित अवस्था में लम्बाई लगभग 6.5 मीटर तथा चौड़ाई 2.5 सेमी. व मृत्यु की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्थिति में लम्बाई 2.44 मीटर हो जाती है, क्योंकि इनका तनाव समाप्त जाता है। इसके प्रथक् (C) आकार के भाग को पक्वाश (Duodenum), शेष के आधे भाग को मध्यांत्र (Jejunum) तथा शेष भाग को शेषांत्र (Ileum) कहते हैं। इसके प्रथम भाग में ही विभिन्न पाचक रस (पित्तरस, क्लोमरस) आदि भोजन को पचने योग्य बना देते हैं। भोजन के अधिकांश पाचक तत्त्वों का अवशोषण भी यहीं होता है तथा विभिन्न आंत्ररस की क्रिया के पश्चात् छोटी आंत्र में लगभग समस्त पाचक तत्त्व अवशोषित कर लिये जाते हैं।

बड़ी आंत (Large Intestine)—ये 2 मीटर लम्बी तथा 7 से. मी. चौड़ी होती है। यहां मात्र जल का अवशोषण होता है। (विशेष विवरण के लिए देखें इकाई-4 (क)) भोजन के पूरे पाचन काल में 12 से 20 घंटे लगते हैं।

3.4 रक्त परिसंचरण तंत्र (Circulatory System)

रक्त का मुख्य कार्य परिवहन का है। अध्ययन की दृष्टि से इसे मुख्य चार भागों में बांट रहे हैं—

1. हृदय (Heart)
2. धमनी (Artery)
3. शिरा (Veins)
4. रक्त (Blood)।

फुफ्फुस से ऑक्सीजन युक्त रक्त पहले हृदय के ऊपर वाले बायें कक्ष में तथा बाद में नीचे वाले बायें कक्ष में जाता है जहाँ से झटके से महाधमनी में धकेल दिया जाता है। वहाँ से यह पूरे शरीर में जाता है। वापसी में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड रक्त शिराओं के माध्यम से पहले हृदय के ऊपर वाले दायें कक्ष में जाता है तथा फिर नीचे के दायें कक्ष में जाता है, वहां से फेफड़ों में भेज दिया जाता है।

1. हृदय (Heart)—हृदय लगभग 300 ग्राम वजन का होता है। यह तीन भित्ति का बना होता है। हृदय सीने के मध्य पांचवीं पसली के पास लगभग $6^{2}/_{3}$ भाग बायीं ओर तथा $^{1}/_{2}$ भाग दायीं ओर स्थित है। इसमें चार कक्ष तथा चार वाल्व होते हैं—दो ऊपर तथा दो नीचे। ऊपर वालों को आलिन्द तथा नीचे वालों को निलय कहा जाता है।

2. धमनी (Artery)—ये वे नलिकाएँ हैं जो रक्त को हृदय से बाहर शरीर में ले जाती हैं। इनमें रक्त झटके के साथ बहता है। ये त्वचा के नीचे गहरे में होती हैं जो त्वचा के निकट होती हैं, उन्हें नब्ज कहते हैं।

3. शिरा (Veins)—ये नलिकाएँ रक्त को शरीर के विभिन्न भागों से हृदय में लाती हैं। इनमें रक्त सामान्य रूप से बहता है।

4. रक्त (Blood)—(देखें रक्त ऊतक वाले भाग को।)

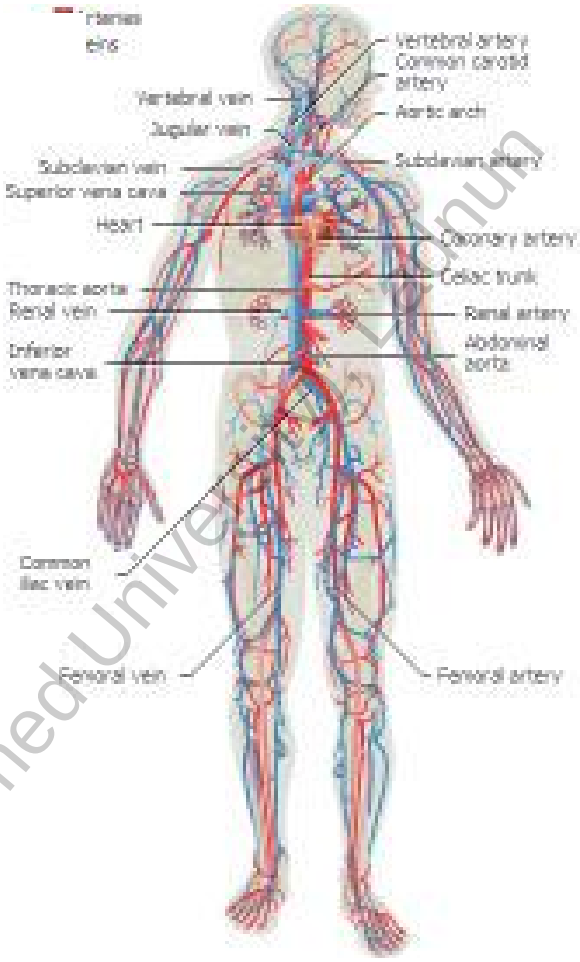

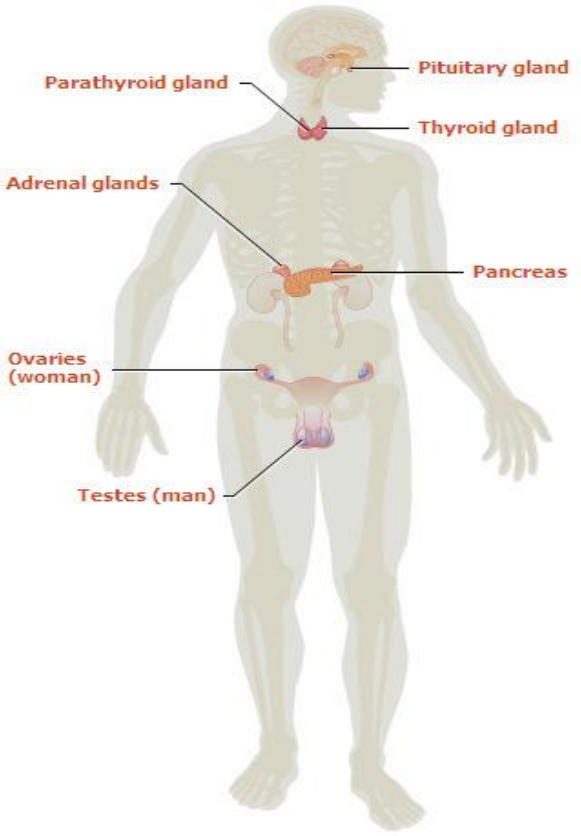

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.5 अन्त:स्रावी ग्रंथितंत्र (Endocrine System)

शरीर में रासायनिक पदार्थों का उत्पादन ग्रंथियों में होता है। कुछ ग्रंथियों में ये रासायनिक पदार्थ एक नलिका के माध्यम से बाहर निकलते हैं तथा कुछ ग्रंथियों में ये सीधे रक्त में मिल जाते हैं। जिन ग्रंथियों में नलिका होती है, उसे नलिका सहित ग्रंथि कहते हैं तथा जिसमें रसायन सीधे रक्त में मिलता है, उन्हें नलिका विहीन ग्रंथि या अन्त:स्रावी ग्रंथि कहते हैं। इन अन्त:स्रावी ग्रंथियों के संगठन को ही अन्त:स्रावी ग्रंथितंत्र कहते हैं। इन ग्रंथियों में निकलने वाले स्राव को हार्मोन्स कहते हैं। इनके स्राव की मात्रा बहुत ही अल्प रहती है लेकिन प्रभाव बहुत अधिक होता है। इसे निम्न तालिका से समझ सकते हैं—

ग्रंथि	स्थान	प्रभाव
पीनियल (Pineal)	ललाट के मध्य गहराई में, कान के पास	मनुष्य में कार्यों का ठीक पता नहीं।
पीयूष (Pituitary)	दोनों भृकुटियों के मध्य गहराई में, कान के पास	लम्बाई, चेहरे, जबड़े, हाथ-पैर की वृद्धि, मूत्र एवं प्यास आदि पर प्रभाव।
अवटु (Thyroid)	कण्ठ के पास	उपापचयी क्रियाओं पर नियंत्रण, वृद्धि पर प्रभाव।
परावटु (Parathyroid)	कण्ठ के पास	कैल्शियम एवं फास्फोरस के चयापचय पर प्रभाव।
थाइमस (Thymus)	कण्ठ से नीचे	वृद्धि एवं लैंगिक परिपक्वता पर प्रभाव।
अग्न्याशय (Panereas)	हृदय से नीचे	शर्करा, मोटापा, त्वचा, संक्रमण आदि पर प्रभाव।
अधिवृक्क (Adrenal)	नाभि के स्थान पर, पीछे की तरफ	लवण, नियंत्रण, रक्तचाप, वर्णकता आदि पर प्रभाव।
लिंग ग्रंथियां (Gonads)		
❖ (अण्डाशय स्त्री में)	पेडू के स्थान पर	ऋतु स्राव, कामोत्तेजना, गर्भावस्था, स्तन ग्रंथियों पर प्रभाव।
❖ (वृषण पुरुषों में)	अण्डकोष में	कामोत्तेजना, पुरुषोचित लक्षणों पर प्रभाव।

3.6 अस्थि तंत्र (Skeletal System)

हमारा कंकाल 206 अस्थियों से बना है। यह हमारे शरीर को आकार देता है एवं भीतरी अंगों को सुरक्षा प्रदान करता है। अस्थियां कैल्शियम तथा फास्फोरस से बनी होती हैं। देखने में ये निर्जीव-सी दिखती हैं लेकिन शरीर की जीवित इकाई हैं। अगर किसी स्थान से अस्थि टूट जाये तो ऐसी स्थिति में उस स्थान को इस प्रकार बांध दिया जाये जिससे वहां हलन-चलन न हो तो अस्थियां स्वत: जुड़ जाती हैं। (विशेष विवरण के लिए देखें इकाई-3-क एवं इकाई-2-क में अस्थि ऊतक)

3.8 उत्सर्जन तंत्र (Excnetory System)

शरीर के हानिकारक पदार्थों को बाहर निकालने का कार्य जो अंग करते हैं, उनसे मिलकर उत्सर्जन तंत्र बनता है। इनमें मुख्य हैं—मलाशय, फुफ्फुस, वृक्क, त्वचा आदि। इनके कार्य क्रमश: निम्न हैं—

❖ भोजन का बिना पचा हुआ भाग बड़ी आंत में आ जाता है। वहां से मलाशय में आने पर गुदा मार्ग द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

❖ ऑक्सीजन तथा ग्लूकोज की क्रिया के फलस्वरूप ऊर्जा बनती है तथा कार्बन-डाई-ऑक्सापइड युक्त होती है जिसे फुफ्फुस के माध्यम से प्रश्वास के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

❖ चयापचय के उपरांत यूरिया, यूरिक एसिड, क्रियेटीन, क्रियेटीनोन हानिकारक पदार्थ बनते हैं, जो रक्त में रहते हैं। वृक्क में इन्हें रक्त से छान दिया जाता है तथा मूत्र के रूप में मूत्र मार्ग द्वार बाहर निकाल दिया जाता है।

❖ त्वचा के द्वारा पसीने को बाहर निकाल दिया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.9 जनन तंत्र (Reproductive System)

मनुष्य उच्च कोटि का जीव है इसलिए इनमें लैंगिक जनन (Sexual Reproduction) पाया जाता है अर्थात् स्त्रीलिंग एवं पुरुषलिंग दो अलग-अलग जीवों में होते हैं। इनमें प्रजनन के लिए सहवास की अतिआवश्यक है।

पुरुष प्रजनन-तंत्र

पुरुषों में यौवन का आरम्भ 12 से 16 वर्ष की आयु में होता है, जिसके निम्न लक्षण हैं—

1. दाढ़ी मूंछ निकलना,
2. कांख व जनन अंगों के पास बाल उग आना,
3. आवाज का भारी होना,
4. जननेन्द्रिय का विकास,

मुख्य प्रजनन अंग—

1. वृषण (Testes),
2. शिशन (Penis)।

1. वृषण (Testes)—अंडकोष नामक कोष में स्थित ये दो ग्रंथियां हैं, जो अंडाकार होती हैं। इनमें 60 से 90 से.मी. लम्बी लगभग एक हजार शुक्रजनक नलिकाएँ पायी जाती हैं। इसका मुख्य कार्य शुक्राणु कोशिकाओं को उत्पन्न करना है। शुक्राणु (Sperm) शरीर में लगभग एक माह तक जीवित रहते हैं लेकिन स्त्री योनि में 72 घंटों तक ही जीवित रह पाते हैं। एक स्खलन में लगभग 2-4 घन से.मी. शुक्र (Sperm) निकलता है, जिसमें 20 से 40 करोड़ तक शुक्राणु होते हैं। इनमें 80 प्रतिशत ही सक्रिय होते हैं।

2. शिशन (Penis)—इसकी लम्बाई 7 से 9 से.मी. तक होती है, जो उद्घर्षण की स्थिति में 13 से 15 से.मी. तक बढ़ जाती है तथा मोटाई भी बढ़ जाती है। इसका कारण इसमें उपस्थित नलिकाओ में रक्त का भर जाना है। शिशन के माध्यम से ही शुक्र स्त्री योनि में प्रवेश करता है।

स्त्री प्रजनन तंत्र

स्त्रियों में यौवन का आरम्भ 13 से 14 वर्ष की आयु में प्रारम्भ होता है, जिसके निम्न लक्षण हैं—

1. ऋतु स्राव (Menstruation) का प्रारम्भ,
2. बगल एवं जनन अंगों के पास बालों का उग आना,
3. स्तनों का विकास,
4. आवाज का पतला होना,
5. जांघ की मोटाई बढ़ना,
6. श्रोणि का चोड़ा होना।

मुख्य प्रजनन अंग

बाह्य अंग—स्त्री के बाह्य प्रजनन अंग को भग (Valva) कहते हैं। इनमें मुख्य रूप से योनि (Vagina) होती है, जिसके माध्यम से शुक्राणु भीतर प्रविष्ट होते हैं। योनि के दोनों तरफ लघु भगोष्ठ तथा वृहत् भगोष्ठ (Labia Minor and Labium Major) होते हैं। ऊपर की तरफ भगशिश्निका (Clitoris) होती है। यह पुरुष शिशन की तरह उत्तेजक अंग है।

भीतरी अंग—गर्भाशय के दोनों तरफ अण्डाशय या डिम्ब ग्रंथियों (Ovaries) उपस्थित होती हैं। ये 4 से.मी. चौड़ी, 5.2 से.मी. लम्बी तथा 1.5 से.मी. मोटी होती हैं। इनका मुख्य कार्य अंडाणु (Ova) को विकसित करना है। यहां से परिपक्व अंडाणु डिम्बवाहिनी नली (Fallopian Tube) द्वारा आगे बढ़ता है। अगर इस स्थान पर शुक्राणु द्वारा इसका निषेचन (Fertilization) हो जाता है तो निषेचित डिम्ब गर्भाशय में चला जाता है तथा वही भ्रूण बन बच्चे के रूप में जन्म लेता है। अनिषेचित डिम्ब ऋतुस्राव के माध्यम से बाहर निकल जाता है।

गर्भाशय 70 मि.मी. लम्बा तथा 80 मि.मी. चौड़ा होता है। लड़कियों में यह और अधिक छोटा होता है तथा गर्भावस्था में और अधिक बढ़ जाता है।

ऋतुस्राव—13-14 वर्ष से लेकर 45-50 वर्ष की उम्र तक प्रत्येक महिला को यह स्राव होता है। इसमें 26 से 28 दिनों की अवधि में 3 से 4 दिन तक यह रक्त तथा श्लेष्मा मिश्रित स्राव होता है। गर्भावस्था में यह बन्द हो जाता है। इस स्राव के 14वें दिन ही डिम्ब क्षरण होता है। गर्भावस्था लगभग 40 सप्ताह की होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

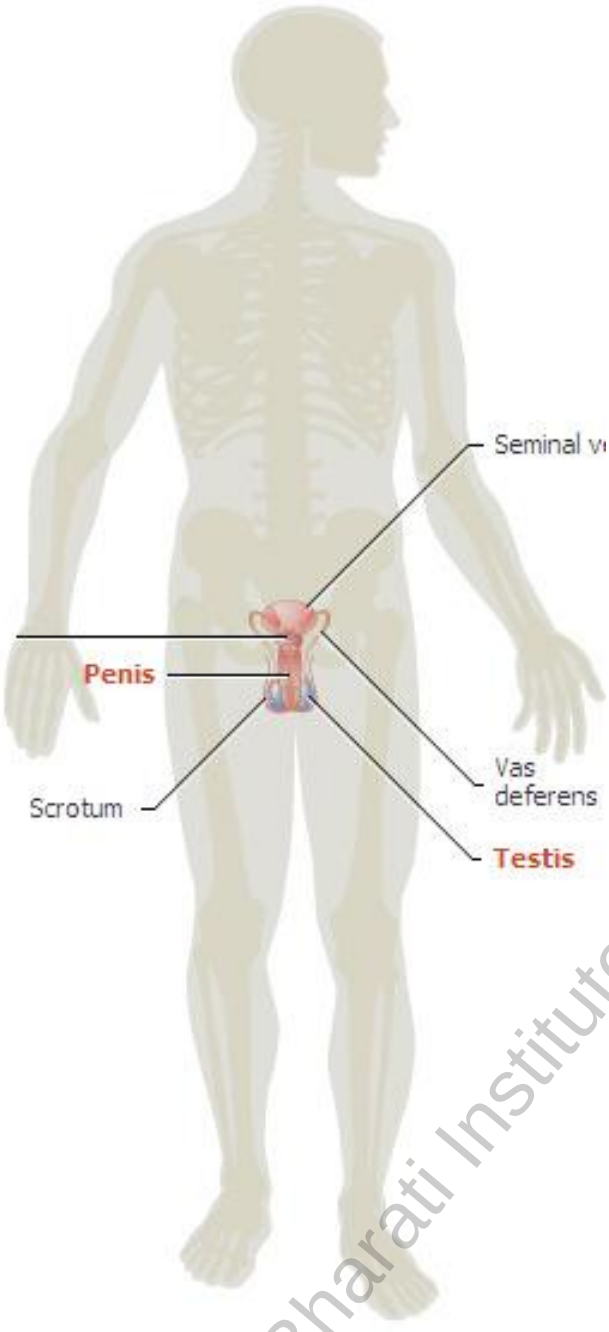

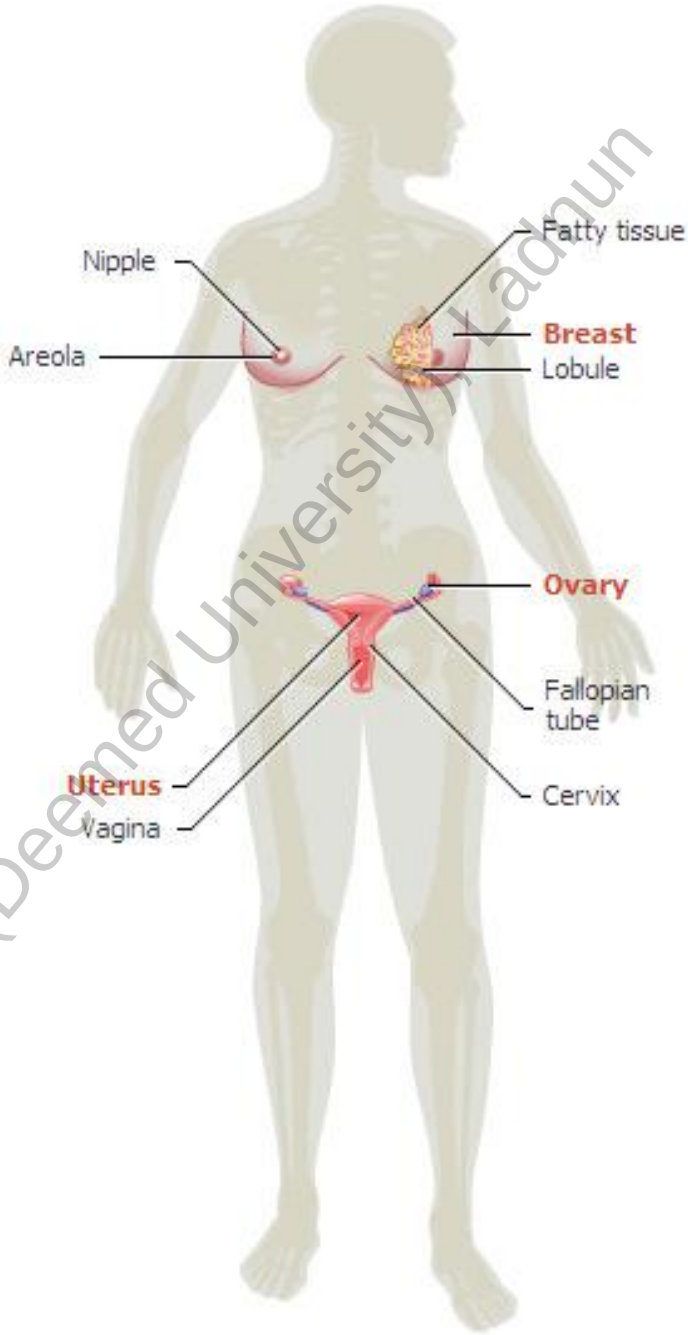

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध–प्रश्न

प्रश्न—अन्त:स्रावी ग्रंथियों के नाम बताइये।

प्रश्न—तंत्रिका तंत्र का सामान्य परिचय दीजिए।

प्रश्न—वृक्क किन हानिकारक पदार्थों को रक्त से छान देता है? नाम लिखें।

प्रश्न—एक युवती के शरीर में कुल कितनी अस्थियां होती हैं?

4.0 सारांश

कोशिका

सजीव जगत की एक रचनात्मक तथा क्रियात्मक इकाई है, जो स्वतंत्र रूप से जीवन की क्रियाओं को चलाने की क्षमता रखती है।

कोशिका के अंग

कोशिका भित्ति—वसा, प्रोटीन तथा लवण से निर्मित कोशिका का आवरण, जो पारदर्शी है।

कोशिका जीवद्रव्य—जैली की तरह गाढ़ा, तरल, लसलसा पदार्थ जिसमें निम्न अंग हैं—

1. **माइटोकोन्ड्रिया**—कोशिका का पावर हाऊस।
2. **लाइसोसोम**—मुख्य कार्य अन्तरकोशीय पाचन/विकृति होने पर कोशिका के अंगों को नष्ट कर देती है।
3. **राइबोजोम**—कोशिका की प्रोटीन फैक्ट्री।
4. **गाल्गीकाय**—एन्जाइम, हार्मोन्स, म्यूकस का स्राव तथा लाइसोसोम का निर्माण करना।
5. **अन्तर्द्रव्य जालिका**—कोशिकीय पदार्थ के लिए परिवहन का कार्य करना, हार्मोन्स, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट का संश्लेषण करना।
6. **केन्द्रक**—इनमें क्रोमोसोम पाये जाते हैं, जिनके ऊपर जीन होते हैं, जो संतति में पैतृक गुणों के वाहक होते हैं।

ऊतक

समान रचना तथा समान कार्य वाली कोशिकाओं के समूह से निर्मित अंग ऊतक कहलाता है। इसके निम्न प्रकार हैं—

1. आच्छादक ऊतक—अंग तथा शरीर के ऊपरी सतह का निर्माण करना, जैसे—फलों एवं सब्जियों के ऊपर छिलका। इसके मुख्य प्रकार निम्न हैं—

1. शल्की ऊतक (Squamous Tissues)
2. रोमि का ऊतक (Ciliated Tissues)
3. स्तम्भाकार ऊतक (Columnar Tissues)
4. ग्रंथिक ऊतक (Glandlar Tissues)
5. संवेदी ऊतक (Sensory Tissues)
6. संयुक्त-उपकला ऊतक (Compound-Epithelium Tissues)।

2. संयोजी ऊतक—ये अंगों के ऊभार एवं गहराइयों को भरते हैं। इनका मुख्य कार्य संयोजन करना तथा अंगों को स्थान बनाये रखना है। इनके मुख्य प्रकार निम्न हैं—

1. श्वेत स्रोत्रिक ऊतक (White Fibrous Tissues)
2. पीत प्रत्यास्था ऊतक (Yellow Elastic Tissues)
3. अवकाशी ऊतक (Areolar Tissues)
4. जालक ऊतक (Reticular Tissues)
5. लसीकाभ ऊतक (Lymphoid Tissues)
6. वसामय ऊतक (Adipose Tissues)
7. उपास्थित ऊतक (Cartilageous Tissues)
8. अस्थि ऊतक (Bone Tissues)
9. रक्त ऊतक (Blood Tissues)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. तंत्रिका ऊतक—मुख्य कार्य शरीर का नियंत्रण करना, शरीर से प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क तक ले जाना एवं मस्तिष्क से प्राप्त सूचना का शरीर द्वारा पालन करवाना है।

4. पेशी ऊतक—इनका मुख्य कार्य अंगों को गति प्रदान करना है। इनके मुख्य प्रकार निम्न हैं—

1. ऐच्छिक पेशी या रेखित पेशी (Voluntary or Striped Muscles)
2. अनैच्छिक या अरेखित पेशी (Involuntary or Unstriped Muscles)
3. हृत्पेशी या हार्दिकी पेशी (Cardiac Muscles)।

तंत्र

एक विशेष प्रकार के कार्य करने वाले अंग मिलकर तंत्र का निर्माण करते हैं, ये निम्न हैं—

1. तंत्रिका तंत्र—मस्तिष्क एवं अंगों के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान करना। तदनुरूप कार्य करवाना।
2. श्वसन तंत्र—ऑक्सीजन लेना एवं कार्बन-डाई-ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकालना।
3. पाचन तंत्र—भोजन को पचाने का कार्य।
4. रक्त परिसंचरण तंत्र—आवश्यक पोषक पदार्थों को कोशिकाओं तक पहुंचाना, शरीर की रक्षा करना।
5. अन्त:स्रावी ग्रंथि तंत्र—हार्मोन्स का उत्सर्जन कर व्यक्तित्व का निर्माण करना।
6. अस्थि तंत्र—शरीर को मजबूती एवं ढांचा प्रदान करना।
7. पेशीय तंत्र—शरीर को हलन-चलन एवं गति प्रदान करना।
8. उत्सर्जन तंत्र—विजातीय पदार्थों को शरीर से बाहर निकालना।
9. जनन तंत्र—संतति की उत्पत्ति के लिए।

5.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. कोशिका की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. ऊतक किसे कहते हैं? संयोजी ऊतक को विस्तार से समझाइये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. राइबोजोम को समझाइये।
2. पेशी ऊतक की व्याख्या कीजिए।
3. तंत्रिका तंत्र को संक्षेप में बताइये।
4. अन्त:स्रावी ग्रंथियों के नाम लिखिए।
5. पुरुष एवं स्त्री जनन तंत्र को स्पष्ट कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. क्या जीवद्रव्य सजीव होने की पहचान है?
2. कोशिका का पावर हाऊस किसे कहते हैं?
3. जीन, कोशिका के किस अंग में पाये जाते हैं?
4. बिम्बाणु का जीवनकाल कितने दिन का होता है?
5. कार्य की दृष्टि से हृदय पेशी किस प्रकार की है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–2 शरीर का रचनात्मक संगठन

पाठ–ख

जीवन का रासायनिक स्वरूप वर्धन, वार्धक्य, आधि, व्याधि एवं उपाधि

प्रिय विद्यार्थियों,

पिछले अध्याय में आपने कोशिका, ऊतक तथा तंत्रों के विषय में पढ़ा। इस अध्याय में हम यह अध्ययन करेंगे कि हमारा शरीर किन रासायनिक तत्त्वों से मिलकर बना है, शरीर का वर्धन किस प्रकार होता है, शरीर का वार्धक्य किस प्रकार होता है तथा आधि, व्याधि एवं उपाधि क्या है, इनसे कैसे बचा जा सकता है? हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं—

उद्देश्य

1. आप शरीर के रासायनिक संघटकों को जान सकेंगे।
2. आपको वर्धन एवं वर्धन की गति का ज्ञान होगा।
3. वार्धक्य अर्थात् शरीर के ह्रास का ज्ञान होगा।
4. आधि, व्याधि एवं उपाधि को जान सकेंगे तथा उनका जीवन-विज्ञान द्वारा उपचार कर सकेंगे।

विषय–वस्तु

1.0 शरीर के रासायनिक संघटक
- 1.1 जल
- 1.2 अकार्बनिक लवण
- 1.3 कार्बोहाइड्रेट
- 1.4 प्रोटीन
- 1.5 वसा
- 1.6 केन्द्रक अम्ल

2.0 वर्धन
- 2.1 वर्धन की गति
  - 2.1.1 गर्भावस्था
  - 2.1.2 शैशवावस्था
  - 2.1.3 किशोरावस्था
  - 2.1.4 युवावस्था
- 2.2 वर्धन प्रेरक

3.0 वार्धक्य

4.0 आधि, व्याधि एवं उपाधि
- 4.1 आधि
  - 4.1.1 बड़प्पन की भावना
  - 4.1.2 आक्रमण व शोषण की भावना
  - 4.1.3 प्रतिशोध की भावना
  - 4.1.4 ईर्ष्या की भावना
  - 4.1.5 आधि की प्रेक्षा–चिकित्सा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.2 व्याधि

4.2.1 बैक्टीरिया जनित

4.2.2 वायरस जनित

4.2.3 फफूंद जनित

4.2.4 प्रोटोजोआ जनित

4.2.5 हैलमिन्थस जनित

4.2.6 बाहरी आघात (चोट आदि)

4.3 उपाधि

4.3.1 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्ध प्रविधि

4.3.1.1 सैद्धान्तिक प्रशिक्षण एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण (अनुप्रेक्षा द्वारा)

4.3.1.2 आहार द्वारा उपाधि चिकित्सा

4.3.1.3 योगासन, प्राणायाम एवं शुद्धि क्रियाओं द्वारा

4.4 आधि, व्याधि एवं उपाधि को दूर करने के सूत्र

4.4.1 आदर्श या इष्ट का चुनाव

4.4.2 पूर्ण विश्राम आवश्यक

4.4.3 सुलझा हुआ मन

4.4.4 मन की एकाग्रता

4.4.5 जागृत मन

4.4.6 शिथिलीकरण

4.4.7 शक्ति के अपव्यय से बचना

4.4.8 प्राणधारा को निश्चित दिशा में बहाना

4.4.9 कारण के मूल को पकड़ें

4.4.10 समाधिपूर्ण जीवन

5.0 सारांश

6.0 प्रश्नावली

1.0 शरीर के रासायनिक संघटक

जीवित शरीर का मूल द्रव्य 'जीवद्रव्य' (Protoplasm) है जो कार्बनिक और अकार्बनिक संयोगों का एक जटिल मिश्रण है। जिन मूल तत्त्वों से इसकी रचना होती है, उनमें एक भी ऐसा तत्त्व नहीं है जो कि केवल जीवित शरीर में ही पाया जाता हो किन्तु इन मूल तत्त्वों के पारस्परिक संयोगों की भिन्नता से जीवित एवं निर्जीव जगत् का अन्तर किया जा सकता है। इनमें मुख्य महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि सजीव शरीर में मूल तत्त्वों का जिन जटिल संयोगों के रूप में चयन होता है, उनमें से अनेक पदार्थों का प्रतिरूप निर्जीव जगत् में उपलब्ध नही है। जीवद्रव्य के मुख्य संघटक हैं—1. जल, 2. अकार्बनिक लवण, 3. कार्बोहाइड्रेट, 4. प्रोटीन, 5. वसा, 6. केन्द्रक अम्ल।

1.1 जल (Water)– यह हमारे शरीर में सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध यौगिक (रासायनिक) पदार्थ हैं। हमारे शरीर के वजन का लगभग 65 प्रतिशत से भी अधिक भाग जल है। यद्यपि जल एक सरलतम यौगिक पदार्थ है फिर भी सबसे महत्त्वपूर्ण पदार्थों में से एक है। मनुष्य जल पिए बिना संभवत: कुछ दिनों से अधिक जी नहीं सकता। जल हमारे शरीर में अनेक प्रकार के क्रियाकलापों में भाग लेता है। जैसे—

- ❖ कोशिकाओं की रासायनिक अभक्रियाओं के लिए यह एक उपयुक्त तरल माध्यम के रूप में काम आता है।
- ❖ यह यातायात का एक मुख्य माध्यम बनता है जिनके द्वारा शरीर में ऑक्सीजन, पोषक-पदार्थ एवं अन्य उपयोगी पदार्थों का वितरण किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- ❖ मूत्र के रूप में गुर्दे से विसर्जित किए जाने वाले विजातीय पदार्थों को बाहर विसर्जित करने के लिए जल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
- ❖ जल त्वचा के माध्यम से पसीने के रूप में हानिकारक पदार्थों को भी बाहर निकलता है तथा त्वचा को नम बताए रखता है जो गर्मी के बचाव के लिए आवश्यक है।
- ❖ शरीर के भीतर सभी प्रकार के स्रावों में जल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
- ❖ जल हमारे शरीर के तापमान-नियंत्रण प्रणाली के कार्य में मूलभूत भूमिका अदा करता है। ऊतकों में जलीय अंश के अनुपात का नियंत्रण मस्तिष्क द्वारा होता है।

1.2 अकार्बनिक लवण (Inorganic Matter)- हमारे शरीर के वजन का 45 प्रतिशत भाग अकार्बनिक लवण का है। वे कुछ घुले हुए विघटित आयन के रूप में होते हैं तथा कुछ कार्बनिक यौगिकों के साथ संयुक्त रूप में होते हैं। कोशिकाओं के बाहर के शारीरिक तरल द्रव्यों में पाए जाने वाले आयनों में सोडियम और क्लोराइड आयन सर्वाधिक मात्रा में होते हैं जबकि कोशिकाओं के भीतर के तरल द्रव्यों में पोटेशियम और फास्फोरस आयन मुख्य अकार्बनिक घटकों के रूप में होते हैं।

अस्थियों का प्रमुख घटक कैल्शियम एवं फास्फोरस है। विविध प्रकार के अन्य आयन भी अल्प मात्रा में विद्यमान होते हैं। उनमें से कुछ आयनों की मात्रा का तो मुश्किल से पता लग सकता है किन्तु इनमें से कुछ विरल तत्त्व अति महत्त्वपूर्ण किण्वक (एन्जाइम) प्रणालियों के संघटक के रूप में होते हैं जिनके बिना शरीर की सामान्य अभिक्रियाएँ हो ही नहीं सकतीं। निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण शारीरिक क्रियाकलापों में अकार्बनिक लवणों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है—

1. अम्ल-प्रत्यम्ल-संतुलन,
2. रक्त जमाव,
3. ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड का परिवहन,
4. तंत्रिका की विद्युत चालकता,
5. मांसपेशीय संकुचन,
6. चयापचयिक क्रियाओं का समन्वय एवं नियमन।

1.3 कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)- ये तीन मौलिक तत्त्वों से बनता है—कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन। इन तीनों का अनुपात $C_6H_{12}O_6$ के रूप में होता है। इसमें हाइड्रोजन और ऑक्सीजन परमाणुओं का अनुपात पानी (H_2O) के सदृश होता है। ये ऊर्जा उत्पादन के मुख्य स्रोत हैं। शरीर की सभी कोशिकाओं के लिए और विशेष रूप से मस्तिष्क-कोशिकाओं के लिए यह एक अनिवार्य पोषक तत्त्व है। कार्बोहाइड्रेट का पाचन ग्लुकोज के रूप में होता है। ग्लुकोज तथा ऑक्सीजन की क्रिया के फलस्वरूप कोशिका में ऊर्जा बनती है। अधिक ग्लुकोज को ग्लाईकोजन के रूप में संश्लेषित कर यकृत व मांसपेशीय ऊतकों में संग्रहित कर दिया जाता है। 1 ग्राम कार्बोहाइड्रेट 4 किलो कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न करता है।

1.4 प्रोटीन (Protin) - मनुष्य के शरीर में लगभग 100000 प्रकार के प्रोटीन होते हैं। हमारे शरीर में पाए जाने वाले प्रोटीन अन्य प्राणियों के पोटीनों से भिन्न होते हैं। एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के प्रोटीन में असमानता पायी जाती है। प्रोटीनों की रचना छोटी-छोटी इकाइयों के परस्पर संयोग से होती है जिन्हें अमीनो एसिड कहते हैं। 1 ग्राम प्रोटीन 4 किलो कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न करता है। हमारे शरीर में प्राकृतिक रूप में लगभग बीस प्रकार के एमिनो एसिड होते हैं। मात्रा की दृष्टि से कोशिकाओं में जल के बाद दूसरा स्थान प्रोटीनों का है। सम्पूर्ण कोशिका द्रव्यमान का लगभग 10 से 20 प्रतिशत हिस्सा प्रोटीन है। प्रोटीनों को मुख्यत: दो भागों में बांटा जा सकता है— I. संरचनात्मक, II. क्रियात्मक।

I. संरचनात्मक प्रोटीन- संरचनात्मक प्रोटीन कोशिकाओं की झिल्ली में होते हैं तथा कोशिका के ढांचे को बनाए रखते हैं। प्रोटीन लम्बे रेशेदार तंतुओं के रूप में होते हैं जो कोशिकाओं के ढांचों को तनन-बल प्रदान करते हैं।

II. क्रियात्मक प्रोटीन - इनमें एन्जाइम एवं हार्मोन्स का समावेश है। ये शरीर की क्रियाओं का नियमन करते हैं। एन्जाइम शरीर के भीतर विद्यमान अकार्बनिक उत्प्रेरक हैं जिनके अभाव में शरीर की अधिकांश रासायनिक अभिक्रियाएँ घटित नहीं हो सकतीं। जबकि हार्मोन शरीर की कोशिकाओं, ऊतकों एवं अवयवों की क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं एवं उनके बीच तालमेल बिठाते हैं। केन्द्रक प्रोटीन, प्रोटीन एवं केन्द्रक अम्लों (न्यूक्लिक एसिड्स) के समूह-रूप होते हैं किन्तु आहार के प्रोटीनों का उपयोग उनके विद्यमान रूप में नहीं हो पाता। पाचन क्रिया के दौरान पहले उनके संघटकों—एमिनो एसिड्स के रूप में विभाजित किया जाता है और बाद में शरीर के अनुरूप प्रोटीनों के रूप में उनका निर्माण किया जाता है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.5 वसा (Fat)– शरीर में वसा व वसायुक्त पदार्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संग्रहित वसा आरक्षित ऊर्जा-स्रोत के रूप में उपयोगी होती है। कार्बोहाइड्रेट की तुलना में वसा दुगुनी कैलोरी (ऊर्जा) उत्पादन करते हैं। एक ग्राम वसा 9.3 कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न करता है। इसलिए यह ऊर्जा-संग्रह के अधिक उपयोगी साधन के रूप में सिद्ध होते हैं। सामान्य रूप से कोशिकाओं की पारगम्यता को बनाए रखने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इस प्रकार यह कोशिकाओं के भीतर पदार्थों के प्रवेश और उनसे बाहर निर्गमन का नियमन करते हैं। वसा में घुलनशील विटामिनों के परिवहन में भी इसका सहयोग मिलता है।

1.6 केन्द्रक अम्ल– कोशिकाओं में कुछ अम्ल केन्द्रक के भीतर एवं बाहर दोनों ही जगह पाया जाता है लेकिन सर्वप्रथम इनकी खोज केन्द्रक के अन्दर हुई। उस समय उनका नाम केन्द्रक अम्ल रख दिया गया जो आज तक चल रहा है। प्रत्येक कोशिका में 23 जोड़ों में गुणसूत्र विद्यमान होते हैं जिनमें केन्द्रक अम्ल के अणुओं के रूप में आनुवांशिक संकेत भरे हुए होते हैं। जैसे छोटी-सी पेन ड्राइव में लाखों पृष्ठ की सामग्री होती है। प्रत्येक कोशिका में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के केन्द्रक अम्ल होते हैं। इनमें डी-ऑक्सी-रिबोन्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) नामक केन्द्रक अम्लों के अणु योजनाओं को बनाते हैं तथा रिबो-न्यूक्लिक-एसिड (आर.एन.ए.) नामक केन्द्रक अम्लों के अणु द्वारा इन योजनाओं की क्रियान्विति होती है। ये दोनों ही कार्य, सूत्रों के रूप में अंकित कर दिये जाते हैं। अन्ततोगत्वा अनेक अन्य प्रोटीनों की संरचना की जाती है। डी.एन.ए. और आर.एन.ए. के अणुओं की संरचना में रिबोज-शर्करा, फास्फेट एवं नाइट्रोजन मूलक रसायनिक पदार्थ काम में आते हैं। डी.एन.ए. और आर.एन.ए. में संरचना की दृष्टि से कुछ सादृश्य भी हैं और वैसा दृश्य भी।

2.0 वर्धन

वर्धन अर्थात् शरीर की वृद्धि एवं विकास जो हम भोजन एवं श्वास के माध्यम से करते हैं। दूसरे रूप में हम यह कह सकते हैं कि वर्धन का तात्पर्य कोशिकाओं का विभाजन अर्थात् कोशिकाओं की कुल संख्या में वृद्धि से है।

वर्धन पुरुष के शुक्राणु द्वारा स्त्री के डिम्बाणु के निषेचन के माध्यम से प्रारम्भ हो जाता है। फिर उसका एक शिशु के रूप में रूपान्तरण होना तथा जन्म के बाद शिशु का क्रमशः बालक, किशोर और वयस्क व्यक्ति के रूप में होने वाला एक आश्यचर्यजनक विकास है जो विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया द्वारा होता है। इसका तात्पर्य है—भिन्न-भिन्न निर्धारित क्रियाकलाप करने की क्षमताओं का विकास होना। शैशवावस्था में शरीर के अंगोपांग न केवल परिणाम और वजन में बढ़ते हैं किन्तु साथ-साथ उनके आकार-प्रकार और आंतरिक रचना में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है ताकि वे नाना प्रकार की नई-नई प्रवृत्तियों का कुशलता से संचालन कर सकें। वयस्क होने के बाद परिणाम की वृद्धि प्रायः समाप्त हो जाती है; फिर भी प्रवृत्तियों का निर्माण होता रहता है और कुल मिलाकर एक गत्यात्मक संतुलन स्थापित किया जाता है। जितनी कोशिकाएँ समाप्त हो जाती हैं उतनी बनती जाती हैं। (नाड़ी-तंत्र की कोशिकाओं का नवसृजन नहीं होता है।) अन्ततोगत्वा जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे नवसृजन की क्रिया में मंदता आती है।

2.1 वर्धन की गति– हमारे शरीर की वर्धन की गति सदा एक जैसी नहीं रहती है। गर्भावस्था में ही क्रमशः इस गति में मंदता आनी शुरू हो जाती है और जन्म के बाद भी निरन्तर उसमें कमी हो जाती है। गर्भधारण के क्षण से जन्म तक 9 मास की अवस्था में मानवभ्रूण के वजन और परिणाम में 10 खरब गुनी वृद्धि हो जाती है। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में वजन में तीन गुना वृद्धि होती है तथा कद में (या लम्बाई) 1.5 गुनी वृद्धि होती है। प्रथम वर्ष के बाद प्रतिवर्ष वजन में 2 से 3 किलोग्राम तथा परिमाण में 5 सेंटीमीटर की निरन्तर वृद्धि होती रहती है। उसके बाद 14-15 वर्ष की आयु होने पर जब यौन हार्मोन के स्रावों का प्रारम्भ होता है तब इन स्रावों के प्रभाव से दैनिक वर्धन की प्रक्रिया में एक साथ विस्फोट-सा होता है और एक वर्ष में ऊंचाई में 15 से 18 सेंटीमीटर की वृद्धि होती है। इसके बाद वर्धन की गति बहुत मंद हो जाती है। युवकों में प्रायः 18 से 21 वर्ष की आयु तक तथा युवतियों में 16 से 18 वर्ष तक यह वृद्धि का क्रम चलता है तथा उसके बाद ऊँचाई में वृद्धि का क्रम प्रायः समाप्त हो जाता है।

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि हमारा निर्माण पिता के शुक्राणु तथा माता के अण्डाणु के मिलन से प्रारम्भ हो जाता है जो जीवन-पर्यन्त चलता रहता है। प्रारम्भ में इस निर्माण की प्रक्रिया में तेजी रहती है। प्रौढ़ावस्था में निर्माण प्रक्रिया व ह्रास प्रक्रिया बराबर की गति से चलती है तथा वृद्धावस्था में निर्माण प्रक्रिया धीमी हो जाती है व ह्रास प्रक्रिया में तेजी आ जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उसके पश्चात् आत्मा शरीर को छोड़ देती है। वृद्धि और विकास की प्रक्रिया को वर्धन तथा ह्रास की प्रक्रिया को वार्धक्य कहते हैं। वर्धन की गति को हम निम्न भागों में बांट सकते हैं— 1. गर्भावस्था, 2. शैशवावस्था, 3. किशोरावस्था, 4. युवावस्था।

2.1.1 गर्भावस्था– शुक्राणु और डिम्ब का संयोग डिम्ब-प्रणाली में होता है। निषेचन के पश्चात् डिम्ब गर्भाशय में चला जाता है। यहां भ्रूण का विकास होता है। हमारा भ्रूण एक समय मात्र एक कोशिका के रूप में होता है, जिसका व्यास 150U होता है। एक U=1/1000 M.M. होता है तथा भ्रूण का भार 1 मिलीग्राम का एक अंश मात्र होता है।

प्रारम्भ में भ्रूण एक बिन्दु की तरह होता है। 3 सप्ताह बाद यह दियासलाई के नोक के बराबर हो जाता है। 6 सप्ताह के बाद भ्रूण में सिर का निर्माण हो जाता है। दो माह में इसकी लम्बाई लगभग 1 इंच तक हो जाती है तथा वजन 1/10 औंस (1 औंस=28.35 ग्राम) रहता है। तीसरे माह में प्राय: सभी अंग बन जाते हैं। चौथे माह में मांसपेशी का विकास होता है, पांचवे माह में सिर पर बाल उग आते हैं, सातवें माह के अन्त में पूर्ण विकसित शिशु बन जाता है। इस समय जन्म होने पर जीवित रह सकता है। आठवें माह में और अधिक विकास हो जाता है। फेफड़े मजबूत होने लगते हैं। नवें माह के अंत में शिशु जन्म लेता है। इस समय इसकी लम्बाई लगभग 20 इंच तथा वजन 6 से 8 पौण्ड तक हो जाता है। इन नौ माह में वजन एवं परिणाम में लगभग 10 लाख गुना वृद्धि हो जाती है।

गर्भावस्था में वर्धन की गति

गर्भ की उम्र	लम्बाई	गर्भ की उम्र	लम्बाई
24 दिन	3 मिलीमीटर	28 दिन	7 मिलीमीटर
5 सप्ताह	10 मिलीमीटर	6 सप्ताह	1.3 से.मी.
7 सप्ताह	2 से.मी.	8 सप्ताह	4 से.मी.
12 सप्ताह	10 से.मी.	16 सप्ताह	14 से.मी.
20 सप्ताह	21 से.मी.	24 सप्ताह	33 से.मी.
28 सप्ताह	37 से.मी.	30 सप्ताह	40 से.मी.
32 सप्ताह	43 से.मी.	34 सप्ताह	45 से.मी.
36 सप्ताह	47 से.मी.	38 सप्ताह	50 से.मी.
40 सप्ताह	51 से.मी.		

2.1.2 शैशवावस्था

जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में वजन लगभग 21 पौण्ड (1 पौण्ड=9.5256 कि.ग्रा.) तक हो जाता है तथा लम्बाई ढाई फुट हो जाती है। इसके बाद प्रतिवर्ष 13-14 वर्ष तक वजन में 2 से 3 किलोग्राम तथा परिणाम में 5 से.मी. की वृद्धि होती रहती है।

2.1.3 किशोरावस्था

13-14 वर्ष की आयु के पश्चात् किरोशावस्था प्रारम्भ हो जाती है। इस उम्र में यौन हार्मोनों का स्राव भी आरम्भ हो जाता है जिससे विकास बहुत तेजी से होता है। यह विकास एक वर्ष में 15 से 18 से.मी. तक हो सकता है। यह विकास बालिका में 16 से 18 वर्ष की उम्र तक तथा बालकों में 18 से 21 वर्ष की उम्र तक होता है।

2.1.4 युवावस्था

युवावस्था में लम्बाई में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है लेकिन वजन में वृद्धि होती रहती है। जो लोग बैठकर कार्य करते हैं, उनके शरीर में वसा की मात्रा बढ़ने से मोटापा बढ़ जाता है। वैसे भारतीय पुरुषों और महिलाओं के लिए गठन के अनुसार अपेक्षित वजन निम्न प्रकार होना चाहिए—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वयस्क भारतीय पुरुषों और स्त्रियों में अपेक्षित वजन कि.ग्रा. में

ऊँचाई–कद से.मी. में पुरुष	छोटा गठन	मध्यम गठन	बड़ा गठन
152	45–48	49–53	52–56
155	47–41	50–54	53–58
157	48–52	51–55	54–58
160	49–53	53–57	56–60
163	51–55	54–55	57–62
165	52–56	55–60	59–64
168	54–57	57–61	60–66
170	55–60	59–63	62–67
173	57–61	60–65	64–69
175	58–63	62–67	65–71
178	60–65	64–68	67–73
180	62–67	65–70	69–75
183	63–68	67–72	70–77
स्त्रियाँ			
147	42–45	44–48	47–51
150	42–46	45–49	48–52
152	43–47	46–49	49–53
155	44–48	47–51	50–55
157	46–49	49–52	51–56
160	47–51	50–53	53–58
163	48–52	51–55	54–59
165	50–53	53–57	56–61
168	51–55	54–58	58–62

आदर्श वजन जानने का सूत्र—

पुरुष— लम्बाई से.मी. में X 0.358 = वजन कि.ग्रा.

महिला— लम्बाई से.मी. में X 0.313 = वजन कि.ग्रा.

2.2 वर्धन प्रेरक

इस पूर्व निर्धारित वृद्धि क्रम में पीयूष ग्रंथि के हार्मोनों की अन्य ग्रंथियों के साथ तथा मस्तिष्क के कुछ नियंत्रण–केन्द्रों के साथ क्रिया–प्रतिक्रिया होती है। दूसरी ओर हमारे शरीर में वर्धन और विकास के समय को निर्धारित करने वाली एक अंतरंग समय–व्यवस्था (घड़ी) होती है। इस घड़ी के संचालन में हार्मोनों की पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्धन–क्रम को प्रेरित करने में थाइराइड ग्रंथियों के स्रावों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। ये विशेषत: चयापचय क्रिया के सामान्य उत्प्रेरण के माध्यम से अस्थि पंजर तथा नाड़ी–तंत्र के विकास–क्रम को प्रभावित करते हैं। किशोरावस्था के अंत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

में होने वाली यकायक वृद्धि के दौरान काम-ग्रंथियों (गोनाड्स) तथा एड्रीनल ग्रंथियों द्वारा स्रावित यौन हार्मोनों के द्वारा इस विकास-क्रम को और अधिक प्रेरणा मिलती है।

कोशिकाओं में एक प्रकार की समय-व्यवस्था (घड़ी) निहित होती है जिसके द्वारा उनकी आयु का निर्णय होता है। कुछ वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि जब जीर्ण-शीर्ण कोशिकाओं में डी.एन.ए. संश्लेषण तथा विभाजन-क्रिया को प्रेरित करने वाली हार्मोनों की प्रक्रिया अस्त-व्यस्त होने लग जाती है तब वर्धन का क्रम समाप्त हो जाता है। मानव शरीर में यकृत जैसे महत्त्वपूर्ण अवयवों की कोशिकाएँ 100 वर्ष के आयु-काल में अधिक से अधिक 50 बार विभाजन क्रिया कर सकती हैं। इसके बाद विभाजन-क्रिया बंद हो जाती है और अंततः कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं। वयस्क होने के बाद व्यक्ति की ऊंचाई में कोई विशेष वृद्धि नहीं होती पर वजन में वृद्धि होती रहती है लेकिन क्षुधा तथा भोजन की मात्रा में उस अनुपात में कोई विशेष अंतर नहीं आता। परिणाम यह होता है कि अधिक बैठक करने वाले प्रौढ़ व्यक्ति अपने शरीर की आवश्यकता से अधिक कैलोरी (ऊर्जा) ग्रहण कर लेते हैं जो वसा के रूप में शरीर में संग्रहित हो जाती है। इससे वजन बढ़ता रहता है। अतः वजन-वृद्धि को रोकने के लिए व्यायाम और संतुलित भोजन दोनों का योजनाबद्ध अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है।

3.0 वार्धक्य

यह एक अनिवार्य जैविक प्रक्रिया है जो जन्म, वर्धन, वार्धक्य तथा मृत्यु के क्रम में निरन्तर चलती रहती है। इस क्रिया में शरीर के अवयवों तथा उनके क्रियाकलापों में क्रमिक क्षीणता आने लगती है जिसके फलस्वरूप रोग-प्रतिरोधक शक्ति में ह्रास होता है तथा दुर्घटना आदि की संभावना में वृद्धि होती है। विकास के शिखर पर पहुंचने के पश्चात् जैविक क्षमताओं में क्रमशः ह्रास प्रारम्भ होता है। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों और ऊतकों में ह्रास का वेग एक समान नहीं होता। तंत्रिका-कोशिकाओं तथा मांसपेशी कोशिकाओं में क्रिया-शक्ति का क्षरण पहले होना प्रारम्भ हो जाता है जबकि यकृत या क्लोम ग्रंथि जैसे अवयवों की कोशिकाओं का विभाजन लम्बे समय तक चलता रहता है। क्षीणता का सर्वाधिक दुष्प्रभाव केन्द्रीय नाड़ी संस्थान पर पड़ता है। स्मरण रहे कि अन्य कोशिकाओं की तरह तंत्रिका-कोशिकाएँ क्षमता नहीं रखती। अतः नष्ट होने वाली कोशिकाओं का स्थान सदा रिक्त ही रहता है। उनका स्थान नई कोशिकाएँ नहीं लेतीं। तंत्रिका-कोशिकाओं की क्षति, तंत्रिकाओं की विद्युत-वाहकता में मंदता तथा मस्तिष्क में रक्त-संचार की कमी—ये तीनों मिलकर वृद्ध व्यक्ति की मानसिक क्षमता में क्रमिक ह्रास लाते हैं। इसके अतिरिक्त—

1. महिलाओं में मासिक रज की प्रक्रिया आकस्मिक रूप से बंद हो जाती है, जिसे 'रजो निवृत्ति' कहा जाता है। पुरुषों में यौन क्रियाओं की समाप्ति शनैः-शनैः होती है। क्रमशः कम होते-होते वह सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है।
2. आंखों की क्षमता को क्षीण करने वाले विभिन्न रोगों की संभावना बढ़ती है। आंख के लैंस को नियोजित करने वाली आंख की मांसपेशियों की कार्यक्षमता में कमी आने से 'समीप देखने की क्षमता में कमी' वाला रोग 'हायपरमेट्रोपिया' पैदा होता है।
3. स्वादग्राही तंतु क्रमशः क्षीण होने लगते हैं जिससे स्वाद का संवेदन भी कमजोर होता जाता है।
4. प्रतिवर्त सहज क्रिया में लगने वाले समय में वृद्धि होती है।
5. विस्मृति की घटनाएँ भी बढ़ती जाती हैं।
6. मानसिक क्षमताओं में कमी के कारण वृद्ध व्यक्तियों के लिए नई-नई बातें सीखना कठिन होता है।
7. रक्त-संचार प्रणाली में भी नाना प्रकार के ह्रासात्मक परिवर्तन होने लगते हैं।
8. हृदय की मांसपेशीय दीवारों में रेशेदार या चर्बीयुक्त पदार्थ लचीले पदार्थ का स्थान ले लेते हैं।
9. धमनियों की लचीली दीवारों की भीतरी सतह में भी कड़ापन आने लग जाता है और दीवारों की भीतरी सतह पर कैल्शियम युक्त चर्बी जमा हो जाती है। इससे दीवारें कमजोर हो जाती हैं। जब आवेश या कड़े परिश्रम के कारण रक्तचाप बढ़ता है तब धमनियां फट जाती हैं या रक्त के परिसंचरण में अवरोध उत्पन्न करने वाले खून के थक्के जम जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. वृद्धावस्था में कैल्शियम की कमी के कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है। अस्थियों में जहां कैल्शियम की विद्यमानता आवश्यक है, वहां से तो धीरे-धीरे बाहर निकल जाती है। इससे अस्थियां दुर्बल हो जाती हैं और उनके टूटने की संभावना बढ़ जाती है। दूसरी ओर जहां कैल्शियम की आवश्यकता नहीं है, वहां इसका जमाव समस्या का कारण बनता है। जैसे संधियों में वहां जमा होकर वह संधियों के संचालन में बाधा उत्पन्न करती है तथा छाती की मांसपेशियों के रेशों के आस-पास जमा होकर उनका लचीलापन समाप्त कर देती है। जब अस्थियों का केल्शियम-संतुलन बिगड़ जाता है तब वे टेढ़ी तथा छिद्रिल बन जाती हैं एवं कमजोर हो जाती हैं।
11. तंत्रिका तंत्र की कोशिकाओं की क्षीणता के कारण पांचों ज्ञानेन्द्रियों के कार्य मंद पड़ जाते हैं।
12. शरीर के तरलांशों का संतुलन भी बिगड़ जाता है। जीवन में लगातार ऊतकों में विद्यमान तरल क्रमशः कम होता जाता है जिससे ऊतक शनैः-शनैः रूक्ष बनते जाते हैं।
13. गुर्दों की निस्पन्दन-गति (अपशिष्ट पदार्थों के विसर्जन की क्रिया का वेग) कम होती जाती है।
14. मांसपेशियों के क्षीण होने से त्वचा पर झुर्रियां बनने लगती हैं।
15. अंत में (मृत्यु के माध्यम से) शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

बोध-प्रश्न

प्रश्न-1. जीवन द्रव्य के मुख्य संघटक के नाम बताइये तथा किसीएक का वर्णन कीजिए।

प्रश्न-2. वर्धन को समझाइये।

4.0 आधि, व्याधि एवं उपाधि

आधि, व्याधि एवं उपाधि—तीनों ही रोग हैं। **प्राचीन ग्रंथों में मानसिक बीमारी को आधि, शारीरिक बीमारी को व्याधि तथा भावात्मक बीमारी को उपाधि कहा गया है।**

तीनों ही बीमारियां आधि, व्याधि एवं उपाधि हमारी मूर्खता व अज्ञानता के कारण ही पनपती हैं। इन बीमारियों से बचा जा सकता है लेकिन असंयम के कारण ये बीमारियां हमें अपना घर बना लेती हैं। संयम एक ऐसी औषधि है जो हमारा चिर यौवन बनाए रख सकती है। उसके लिए 'संयममय जीवन हो' के सूत्र को अपनाना होगा। खाने में संयम, कपड़े पहनने में संयम, निद्रा में संयम, मैथुन में संयम, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या में संयम, दिखावे की आदत में संयम आदि संयमपूर्ण जीवनशैली शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक रोगों को हमसे मीलों दूर रखती है। तय हमें करना है कि संयममय जीवन जीना है या रोगमय जीवन जीना है।

4.1 आधि

सुश्रुत ने व्याधियों का जो वर्गीकरण किया है, उसमें एक है—मानसिक बीमारी। मानसिक बीमारी के वही लक्षण हैं जो आर्त्तध्यान का लक्षण है। इष्ट का वियोग न हो जाए और अनिष्ट का योग न हो जाए—इस प्रकार की चिन्ता जिसके मन में जाग जाती है, वह मानसिक रूप से बीमार हो जाता है। जो व्यक्ति निरन्तर यह सोचता रहे कि धन मिला है, कहीं चला न जाए। इतना बड़ा परिवार मिला, कहीं समाप्त न हो जाए। इतना पदार्थ मिलता है, कहीं चला न जाए, पड़ोस खराब न आ जाए। चोर न आ जाएँ। आयकर अधिकारियों का छापा न पड़ जाए, प्रिय का वियोग न हो, अप्रिय का योग न हो, यह निरन्तर चिन्ता रहती है तो मानसिक बीमारी बन जाती है। उसे धर्म की भाषा में कहा जाता है—आर्त्तध्यान और सुश्रुत की भाषा में कहा जाता है—मानसिक रोग।

हम मानसिक विकृतियों पर ध्यान दें। आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है मानसिक विकृति। आज मानसिक विकृति या मानसिक रुग्णता के लिए जितनी संभावना है। उतनी शायद पहले नहीं थी। आज का युग उसके लिए जितना उर्वर है। उतना पहले नहीं था। प्रश्न है कि मनोविकार क्यों होता है? हम कारण की खोज करें। कारण का पता लगना मुश्किल नहीं है। जिन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मनुष्यों ने कारण को खोजा है, उन्हें वह उपलब्ध हुआ है। कार्य के साथ कारण का सम्बन्ध है। कार्य दृष्ट होता है और कारण अदृष्ट। कार्य सामने होता है और कारण छिपा रहता है। मनुष्य ने किसी भी छिपी हुई वस्तु को अज्ञात नहीं रहने दिया, उसे ज्ञात कर लिया। हम उसे ज्ञात कर सकते हैं। मनोविकार का हेतु खोजा गया और खोजने पर पता चला कि उसका हेतु है मन की मलिनता। प्रतिदिन मन पर मैल जमता है।

पुनः प्रश्न हो सकता है कि मन की मलिनता क्या होती है? मन की मलिनता से तात्पर्य मन की विकृति से है। मन की मुख्य विकृतियां निम्न हैं—

1. बड़प्पन की भावना,
2. आक्रमण व शोषण की भावना,
3. प्रतिशोध की भावना,
4. ईर्ष्या की भावना।

4.1.1 बड़प्पन की भावना

यह एक मानसिक विकृति है। लोग बड़प्पन के लिए प्रदर्शन करते हैं। इस विकृति ने व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं अपितु समाज, राष्ट्र व विश्व के लिए भी कई बार समस्याएँ खड़ी की। प्रत्येक मनुष्य अपने आपको बड़ा दिखाना चाहता है। उसमें उसे बड़ा संतोष मिलता है। वह सोचता है—मैं बड़ा हूँ और सब छोटे हैं। मुझे लोग बड़ा मानें और दूसरों को छोटा। व्यक्ति चाहता है कि हर व्यक्ति उसके सामने झुका रहे।

4.1.2 आक्रमण व शोषण की भावना

आक्रमण की भावना मन की एक विकृति है। मनुष्य में दूसरे के स्वामित्व को हड़पने की भावना होती है। वह उसे छीनकर अपने अधिकार में लेना चाहता है। आक्रमण की भावना पागलपन है। जब-जब मनुष्य में पागलपन बढ़ा है तब-तब आक्रमण की भावना बढ़ी है। कुछ ऐसे सम्राट् या शासक हुए हैं जिन्होंने विश्व-विजेता बनने का स्वप्न लिया था। उन्होंने विश्व-विजय के लिए प्रयत्न किए। उन्हें मिला कुछ भी नहीं और जो कुछ मिला, वह भी उनके पास नहीं टिका। केवल मानसिक स्वप्न की तृप्ति मात्र हुई। उन्होंने मान लिया कि वे विश्व-विजेता हो गए। एक व्यक्ति का पागलपन लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की हत्या का हेतु बन जाता है। एक व्यक्ति का पागलपन विश्व के समस्त व्यक्तियों के सुखों को छीनने का हेतु बन जाता है।

4.1.3 प्रतिशोध की भावना

प्रतिशोध की भावना मन की एक बहुत बड़ी विकृति है। किसी के द्वारा जाने-अनजाने अप्रिय व्यवहार हो जाने पर व्यक्ति में बदले की भावना जागृत हो जाती है। वह सोचता है—''मैं इसका बदला लेकर ही रहूँगा।'' मैंने कई परिवार ऐसे देखे हैं जो पिछली कई पीढ़ियों से प्रतिशोध की भावना से धधक रहे हैं। हर पीढ़ी में दो-चार व्यक्ति मौत की नींद सुला दिये जाते हैं। अन्य परेशानियां अलग से खड़ी हो जाती हैं। यह क्रम आखिर कब तक? प्रतिशोध की भावना को समाप्त करना ही होगा।

4.1.4 ईर्ष्या की भावना

ईर्ष्या भी मानसिक विकृति है। दूसरे की प्रगति देखी और मन में एक कुढ़न पैदा हो गयी। जब यह होता है तब दूसरे की प्रगति पर दिल जलता है, कुढ़ता है और जल-भुनकर राख हो जाता हैं

इन सारी मानसिक विकृतियों का प्रभाव क्या होता है? यह एक प्रश्न है। ये मानसिक विकृतियां तनाव पैदा करती हैं। पागलपन से पहले तनाव होता है। मस्तिष्क में जब तक तनाव नहीं होता तब तक पागलपन नहीं आता। तनाव का बिन्दु ही पागलपन है। अतः हमारा मस्तिष्क शांत होना चाहिए। दूसरे की प्रगति से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए बल्कि प्रेरणा लेनी चाहिए। परिश्रम करके उस ऊँचाई को छूना चाहिए। इससे सुख और शान्ति मिलती है।

4.1.5 आधि की प्रेक्षा चिकित्सा

मस्तिष्क जब स्वस्थ होता है तब वह दूसरे सारे अंगों को ठीक कर लेता है। वह सारे शरीर का संचालक है। जितने ज्ञानवाही और क्रियावाही स्नायु हैं, उन सबका संचालन मस्तिष्क से होता है। यह ऐसा नियंत्रण-कक्ष है जो सबका संचालन करता है। उसमें जब थोड़ी-सी विकृति होती है तब शरीर का सारा ढांचा गड़बड़ा जाता है। जब तब मस्तिष्क की चेतना ठीक है, व्यक्ति जीता है। हमारे शरीर का सबसे मूल्यवान अंग है—मस्तिष्क। विकृत मन के द्वारा मस्तिष्क में जब तनाव पैदा होता है तब शरीर-तंत्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विकारग्रस्त हो जाता है। उस मस्तिष्क की विकृति से बचने के लिए शिथिलीकरण अत्यन्त आवश्यक है। जैसे शरीर का शिथिलीकरण होता है वैसे ही मन की अवस्था का शिथिलीकरण भी होता है। शिथिलीकरण यानि विसर्जन, मूढ़ता का विसर्जन। इसका तात्पर्य है कि ऐसी कोई भी विकृति न हो, ऐसी कोई मूर्च्छा की तरंग न आए जो मस्तिष्क को विकृत बना दे। दीर्घश्वास प्रेक्षा का प्रयोजन यही है कि शरीर के दोष निकल जाएँ। जब हम मन को श्वास दर्शन में लगाते हैं तब हम राग-द्वेष से मुक्त क्षणों में जीते हैं। उस समय मूर्च्छा के दोष, मन के दोष बाहर निकलते हैं। दीर्घश्वास प्रेक्षा मानसिक दोषों को दूर करने का सबसे सरल उपाय है।

4.2 व्याधि

व्याधि अर्थात् शारीरिक बीमारी। हमारे शरीर के चारों तरफ निरन्तर बैक्टीरिया, वायरस व अन्य जीवाणुओं का आक्रमण होता रहता है लेकिन हमारे अन्दर मौजूद रोग-प्रतिरोधक क्षमता इस आक्रमण से हमारा निरन्तर बचाव करती रहती है। जब हमारी रोग-प्रतिरोधक क्षमता किन्हीं कारणों से कमजोर हो जाती है तब हम इन जीवाणुओं के शिकार हो जाते हैं एवं रोगी बन जाते हैं। इन रोगों से ग्रस्त होना ही व्याधि है। वर्तमान समय में व्याधि के जो कारण खोजे गए हैं, वे निम्न हैं—

1. बैक्टीरिया जनित,
2. वायरस जनित,
3. फफूंद जनित,
4. प्रोटोजोआ जनित,
5. हैलमिन्थस जनित,
6. बाहरी आघात (चोट आदि)।

4.2.1 बैक्टीरिया जनित

निमोनिया (Pneumonia)

जीवाणु का नाम—डिप्लोकोकस न्यूमोनी

यह रोग फेफड़ों को प्रभावित करता है।

लक्षण—तेज बुखार, फेफड़ों मे सूजन, सांस लेने में कठिनाई।

टिटनेस (Tetanus)

जीवाणु का नाम—बैसिलस टेटनी

जंग लगे लोहे पर पाया जाता है।

लक्षण—तेज बुखार, शरीर एवं जबड़ों में ऐंठन। इसे धनुष्टंकार भी कहा जाता है। गांवों में इसे धनुषबाय एवं ताण भी कहते हैं।

हैजा (Cholera)

जीवाणु का नाम—विब्रिओ कालेरी

मक्खियों द्वारा फैलता है। मक्खियां गंदगी के ढेर से इस जीवाणु को लेकर खाद्य पदार्थों तक पहुंचा देती हैं।

लक्षण—शरीर में जल की कमी, लगातार उलटी दस्त होना, रोगी शक्तिहीन महसूस करता है।

टायफाइड (Typhoid)

जीवाणु का नाम—सालमोनेला टाइफोसा

दूषित पानी से फैलता है।

लक्षण—शरीर पर लाल दाने, सिरदर्द व तेज बुखार।

तपेदिक (Tuberculosis) (यक्ष्मा)

जीवाणु का नाम—माइकोबैक्टिरियम ट्युबरकुलोसिस

यह जीवाणु थूकने व खांसने से प्रसारित होता है।

लक्षण—बुखार, अनिद्रा तथा लगातार खांसी के साथ कफ एवं रक्त निकलना, शरीर का क्षय होना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

डिप्थीरिया (Diptheria)

जीवाणु का नाम—कोरीनी बैक्टीरियम डिप्थीरी

यह जीवाणु सड़े हुए फलों एवं गंदे पानी में फैलता है।

लक्षण—श्वास नली में रुकावट हो जाती है। सामान्यत: यह बच्चों में फैलता है। वयस्क भी संक्रमित हो सकते हैं।

प्लेग (Plague)

जीवाणु का नाम—पाश्चुरेला पेस्टिस

यह जीवाणु चूहे एवं गिलहरी के शरीर पर पाए जाने वाले पिस्सू के आमाशय में पैदा होता है। पिस्सुओं के उत्सर्जी पदार्थों के साथ ये जीवाणु बाहर निकल जाते हैं। खाद्य पदार्थों के माध्यम से हमारे शरीर में पहुंचकर घातक बन जाते हैं। अब इस रोग पर काफी हद तक काबू पा लिया गया है। जेनोप्सिला केओपिस प्लेग फैलाने वाला भयानक पिस्सू है। इस महामारी की वजह से विश्व में दस करोड़ से भी अधिक लोग मरे हैं। सन् 1994 में भारत में इस बीमारी ने दहशत फैला दी थी लेकिन जल्दी इसे नियंत्रित कर लिया गया था।

लक्षण—तेज बुखार होता है। शरीर में गिट्टियां बन जाती हैं। जोड़ों की ग्रंथियां सूज जाती हैं अथवा फेफड़े प्रभावित होते हैं और सांस से फैलता है।

कोढ़ (Leprosy) (कुष्ठ रोग)

जीवाणु का नाम—माइक्रोबैक्टिरयम लेप्री।

यह जीवाणु रोगी के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों में भी फैल जाता है।

लक्षण—शरीर पर चकते और त्वचा के ऊतकों का क्षय होने लगता है। प्रभावित हिस्सा असंवेदनशील हो जाता है।

4.2.2 वायरस जनित

पोलियो

लक्षण—इसमें बुखार, बदन दर्द होता है।

प्रभावित अंग—वायरस केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। शरीर के किसी अंग का पक्षाघात हो सकता है। रीढ़ की हड्डी व आंतों की कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं।

डेंगू ज्वर

यह मादा एडिस मच्छर के काटने से होता है। इसे हड्डी-तोड़ बुखार भी कहा जाता है।

लक्षण—आंखों, मांसपेशियों, सिर तथा जोड़ों में तीव्र दर्द होता है।

एड्स (AIDS)

जीवाणु का नाम—एच.आई.वी. (Human Immunodeficiency Virus)

लक्षण—रोगी की प्रतिरोधक क्षमता समाप्त हो जाती है। रक्त संचार अव्यवस्थित हो जाता है।

इन्फ्लुएंजा

इसे फ्लू भी कहते हैं।

लक्षण—सारे शरीर में दर्द होता है और बुखार आता है। सिरदर्द और बेचैनी होती है।

चेचक (Small Pox) यह एक संक्रामक रोग है।

लक्षण—सिरदर्द, कंपकंपी, बुखार, उल्टी। 3-4 दिन बाद चेहरे पर लाल दाने हो जाते थे, जो शीघ्र ही पूरे शरीर पर फैल जाते थे। चेचक ठीक होने के बाद भी चेहरे पर अपने दाग छोड़ जाती थी। कई मरीजों की आंखें भी खराब हो जाती थीं। अब इस रोग का विश्व से पूरी तरह उन्मूलन हो चुका है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

छोटी माता

यह भी चेचक के समान एक संक्रामक रोग है। यह रोगी की श्वास या छींकों से प्रसारित होता है।

लक्षण—रोगी के शरीर पर छोटे दाने हो जाते हैं। जोड़ों में दर्द होता है। बुखार आ जाता है। किसी व्यक्ति को एक बार यदि यह रोग हो जाता है, वो पुनः इसकी गिरफ्त में नहीं आता, क्योंकि शरीर में इस रोग के विरुद्ध प्रतिरोधक शक्ति विकसित हो जाती है।

खसरा (Measles)

जीवाणु का नाम—मोर्बेली।

यह रोग प्रायः बच्चों में ही अधिक होता है।

लक्षण—इस रोग के आरंभ में नाक व आंख से पानी बहता है। शरीर में दर्द होता है। आंखें लाल हो जाती हैं।

ट्रेकोमा

यह आंख के कॉर्निया का सांसर्गिक रोग है।

लक्षण—नेत्रों में सूजन, जलन तथा पानी का बहना।

कनफेड या गलसुआ (Mumps)

यह एक संक्रामक रोग है। रोगी की लार से इसके वायरस का प्रसार होता है।

लक्षण—बुखार आने के साथ रोगी को मुंह खोलने में भी परेशानी होती है। पैराथाइराइड ग्रंथि सूज जाती है।

कंजक्टिवाइटिस

यह रोग आंखों को प्रभावित करता है।

लक्षण—आंखें लाल होकर सूज जाती हैं।

पीलिया (जॉन्डिस)

जीवाणु का नाम—हेपेटाइटिस ए, बी, सी, डी और ई

यह यकृत का रोग है। हेपेटाइटिस ए और ई दूषित जल तथा बी और सी रक्त एवं पसीने के माध्यम से फैलते हैं।

लक्षण—यकृत में उत्पन्न होने वाले पित्त वर्णक को यकृत पूरी तरह अपचय नहीं कर पाता, इसलिए आंखें और त्वचा पीली हो जाती हैं। पेशाब का रंग भी पीला हो जाता है। यकृत की कार्यक्षमता घट जाती है। भोजन की गंध से उल्टी करने की इच्छा होती है। भूख खत्म हो जाती है।

हर्पीज - यह त्वचा का रोग है।

लक्षण—त्वचा में सूजन आ जाती है। यदि प्रारंभ में इलाज न करवाया जाए तो यह त्वचा के कैंसर में भी परिवर्तित हो सकता है।

मेनिनजाइटिस

इस रोग से मस्तिष्क प्रभावित होता है।

लक्षण—बेहोशी के साथ तेज बुखार आता है। मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु की झिल्ली में स्थित द्रव सेरिब्रो स्पाइनल में संक्रमण की संभावना होती है।

4.2.3 फफूंद जनित

अस्थमा

लक्षण—यह श्वास से संबंधित रोग है। इसमें फेफड़ों की सूक्ष्म नलियों में सिकुड़न आ जाती है, जिससे रोगी को सांस लेने में कठिनाई होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खाज (Scabies)

जीवाणु का नाम—यह रोग एकेरस स्केबीज नामक कवक से होता है।

लक्षण—त्वचा में खुजली होने लगती है। सफेद दाग भी पड़ जाते हैं।

एथलीट फुट

यह त्वचा का संक्रामक रोग है।

लक्षण—पैरों की त्वचा कट-फट जाती है और सूजन आने लगती है।

गंजापन

जीवाणु का नाम—यह रोग टिनिया केपेटिस नामक कवक से होता है।

लक्षण—सिर के बाल टूटने लगते हैं। सिर के बालों की ग्रंथियां कवकों द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं।

दाद (Ringworm)

जीवाणु का नाम—इसके फैलने का मुख्य कारण ट्राइकोफाइटान कवक है।

लक्षण—कवक त्वचा के अंदर एक जालनुमा संरचना बना लेते हैं। इसमें त्वचा पर लाल रंग के धब्बे पड़ जाते हैं।

4.2.4 प्रोटोजोआ जनित

मलेरिया

जीवाणु का नाम—यह रोग प्लाज्मोडियम फाल्सीपेरम या प्लाजमोडियम वाइवेक्स नामक प्रोटोजोआ के कारण होता है।

किसी स्वस्थ मनुष्य को मादा एनोफिलीज मच्छर के काटने पर उसके रक्त के साथ यह प्रोटोजोआ भी आ जाता है। यह मच्छर के अंदर पनपता है, जिसका एक जीवन चक्र होता है। जब यह मच्छर दूसरे व्यक्ति को काटता है तो वह प्रोटोजोआ उस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर उसे रोगी बना देता है।

लक्षण—इसमेंठण्ड के साथ बुखार आता है। लाल रक्त कणिकाएँ नष्ट हो जाती हैं और रक्त में कमी आ जाती है। मलेरिया फाल्सीपेरस जब दिमाग में प्रवेश कर जाता है तो घातक हो सकता है। मादा एनोफिलीज साफ ठहरे हुए पानी में अण्डे देती है।

पेचिस (Dysentary)

जीवाणु का नाम—एनटअमीबा हिस्टोलिटिका।

यह परजीवी बड़ी आंत में रहता है।

लक्षण—पेट में दर्द रहता है। खाना नहीं पचता और भूख नहीं लगती। दस्त आते हैं।

पायरिया

जीवाणु का नाम—एन्ट अमीबा जिन्जिवेलिस

लक्षण—दांतों की जड़ों में घाव हो जाता है। मसूड़ों से रक्त निकलने लगता है, मुंह में दुर्गंध आती है।

रेबीज या हाइड्रोफोबिया

यह कुत्ते के काटने से होता है। पागल कुत्ता काटने के बाद 10-15 दिन में मर जाता है, यदि वह नहीं मरता तो व्यक्ति भी सुरक्षित रहता है। यह रोग लाइसा वायरस टाप-I द्वारा होता है जो कि काटने के बाद कुत्ते की लार के माध्यम से मनुष्य के रक्त में पहुंच जाता है।

लक्षण—ज्वर, पानी से अत्यधिक भय, मांसपेशियों तथा श्वसन तंत्र में लकवा, बेहोशी, बेचैनी।

सोने की बीमारी (Sleeping Sickness)

जीवाणु का नाम—ट्रिपेनोसोमा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लक्षण—रोगी को बहुत नींद आती है तथा बुखार आता है।

काला जार (Kala Azar)

जीवाणु का नाम—लीशमैनिया डोनोवनी

इस परजीवी का वाहक बालू मक्खी (Sand Fly) होती है।

लक्षण—तेज बुखार आता है।

4.2.5 हैलमिन्थस जनित

अतिसार (Dirrahoea)

जीवाणु का नाम—एस्केरिस लुम्बीकाइडिज।

यह जीवाणु आंतों में विद्यमान होता है। यह घरेलू मक्खी द्वारा फैलता है।

लक्षण—भोजन ठीक से नहीं पचता। पेट में दर्द होता है, उलटी आती है।

फाइलेरिया (Filaria)

जीवाणु का नाम—वाउकेरिया बैंक्राफ्टाई

यह लसीका को प्रभावित करता है।

लक्षण—पैरों, वृषणकोषों तथा शरीर के अन्य भागों में सूजन आ जाती है। टांगें सूज जाती हैं।

वर्णान्धता (Colour Blindness)

वर्णान्धता के रोगी लाल एवं हरा रंग नहीं पहचान पाते। इससे मुख्य रूप से पुरुष प्रभावित होता है और स्त्रियां केवल वाहक होती हैं। स्त्रियों में यह रोग तभी होता है, जब इसके दोनों गुणसूत्र XX प्रभावित हों।

हीमोफीलिया

आमतौर पर एक व्यक्ति को चोट लगने पर औसतन 2–5 मिनट में उस स्थान पर रक्त का थक्का बन जाता है और रक्त बहना बंद हो जाता है। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति को चोट लगने के बाद काफी समय तक भी रक्त बहना बंद नहीं होता। रक्त में प्रोटीन की कमी से थक्का नहीं बन पाता। अंतत: शीघ्र उपचार न होने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

डाउन्स सिन्ड्रोम

इस तरह के रोगी मंदबुद्धि होते हैं, आंखें टेढ़ी, जीभ मोटी तथा शारीरिक ढांचा अनियमित होता है।

टर्नर सिन्ड्रोम

स्त्रियों में यह बीमारी होती है। इसमें शरीर अल्प विकसित, कद छोटा तथा वक्ष चपटा होता है। स्त्रियों में जननांग प्राय: अविकसित होते हैं जिससे वे मां नहीं बन पातीं।

क्लीनफेलटर सिन्ड्रोम

इसमें गुणसूत्रों की संख्या 46 के स्थान पर 47 हो जाती है। यह रोग पुरुषों में होता है। इनके वृषण अल्पविकसित होते हैं। स्त्रियों के समान स्तन विकसित हो जाते हैं। प्राय: इस तरह के पुरुष नपुंसक होते हैं।

पटाऊ सिन्ड्रोम

इसमें ऊपर का होंठ बीच में से कट जाता है। तालू में दरार, मंदबुद्धि, नेत्ररोग हो जाता है।

4.2.5 बाहरी आघात जनित (चोट इत्यादि)

अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारुद आदि के प्रहार से या किसी दुर्घटना आदि से जब शरीर को चोट लगती है या शरीर जल जाता है या किसी जानवर के काटने से घाव आदि हो जायें तो उसे इस श्रेणी में रखते हैं। लेकिन बाद में चोट आदि की सही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

देखभाल या चिकित्सा न होने से अन्य दूसरे प्रकार की भी बीमारियां हो सकती हैं अत: चोट आदि के स्थान पर सर्वप्रथम अच्छी तरह सफाई कर उचित चिकित्सा करनी चाहिए। **घरेलू उपचार के साथ-साथ डाक्टरी परामर्श अत्यन्त आवश्यक है।**

चिकित्सा—निम्न सभी में डॉक्टरी सहायता जरूरी है। चिकित्सक उपलब्ध होने से पूर्व निम्न उपाय कर सकते हैं—

1. जलना—

❖ थोड़ा जलने पर जले हुए अंग को ठण्डे पानी में डुबोकर कुछ देर रखें।

❖ थोड़ा ज्यादा जलने पर छाले पड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में छालों को फोड़ें नहीं, यदि छाले फूट जायें तो साबुन व उबालकर ठंडे किये हुए पानी से धोयें। वैसलीन को उबालकर रोगाणुमुक्त कर लगाएँ।

❖ बुरी तरह जल जाने पर तुरन्त चिकित्सक को दिखायें। रोगी को थोड़ा नमक मिला पानी, नींबू का रस, शहद, संतरे का रस आदि पिलाते रहें।

2. हड्डी टूटना—

टूटी हड्डी का अपने स्थान पर बैठाकर प्लास्टर बांधना आवश्यक है।

3. जहर खा लेना—

तुरन्त नमक मिला पानी एक दो लीटर पिलायें एवं शीघ्र उल्टी करावें।

4. जहरीले जानवर का काट लेना—

❖ जिस अंग में काटा है, उसे हिलायें नहीं।

❖ काटे गये स्थान के ऊपर डोरी या फीता से बांध दें।

❖ असंक्रमित ब्लेड या चाकू से एक-दो इंच का चीरा + की आकृति में लगायें एवं खून को बाहर निकालें। कटे हुए स्थान पर पोटेशियम परमेगनेट भर दें।

5. चोट—

❖ छोटा घाव होने पर साबुन या पौटेशियम परमेगनेट व उबले हुए पानी से धोयें तथा दोनों किनारों को मिलकर सादा पट्टी बांध दें।

❖ बड़ा होने पर चोट लगे स्थान को ऊँचा रखें ताकि रक्त कम बहे। तुरन्त डॉक्टरी सहायता लें।

4.3 उपाधि

उपाधि अर्थात् भावात्मक बीमारी। हमारा स्वास्थ्य मात्र शरीर से जुड़ा हुआ ही नहीं होता, उसका सम्बन्ध भाव से है। भावना के स्तर पर जो आदमी बीमार नहीं होता वही सही अर्थ में स्वस्थ होता है। भावना के स्तर पर जो बीमार होता है, शरीर के बीमार न होने पर भी वह बीमार ही है। इसलिए भावों को समझना आवश्यक है। जिस व्यक्ति ने भाव को नहीं समझा, वह निरोग नहीं रह सकता।

क्रोध, मान, माया, लोभ और भय आदि भावों से ही हमारा व्यक्तित्व विकृत होता है जबकि सकारात्मक भाव सर्वांगीण व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। जब हम अपने पूरे व्यक्तित्व का विश्लेषण कर लेंगे, पूरे जीवन को समझने का प्रयत्न कर लेंगे तभी सच्चाई हमारी समझ में आ सकेगी। जब तक हम बाहर ही बाहर रहते हैं, भीतर प्रवेश नहीं करते तब तक सच्चाई हस्तगत नहीं हो सकती। अर्थात् इस बीमारी को हम स्वयं नहीं जान सकते। अज्ञानता की स्थिति में हम उसका उपचार भी नहीं कर पायेंगे।

भावना के स्तर पर जो बीमारियाँ हैं उनकी चिकित्सा करनी है। इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति के भाव परिवर्तित किये जाएँ। अर्थात् निषेधात्मक भावों में परिवर्तन किया जाए। मुख्य निषेधात्मक भाव निम्न हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. लोभ, 2. भय, 3. क्रोध,
4. वैर-विरोध, 5. अहंकार, 6. क्रूरता,
7. असहिष्णुता, 8. भावनात्मक असन्तुलन।

शरीर क्रिया-मनोविज्ञान के अनुसार आचार और व्यवहार हमारे भावों द्वारा नियमित होते हैं तथा भावों का नियमन रसायनों के द्वारा होता है। इन्हें हार्मोन्स कहते हैं। ये हार्मोन्स अन्तःस्रावी ग्रंथियों के द्वारा स्रावित होते हैं। इनका संचालन लिम्बिक संस्थान (भाव संस्थान) द्वारा होता है। अनुप्रेक्षा के प्रयोगों द्वारा इन रसायनों को प्रभावित कर संतुलित किया जा सकता है। इससे व्यक्ति के भाव में, आचरण में तथा व्यवहार में आश्चर्यजनक परिवर्तन होगा। यह पूरी प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

4.3.1 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्ध प्रविधि

इस प्रक्रिया को निम्न चरणों में बांटा गया है—

1. सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण (अनुप्रेक्षा द्वारा)
2. आहार द्वारा उपाधि चिकित्सा
3. योगासन, प्राणायाम एवं शुद्धि क्रियाओं द्वारा

4.3.1.1 सैद्धान्तिक प्रशिक्षण एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण (अनुप्रेक्षा द्वारा)

(1) **भाव**—लोभ
परिणाम—अधिकार की मनोवृत्ति
सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र—लोभ का अनुदय, शरीर और पदार्थ के प्रति अमूर्च्छा भाव का प्रशिक्षण।
अनुप्रेक्षा—अनासक्ति की अनुप्रेक्षा।

(2) **भाव**—भय
परिणाम—शस्त्र निर्माण, शस्त्र प्राप्ति और प्रयोग
सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र—अभय, शस्त्र निर्माण व व्यवसाय न करने का संकल्प।
अनुप्रेक्षा—अभय की अनुप्रेक्षा।

(3) **भाव**—क्रोध
परिणाम—कलहपूर्ण सामुदायिक जीवन।
सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र—क्षमा का प्रशिक्षण।
अनुप्रेक्षा—शान्ति की अनुप्रेक्षा।

(4) **भाव**—वैर-विरोध
परिणाम—प्रतिशोध की मनोवृत्ति।
सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र—मैत्री का प्रशिक्षण।
अनुप्रेक्षा—मैत्री की अनुप्रेक्षा।

(5) **भाव**—अहंकार
परिणाम—घृणा, जातिभेद के कारण छुआछूत, रंग-भेद जनित विद्वेष।
सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र—विनम्रता, अहिंसक प्रतिरोध, अन्याय के प्रति असहयोग का प्रशिक्षण।
अनुप्रेक्षा—मृदुता की अनुप्रेक्षा।

(6) **भाव**—क्रूरता
परिणाम—शोषण, हत्या।
सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र—क्रूरता का अनुदय।
अनुप्रेक्षा—करुणा की अनुप्रेक्षा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(7) **भाव**—असिहष्णुता

परिणाम—साम्प्रदायिक तनाव, झगड़े।

सैद्धान्तिक प्रशिक्षण के सूत्र—साम्प्रदायिक सद्भाव, भिन्न-भिन्न विचारों को सहने का प्रशिक्षण।

अनुप्रेक्षा—साम्प्रदायिक सद्भाव और सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा।

4.3.1.2 आहार द्वारा उपाधि चिकित्सा

वर्तमान में व्यक्ति में जो भावात्मक असंतुलन है उसका एक मुख्य घटक आहार भी है। व्यक्ति के आहार में वे पदार्थ अधिक हैं जो भावात्मक असंतुलन पैदा करते हैं। पहले कहा जाता था—जैसा अन्न, वैसा मन। आज कहा जाता है—जैसा आहार वैसा न्यूरोट्रान्समीटर। जैसा न्यूरोट्रान्समीटर, वैसा व्यवहार। आदमी जो भोजन करता है उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में न्यूरोट्रान्समीटर बनते हैं जो तन्त्रिका तन्त्र के संप्रेषक होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिको ने अनेक न्यूरोट्रान्समीटरों का पता लगा लिया है जो भोजन से बनते हैं इनसे अनेक प्रकार के व्यवहार घटित होते हैं।

आज आहार के विषय में नई-नई खोजें सामने आ रही है। उनसे अनेक भ्रान्तियाँ टूटी है और टूटती जा रही है। आज माना जाने लगा है कि अधिक प्रोटीन खाना हानिकारक है। अण्डे और मांस का सेवन करना बीमारी को निमन्त्रण देना है। यह भोजन बीमारियों को ही नहीं बढ़ाता, भावात्मक स्थिति को भी बिगाड़ देता है। भावात्मक स्थितियों की गड़बड़ी में दो मुख्य तत्त्व हैं—मांसाहार और मादक वस्तुओं का सेवन।

आत्महत्या का एक हेतु है रक्त में शर्करा की कमी होना। यकृत (लीवर) और तिल्ली (स्प्लीन) की विकृति हिंसा के भाव को जन्म देती है।

भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड बनते हैं। यूरिक ऐसिड जहर है। वह भी भोजन से बनता है। हमारी प्रवृत्ति और भोजन के द्वारा अनेक विषैले तत्त्व शरीर में बनते हैं। अत: इस बात को जानना होगा कि किस प्रकार का भोजन करने से क्या बनता है? जिस भोजन से विष अधिक बनता है, वैसा भोजन करने पर मानसिक समस्याएँ पैदा होती हैं। भावात्मक उलझनें बढ़ती हैं। इन विष द्रव्यों को शरीर में जमा न होने देना ही उचित होगा। इसके लिए आवश्यक है कि सन्तुलित एवं सात्विक आहार का ही सेवन किया जाए।

4.3.1.3 योगासन, प्राणायाम एवं शुद्धि क्रियाओं द्वारा

योगासन एवं प्राणायाम के द्वारा एसिड में संतुलन स्थापित किया जा सकता है। जब आदमी के रक्त में, मस्तिष्क में, मूत्र में एमिनो एसिड की मात्रा बढ़ जाती है तो आदमी हिंसक बन जाता है, क्रूर बन जाता है और हत्यारा बन जाता है। इसकी मात्रा में एक सन्तुलन स्थापित करना योगासन के द्वारा संभव है।

आसन—पद्मासन, शशांकासन, योगमुद्रा, वज्रासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, गोदोहिकासन।

प्राणायाम—अनुलोम-विलोम, चन्द्रभेदी, नाड़ी शोधन, उज्जाई और शीतली।

शुद्धि क्रियाएँ—नेति, कुंजल, शंख प्रक्षालन।

4.4 आधि, व्याधि एवं उपाधि को दूर करने के सूत्र

आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने आधि, व्याधि एवं उपाधि से दूर रहकर समाधि में जाने के लिए निम्न सूत्र बताए—

1. आदर्श या इष्ट का चुनाव,
2. पूर्ण विश्राम आवश्यक,
3. सुलझा हुआ मन,
4. मन की एकाग्रता,
5. जागृत मन,
6. शिथिलीकरण,
7. शक्ति के अपव्यय से बचना,
8. प्राणधारा को निश्चित दिशा में बहाना,
9. कारण के मूल को पकड़ें,
10. समाधिपूर्ण जीवन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.4.1 आदर्श या इष्ट का चुनाव– भावात्मक बीमारियों को मिटाने का पहला सूत्र है—आदर्श का चुनाव, ईष्ट का चुनाव। व्यक्ति वैसा ही बनता है, जैसा उसका आदर्श होता है। व्यक्ति का जैसा उद्देश्य होता है, लक्ष्य होता है, वैसा ही बन जाता है। आदर्श के लिए तीन शर्तें जरूरी हैं—अनन्त शक्ति, अनन्त चैतन्य और अनन्त आनन्द। आदर्श वैसा हो जिसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं, जिसके चैतन्य की कोई सीमा नहीं, जिसके आनन्द की कोई सीमा नहीं। यदि हम ऐसे आदर्श का चुनाव करते हैं तो यह समस्या संकुल जगत् में रहते हुए भी हम शक्तिशाली, चैतन्यमय और आनन्दमय रह सकते हैं। इस आधार पर हम पूरी भावधारा को शक्ति, चैतन्य और आनन्द के साथ संजो सकते हैं। यदि आदर्श के चुनाव में थोड़ी-सी गड़बड़ हो जाती है तो पूरा जीवन भटक जाता है, भावधारा खण्डित, त्रुटिपूर्ण और दु:ख देने वाली बन जाती है।

हम अपने आदर्श के प्रति इतने श्रद्धावान् बनें, ऐसा तादात्म्य स्थापित करें कि द्वैत समाप्त हो जाए। ध्याता और ध्येय दो नहीं हैं, दोनों एक हो जाएँ। प्रारम्भिक अवस्था में ध्याता अलग होता है, ध्येय अलग होता है। जब श्रद्धा का पूरा परिष्कार होता है, वह शैशव अवस्था को छोड़कर प्रौढ़ अवस्था में आती है, तब ध्याता, ध्येय और ध्यान—तीनों एक हो जाते हैं। वही ध्याता, वही ध्येय और वही ध्यान। तीनों में कोई अन्तर नहीं रहता। ऐसी अवस्था में ही श्रद्धा के परिणाम मिल सकते हैं। लोग कहते हैं—श्रद्धा रखते हैं पर परिणाम कुछ भी प्राप्त नहीं होता। श्रद्धा निश्छिद्र हो और परिणाम न आए, ऐसा कभी हो नहीं सकता।

4.4.2 पूर्ण विश्राम आवश्यक– आज का आदमी खाली रहता ही नहीं, विश्राम करता ही नहीं। सोता भी है तो समस्याओं को लेकर सोता है, सपनों के साथ सोता है। इतने सपने, इतनी कल्पनाएँ, इतना भय सिरहाने लेकर सोते हैं कि जागने पर भी उनसे मुक्त नहीं हो पाते। सोते हैं तब भी भय को सिरहाने लेकर सोते हैं और जागते हैं तो सबसे पहले दर्शन उसी भय का होता है। मंगल प्रभात में, मंगल बेला में जो मंगलमय देवता सामने आता है, वह भय और चिन्ता का ही आता है। अत: कुछ समय सभी कार्यों से मुक्त रहना चाहिए।

4.4.3 सुलझा हुआ मन– मनुष्य सामाजिक जीव है अत: मन की शक्ति जरूरी है। जो सेना में है और मोर्चे पर बैठा है, उसके लिए मन की शक्ति की और अधिक आवश्यकता है। वह केवल अपने लिए ही शक्ति का संवर्धन नहीं करता किन्तु समूचे राष्ट्र के हितों की सुरक्षा के लिए अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहता है। लोग यही मानते हैं कि शक्ति को बढ़ाने का साधन है पौष्टिक भोजन, आसन-व्यायाम आदि। किन्तु जब तक मन की उलझनों को मिटाने या आवेगों पर नियंत्रण करने का उपाय हस्तगत नहीं होता, तब तक शक्ति का विकास जितना चाहिए, उतना नहीं होता। इसलिए आज सबसे बड़ी मांग है कि सैनिक भी ध्यान में प्रवेश करें। एक सैनिक के लिए अनुशासन आवश्यक होता है, एकाग्रता और अभयवृत्ति आवश्यक होती है। इसी प्रकार उसके लिए निराशाओं और घरेलू चिन्ताओं से मुक्त होने की आवश्यकता होती है। केवल शरीर से शक्तिशाली आदमी चिन्ता से मुक्त नहीं हो सकता, विषाद और निराशा से मुक्त नहीं हो सकता। वह मन की उलझनों से भी मुक्त नहीं हो सकता।

4.4.4 मन की एकाग्रता– एकाग्रता और मन की निर्मलता का एकमात्र उपाय है—ध्यान। चंचलता सारी समस्याएँ पैदा करती है। जिस व्यक्ति का मन चंचल होता है, वह किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं होता। एकाग्रता के अभ्यास से अनुशासन सहज ही आ जाता है। बाहर से लादा हुआ अनुशासन सहज नहीं होता। उस स्थिति में जब कोई दूसरा देखता है तब वह अनुशासन पाला जाता है और जब कोई नहीं देखता तब अनुशासन को पालने की जरूरत प्रतीत नहीं होती है। किन्तु जो व्यक्ति ध्यान का अभ्यास करता है, वह अनुशासन का पालन करेगा, फिर चाहे कोई देखे या न देखे। अनुशासन का पालन करना उसका धर्म बन जाता है। ऐसी स्थिति में मन एकाग्र रहता है।

4.4.5 जागृत मन– जागृत मन बहुत कम शक्ति-सम्पन्न है। अन्तर्मन या सूक्ष्म मन बहुत शक्तिशाली है। वासनाएँ, धारणाएँ, मान्यताएँ, संस्कार और वृत्तियां जागृत मन में नहीं हैं। अचेतन मन से सब कुछ प्रवाहित होता है। जागृत मन उस प्रवाह को अभिव्यक्ति देने वाला है, क्रियान्विति करने वाला है। ऐसा प्रतीत हो रहा है—आज जागृत मन तो बहुत शक्ति सम्पन्न होता जा रहा है और सूक्ष्म मन या अन्त:करण कमजोर होता जा रहा है। जागृत मन पूरा काम कर रहा है, सूक्ष्म मन सोया पड़ा है। उसे काम करने का अवसर ही नहीं मिल पा रहा है। आदमी में इतना तनाव है, इतना प्रमाद है कि सूक्ष्म मन को कार्य करने का मौका ही नहीं मिलता। जीवन विज्ञान की प्रक्रिया के आधार पर कुछ नियम खोजे गए हैं जिनके आधार पर अन्त:करण को, शुद्ध चेतना को, अचेतन मन को जगाया जा सकता है। न केवल जगाया जा सकता है किन्तु उसका परिष्कार भी किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.4.6 शिथिलीकरण– प्रत्येक शक्ति के जागरण में इसका महत्त्वपूर्ण योग है। तनाव की स्थिति में कोई भी शक्ति जागृत नहीं हो सकती। मस्तिष्क में तनाव है, शरीर में तनाव है तो यह स्थिति शक्ति-जागरण में बाधक होती है। शिथिलीकरण अर्थात् प्रवृत्ति का विसर्जन। जब प्रवृत्ति का विसर्जन होता है तब भीतरी शक्तियों को जगाने का अवसर मिलता है। भीतरी शक्तियां जागना चाहती हैं किन्तु उनके सामने प्रवृत्ति का अवरोध आ जाता है। वे जाग नहीं पाती। जब प्रवृत्ति का अवरोध समाप्त होता है तब वे जाग जाती हैं। जो व्यक्ति कायोत्सर्ग साध लेता है वह शक्ति-जागरण का बीजमंत्र पा लेता है।

4.4.7 शक्ति के अपव्यय से बचना– सामान्यत: प्रत्येक व्यक्ति शक्ति का अपव्यय करता है। आवश्यकता हो या न हो आदमी सोचता रहता है, चिन्तन करता रहता है। मस्तिष्क को एक क्षण भी विश्राम नहीं मिलता। सोते हैं तब भी वह चलता है। स्वप्न आते हैं, मस्तिष्क सक्रिय रहता है। यह शक्ति का अपव्यय है।

हम मानते हैं कि यदि मन, वाणी और शरीर गतिशील रहेंगे तो विकास होगा। शरीर गतिशील होगा तो शक्ति बढ़ेगी, मन गतिशील होगा तो चिन्तन की शक्ति विकसित होगी, बुद्धि बढ़ेगी और वाणी गतिशील होगी तो वक्तृत्व का विकास होगा। यह उल्टी प्रक्रिया चल रही है। वास्तविकता यह है—जब मन, वाणी और काया का अप्रयोग होता है तब शक्ति का जागरण संभव है। इनकी क्रियाशीलता में शक्ति कभी नहीं जाग सकती। इनसे कम काम लेना चाहिए तभी शक्ति का जागरण हो सकता है। हमारे नाड़ी-संस्थान के दो भाग हैं—एक स्वचालित और दूसरा है—परचालित। हम स्वचालित नाड़ी-संस्थान को कम काम में लेते हैं। परचालित नाड़ी-संस्थान का उपयोग अधिक करते हैं। इसलिए हमारी आंतरिक शक्तियाँ जागृत नहीं होती। नाड़ी-संस्थान जितना सक्रिय रहता है, उतनी ही हमारी आंतरिक शक्तियां दबी रह जाती हैं। जब हम नाड़ी-संस्थान को अनुशासित कर देते हैं अर्थात् नाड़ी-संस्थान की सक्रियता को कम कर लेते हैं तब आन्तरिक सक्रियता अर्थात् अचेतन मन की सक्रियता अपने आप बढ़ जाती है। इस सक्रियता के बढ़ने का तात्पर्य है कि शक्ति का जागरण हो गया। यही हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।

4.4.8 प्राणधारा को निश्चित दिशा में बहाना– जब हम प्राणधारा को एक निश्चित दिशा में प्रवाहित करते हैं तब एक बिन्दु ऐसा आता है, जहां दिशा उद्घाटित हो जाती है। साधक चाहता है कि वह अज्ञात देश को जाने। वह प्रयोग करता है। जिस दिशा में वह देश स्थित है, उस दिशा में वह अपनी प्राणधारा को प्रवाहित करना प्रारम्भ कर देता है। पूरी तन्मयता और एकाग्रता के साथ वह ऐसा करता है। कुछ दिनों तक यह प्रयोग चलता है। संकल्प जब पूर्ण स्थिर हो जाता है तब एक दिन वह अज्ञात देश उसके लिए ज्ञात बन जाता है। वह अज्ञात स्थान साक्षात् हो जाता है।

4.4.9 कारण के मूल को पकड़ें– आज के विचार का मुख्य पहलू है—शरीर, फिर मन और फिर भावना। उसे बदलना जरूरी है। विचार का मुख्य पहलू होना चाहिए भावना, फिर मन और फिर शरीर। जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला तत्त्व है—भावना। जैसा भाव, वैसा मन और जैसा मन, वैसा व्यवहार। अत: मूल भाव हैं इसलिए भाव को पकड़ें तथा सर्वप्रथम इसी में परिवर्तन करें।

4.4.10 समाधिपूर्ण जीवन– समाधि के संदर्भ में कहा गया—जब समाधि की उपलब्धि होती है तब व्याधि, उपाधि, आधि नहीं सताती। ये तीनों—व्याधि, उपाधि और आधि जब नि:शेष हो जाती हैं तब समाधि घटित होती है। व्याधि आती है, रोग होता है, समाधि टूट जाती है। सुख और संतोष समाप्त हो जाते हैं। मानसिक उलझन व्यक्ति को इतना बेचैन बना देती है कि आदमी एक क्षण के लिए भी सुख की सांस नहीं ले सकता। आधि की कठिनाई व्याधि से अधिक है। आधि की स्थिति में आदमी पागल बन जाता है। सब कुछ साधन होने पर भी वह बहुत दु:खी बन जाता है। उपाधि की स्थिति आधि से भी ज्यादा भयंकर होती है। उपाधि का अर्थ है—कषाय। इस स्थिति में आदमी, आदमी ही नहीं रहता।

व्याधि, आधि, उपाधि—तीनों खतरे हैं। उनकी अवस्थिति में समाधि नहीं आ सकती। एक रोगी आदमी बहुत धनी हो सकता है, कलाकार और वैज्ञानिक हो सकता है। मानसिक और भावात्मक व्यथा से पीड़ित आदमी बहुत बड़ा धनी, वैज्ञानिक और कलाकार हो सकता है, किन्तु व्याधि, आधि और उपाधि से भरा हुआ समाधिस्थ नहीं हो सकता। समाधिस्थ होने के लिए इन तीनों के पार जाना जरूरी होता है। शरीर निरन्तर बीमार रहता है, समाधि कैसे होगी? मन उलझनों से भरा रहता है, समाधि कैसे होगी? आदमी उपाधि से भरा रहता है, कषाय से भरा रहता है, समाधि कैसे उपलब्ध होगी?

मनुष्य के सामने दो मार्ग हैं। वह सोचे—मुझे कौन-सा जीवन जीना है? व्याधि, आधि और उपाधि का जीवन जीना है या समाधि का जीवन जीना है? क्योंकि व्यक्ति जब चाहता है तब बीमार होता है। अगर वह न चाहे तो कभी बीमार नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हो सकता। यह सब चाह पर निर्भर है। क्या भोजन का असंयम, बहुत खाने की चाह और बीमारी दो हैं? मन में असंयम की चाह जागती है, क्या वह बीमार होने की चाह नहीं है? व्यक्ति अति काम, अति लोभ, अति क्रोध करता है, यह सभी बीमारी की चाह है। मनुष्य चुनाव करने में सक्षम है इसलिए वह व्याधि, आधि और उपाधि से दूर जाने का चुनाव भी कर सकता है। जब वह समाधि का चुनाव करता है तब उसकी जीवन दिशा बदल जाती है। समाधि कोई अद्‌भुत वस्तु नहीं है। समाधि कुछ लोगों के लिए नहीं है। समाधि जीवन के शिखर पर पहुंचने के बाद होने वाली घटना नहीं है। समाधि हमारे जीवन की दिशा है। समाधि हमारे जीवन का एक मार्ग है। जो जीवन के विज्ञान को समझ लेता है, वह शांत, सहज और निर्लिप्त जीवन जीता है। **हमारे लिए अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए राग-द्वेष मुक्त जीवन जीना ही समाधि है।**

5.0 सारांश

1.0 शरीर के रासायनिक संघटक

जीवित शरीर का मूल द्रव्य 'जीवद्रव्य' (Protoplasm) है जो कार्बनिक और अकार्बनिक संयोगों का एक जटिल मिश्रण है।

जल—यह हमारे शरीर में सर्वाधिक मात्रा में उपलब्ध यौगिक (रासायनिक) पदार्थ हैं। हमारे शरीर के वजन का लगभग 65 प्रतिशत से भी अधिक भाग जल है।

अकार्बनिक लवण—हमारे शरीर के वजन का 45 प्रतिशत भाग अकार्बनिक लवण का है। वे कुछ घुले हुए विघटित आयन के रूप में होते हैं तथा कुछ कार्बनिक यौगिकों के साथ संयुक्त रूप में होते हैं। कोशिका के बाहर सोडियम एवं क्लोराइड सर्वाधिक मात्रा में पाये जाते हैं जबकि कोशिकाओं के भीतर पोटेशियम एवं फोस्फोरस आयन मुख्य रूप से पाये जाते हैं।

कार्बोहाइड्रेट—शरीर की सभी कोशिकाओं के लिए और विशेष रूप से मस्तिष्क कोशिकाओं के लिए यह अनिवार्य पोषक तत्त्व है। ग्लुकोज व ऑक्सीजन की क्रिया से ही ऊर्जा मिलती है।

प्रोटीन—इनसे हमारे शरीर की मांसपेशियों का निर्माण होता है।

वसा—यह ऊर्जा संग्रह के उपयोगी साधन के रूप में उपयोग में आता है। कुछ विटामिन भी वसा में घुलने के पश्चात् उपयोग में आते हैं।

केन्द्रक अम्ल—जीवन की योजनाओं को बनाने तथा क्रियान्वित करने का कार्य इनके द्वारा ही सम्पन्न होता है।

2.0 वर्धन

वर्धन अर्थात् शरीर का विकास।

वर्धन की गति

❖ **गर्भावस्था**—150μ से प्रारम्भ होकर लगभग 20 ईंच तक लम्बाई में वृद्धि होती है। यह वृद्धि लगभग 10 लाख गुना होती है।

❖ **शैशवावस्था**—प्रतिवर्ष 2 से 3 कि.ग्रा. वजन तथा 5 से.मी. वृद्धि होती है।

❖ **किशोरावस्था**—इस अवस्था में यौन हार्मोनों के स्राव से लम्बाई में एकाएक तेज वृद्धि होती है।

❖ **युवावस्था**—माता-पिता के अनुरूप व्यक्ति इस अवस्था में शरीर की प्राप्ति कर लेता है।

3.0 वार्धक्य

वार्धक्य अनिवार्य जैविक प्रक्रिया है, जो मृत्यु तक चलती रहती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत नष्ट होने वाली कोशिकाओं की संख्या निर्मित होने वाली कोशिकाओं की संख्या से ज्यादा होती है। इसलिए धीरे-धीरे करके शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग कमजोर होते चले जाते हैं।

4.0 आधि, व्याधि एवं उपाधि

आधि—आधि अर्थात् मानसिक रोग। मनुष्य में विभिन्न प्रकार की मानसिक विकृतियां देखने को मिलती हैं, जिनमें से कुछ निम्न हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

❖ बड़प्पन की भावना
❖ आक्रमण व शोषण की भावना
❖ प्रतिशोध की भावना
❖ ईर्ष्या की भावना
❖ आधि की प्रेक्षा-चिकित्सा

व्याधि—व्याधि अर्थात् शारीरिक बीमारी जो विभिन्न प्रकार के रोगाणुओं से फैलती हैं। इनमे से प्रमुख निम्न हैं—

❖ बैक्टीरिया जनित—निमोनिया, टिटनेस, हेजा, टायफाइड, तपेदिक, डिप्थीरिया, प्लेग, कुष्ठ रोग।
❖ वायरस जनित—पोलियो, डेंगू, एड्स, इन्फ्लुऐंजा, चेचक, छोटी माता, खसरा, ट्रेकोमा आदि।
❖ फफूंद जनित—अस्थमा, खाज, दाद आदि।
❖ प्रोटोजोआ जनित—मलेरिया, पेचिस, पायरिया, काला जार आदि।
❖ हैलमिन्थस जनित—हर्मिन्थस, अतिसार, फाइलेरिया, वर्णांधता, हिमोफीलिया, डाउन्स सिण्ड्रोम आदि।
❖ बाहरी आघात (चोट आदि)—अस्त्र-शस्त्र से लगी चोट, विषैले जानवर आदि का काट लेना एवं जल जाना इत्यादि।

उपाधि—उपाधि अर्थात् भावात्मक बीमारी। यह सभी बीमारियों की जड़ है। मुख्य नकारात्मक भाव—लोभ, भय, क्रोध, अहंकार, क्रूरता, असहिष्णुता आदि।

जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्ध प्रविधि—

❖ सैद्धान्तिक प्रशिक्षण एवं प्रायोगिक प्रशिक्षण (अनुप्रेक्षा द्वारा)
❖ आहार द्वारा उपाधि चिकित्सा
❖ योगासन, प्राणायाम एवं शुद्धि क्रियाओं द्वारा

आदि, व्याधि एवं उपाधि को दूर करने के सूत्र—

❖ आदर्श या इष्ट का चुनाव
❖ पूर्ण विश्राम आवश्यक
❖ सुलझा हुआ मन
❖ मन की एकाग्रता
❖ जागृत मन
❖ शिथिलीकरण
❖ शक्ति के अपव्यय से बचना
❖ प्राणधारा को निश्चित दिशा में बहाना
❖ कारण के मूल को पकड़ें
❖ समाधिपूर्ण जीवन

6.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शरीर के रासायनिक संघटकों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. वर्धन तथा वार्धक्य को विस्तार से समझाइये।
3. आधि, व्याधि एवं उपाधि क्या है? इनसे मुक्ति के उपाय बताइये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जल हमारे शरीर के लिए क्यों आवश्यक है?
2. प्रोटीन शरीर का संघटक है? स्पष्ट कीजिए।
3. किशोरावस्था की वर्धन गति को समझाइये।
4. मन की किसी एक विकृति की व्याख्या कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. हमारे शरीर के वजन का कितने प्रतिशत भाग जल का है?
2. एक ग्राम वसा कितनी कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न करता है?
3. आदर्श वजन जानने का सूत्र लिखिए।
4. बैक्टीरिया जनित कोई दो रोगों के नाम लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–3 शारीरिक तंत्रों का रचनात्मक–कार्यात्मक परिचय, संबंधित रोग एवं रोगों का प्रबन्धन

पाठ–क

अस्थि तंत्र—परिचय अस्थि–तंत्र के विकार—गठिया एवं गर्दन का दर्द, हर्निया जीवन–विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

प्रिय विद्यार्थियों,

प्रथम इकाई में आपकी **स्वास्थ्य शिक्षा और जीवन विज्ञान** तथा द्वितीय इकाई में **शरीर का रचनात्मक संगठन** दोनों ही पाठों में आपको स्वास्थ्य तथा शरीर के सामान्य परिचय का ज्ञान प्राप्त हुआ तथा इस तृतीय इकाई में अस्थि–तंत्र तथा पेशी–तंत्र के विषय में अध्ययन करेंगे, साथ ही साथ आप इन तंत्रों से संबंधित कुछ रोगों एवं उनके जीवन–विज्ञान प्रबन्धन के विषय में भी सीखेंगे।

हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं—

उद्देश्य

1. आप अस्थि का संगठनात्मक परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
2. अस्थियों के कार्यों को जान सकेंगे।
3. आपको अस्थियों के प्रकार एवं इनकी संधियों के विषय में ज्ञान प्राप्त होगा।
4. आपको अस्थि से संबंधित बीमारी, गठिया के कारण, लक्षण तथा उपचार का ज्ञान प्राप्त होगा।
5. गर्दन का दर्द के विषय में भी आपको कारण, लक्षण का ज्ञान प्राप्त होगा।
6. आप उपरोक्त बीमारी का सफलतापूर्वक यौगिक उपचार करने में सक्षम होंगे।

विषय–वस्तु

1.0 अस्थि ढांचा
2.0 अस्थियों के मुख्य कार्य
3.0 अस्थि संगठन
4.0 अस्थियों की आन्तरिक रचना
5.0 अस्थि विकास
6.0 अस्थियों के प्रकार
  6.1 लम्बी अस्थियां
  6.2 छोटी अस्थियां
  6.3 चपटी अस्थियां
  6.4 अनियमित अस्थियां
  6.5 स्नायुजात अस्थियां
7.0 अस्थि संधियां
  7.1 रचना के अनुसार
    7.1.1 सूत्रक संधि
    7.1.2 उपास्थि संधि
    7.1.3 स्नेहक संधि
  7.2 गति के अनुसार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.2.1 अचल संधि
7.2.2 अल्पचल संधि
7.2.3 अबाधचल संधि
7.2.3.1 गेंद और प्लाला संधि
7.2.3.2 कब्जेदार संधि
7.2.3.3 कीलदार संधि
7.2.3.4 काठीदार संधि
7.2.3.5 कोन्डिलायड संधि
7.2.3.6 फिसलनदार संधि

8.0 गठिया
8.1 कारण
8.2 रियूमेटायड
8.3 ओस्टियो
8.4 गाउट
8.5 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन

9.0 गर्दन का दर्द
9.1 लक्षण
9.2 कारण
9.3 जीवन-विज्ञान द्वारा प्रबन्धन

11.0 सारांश
12.0 प्रश्नावली

मनुष्य पृष्ठवंशी अथवा मेरुदंडी (Vertebrates) जीव है। फिर भी अन्य मेरुदंडी जीवों से भिन्न है, क्योंकि इसके कंकाल की रचना तथा गठन विशिष्ट प्रकार का है। हमारे शरीर में 206 अस्थियां होती हैं। शिशु में इनकी संख्या अधिक होती है लेकिन आयु बढ़ने के साथ-साथ ये अस्थियां आपस में जुड़ती जाती हैं।

शरीर का मुख्य आधार अस्थियां ही होती हैं, जिसके कारण हमारा एक विशेष आकार बनता है। शरीर की समस्त अस्थियां आपस में दृढ़ सौत्रिक ऊतकों से जुड़ी होती हैं। जोड़ वाले स्थान पर उपास्थि की एक गद्दी रहती है, जिसके कारण हमारी अस्थियां आपस में रगड़ती नहीं हैं तथा गति भी आसानी से होती रहती है। सम्पूर्ण अस्थि निर्मित रचना को कंकाल या अस्थि पिंजर कहते हैं।

इन सभी अस्थियों की वर्तमान रचना हमारे क्रमिक विकासानुसार हुई है अर्थात् हमारी आवश्यकतानुसार इनका विकास होता गया। इस पूरे तंत्र को अध्ययन की दृष्टि से हम तीन भागों में बांट रहे हैं—

1. खोपड़ी (Skull)
2. धड़ (Trunk)
3. बाजुओं और टांगों की अस्थियाँ (Upper and Lower Limbs)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

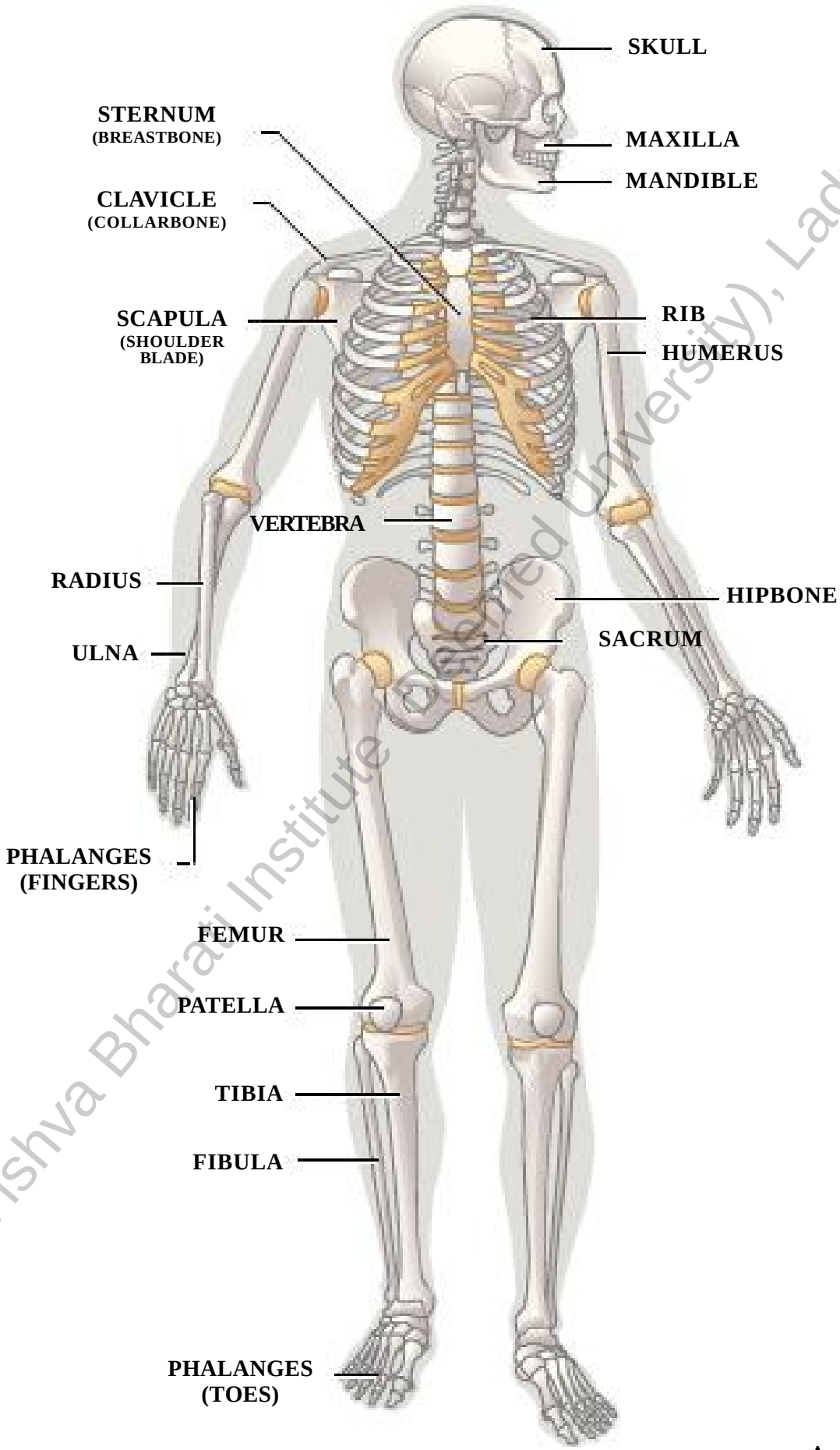

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. खोपड़ी (Skull)—मानव की खोपड़ी में 22 अस्थियां होती हैं। इनमें से 8 अस्थियां तो ऊपरी भाग में होती हैं, इसे कपाल (Cranium) कहा जाता है। कपाल के निचले भाग में एक बड़ा छेद (Foraman Magnum) होता है, जिसमें से सुषुम्ना (Spinal Cord) नीचे जाती है। सामने वाले भाग अर्थात् चेहरे में 14 अस्थियां होती हैं। इनमें अधोहन्वास्थि (Mandible Bone) ही चल है, शेष सभी 21 अचल हैं। इस अस्थि से निचला जबड़ा बनता है।

2. धड़ (Trunk)—धड़ 58 अस्थियों से मिलकर बनता है। ये अस्थियां निम्न हैं—

कशेरुक दण्ड—33 (Vertebral Column)
वक्षास्थि—1 (Sternum)
पसलियां—24 (Ribs)

कशेरुक दण्ड या मेरुदण्ड या रीढ़ की हड्डी—बहुत ही मजबूत तथा लचकदार होती है। इनमें प्रथम अस्थि को एटलस (Atlas) तथा द्वितीय को एक्सिस (Axis) कहते हैं। ये शेष से भिन्न होती हैं। प्रत्येक कशेरुक के मध्य एक बड़ा छिद्र होता है। ये आपस में मिलकर छिद्र नलिका का रूप ले लेता है, जिसमें सुषुम्ना (Spinal Cord) रहती है।

वक्षास्थि—वक्षास्थि को सीने की अस्थि भी कहा जाता है। इसकी लम्बाई लगभग 17 से.मी. होती है। ये चपटी होती हैं। इसके साथ हसली तथा सभी पसलियां जुड़ी रहती हैं।

पसलियाँ—पसलियों से हमारा छाती पिंजर बनता है। ये 12 जोड़े अर्थात् 24 होती हैं। ये हृदय तथा फेफड़े जैसे महत्त्वपूर्ण अंगों को सुरक्षित रखती हैं।

3. बाजुओं और टांगों की हड्डियाँ (Upper and Lower Limbs)—बाजुओं की अस्थियों के साथ स्कन्ध की तथा टांगों की अस्थियों के साथ श्रेणिगुहा (Pelvic Girdle) का अध्ययन किया जाता है।

❖ **स्कंध (Shoulder)**—स्कंध में दो महत्त्वपूर्ण अस्थियां—हसली (elavicle or collar bone) एवं स्केपुला (scapula) है। हसंली का एक सिरा सीने की अस्थि के साथ तथा दूसरा सिरा स्केपुला से जुड़ा रहता है। स्केपुला तिकोनी चपटी अस्थि है। वह पीठ की तरफ पसलियों के ऊपर स्थित है तथा सातवीं पर्शुका तक फैली हुई रहती है।

❍ भुजा के ऊपरी भाग में मात्र एक अस्थि ह्यूमरस (Humerus) होती है। इसका ऊपरी भाग गेंदनुमा होता है, जो स्केपुला की ग्लेनायड कैविटी (Glenaid Cavity) में फिट हो जाता है, जिससे भुजा को घुमा सकते हैं।

❍ कोहनी से हाथ तक दो अस्थियां अल्ना (Ulna) एवं रेडियस (Redius) रहती हैं। इनमें अल्ना बड़ी होती है। रेडियस का सिरा बटन के आकार का होता है, जो ह्यूमरस के साथ बंधा हुआ होता है।

❍ कलाई तथा हाथ की अस्थियां समूह में होती हैं। 8 कार्पस (Carpus) अस्थियां चार-चार के समूह में कलाई का निर्माण करते हैं।

❍ 5 मेटाकार्पस (metacarpus) अस्थियां हथेली का निर्माण करती हैं।

❍ 14 फ्लैनजिज (Phalanges) अस्थियों से अंगूठे तथा अंगुलियों का निर्माण होता है।

उपरोक्त प्रकार की ही रचना, कुछ विपरीत, दूसरे हाथ में होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

❖ **श्रोणि मेखला (Delvic Girdle)**—इसे कूल्हा भी कहते हैं। इसकी रचना तीन अस्थियों—श्रोणि-फलक, जघनास्थि तथा आसनास्थि (Ilium, Pubis and Ischium) के मिलने से बनती है। पुरुषों तथा महिलाओं की रचना में कुछ मौलिक अन्तर रहता है।

❍ जांघ (Thigh) में शरीर सबसे अधिक मजबूत तथा लम्बी अस्थि फीमर (Femur) होती है। ऊपर गेंदनुमा भाग कूल्हे की हड्डी में घूमता है।

❍ घुटने की अस्थि को जानुकास्थि (Patella) कहते हैं। ये चपटी तथा त्रिकोण आकार की होती हैं। यह जानु-संधि का मुख्य भाग है।

❍ पिण्डली (Calf) की दो अस्थियां टिबीया (Tibia) तथा फिबुला (Fibula) होती है। इनमें अन्दर की तरफ टिबीया तथा बाहर छोटी अंगुली की तरफ फिबुला होती है।

❍ सात गुल्फिका अस्थि (Tarsal Bones) एडी का निर्माण करती है। इनका कोई निश्चित आकार नहीं है। ये सर्वाधिक वजन को सहन करती हैं।

❍ 5 मैटाटार्सल (Metatarsal) अस्थियां पैर के तलवे का निर्माण करती हैं।

❍ पैर के अंगूठे में 2 तथा अंगुलियों में तीन-तीन कुल 14 अस्थियां होती हैं, जिन्हें फ्लेनजिन कहते हैं।

2.0 अस्थियों के मुख्य कार्य

1. कंकाल के ढांचे का निर्माण कर आकृति प्रदान करना।
2. कोमल ऊतकों को सहारा देना।
3. पेशियों की सहायता से स्वतंत्र गति करने की क्षमता प्रदान करना।
4. भीतर के अंगों की रक्षा करना।
5. अपने अस्थि मज्जा (Bone Marrow) में रक्त कणिकाओं का निर्माण करना।
6. इनमें कई विषों जैसे संखिया, सीसा आदि का निर्विषीकरण होता है।
7. ये कैल्शियम तथा फास्फोरस के भण्डार गृह हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये खनिज लवण प्रदान करते हैं।
8. चलने-फिरने व अन्य कार्य करने के लिए ये उत्तोलक तथा स्तम्भ का कार्य करते हैं।

3.0 अस्थियों का संगठन (Composition of Bone)

अस्थियां संयोजी ऊतक से बनी होती है। खनिज लवण उपस्थित होने से ये कठोर हो जाती है। इनका संगठन निम्न प्रकार से होता है—

❍ अस्थियों में 50% जल (water) तथा 50% ठोस पदार्थ (solid matter) होते हैं।

❍ इन ठोस पदार्थों में 33% अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic matter) तथा 67 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) पाया जाता है।

❍ अकार्बनिक पदार्थों में जिलेटिन (Geletin) मुख्य है।

❍ कार्बनिक पदार्थों में कैल्शियम कार्बोनेट तथा कैल्शियम फास्फेट मुख्य है।

4.0 अस्थियों की आन्तरिक रचना (Inner Structure of the Bone)

अस्थियां अन्य ऊतकों की भांति सजीव हैं लेकिन लवणों की अधिकता के कारण ये निर्जीव-सी दिखती हैं। अस्थि की कोशिकाओं में निरन्तर चयापचय की क्रियाएँ होती रहती हैं।

प्रत्येक अस्थि एक आवरण से ढकी रहती हैं जिसे अस्थिच्छंद (Periostrum) कहते हैं। इसमें से रक्त वाहिनियां अस्थियों में जाती हैं। इससे ही पेशियां आदि जुड़ती हैं। अस्थियों के मध्य में अस्थि मज्जा होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.0 अस्थि विकास (Development of Bone)

गर्भकाल में, भ्रूण में कोई अस्थि दिखाई तो नहीं देती है लेकिन इसकी रूपरेखा तैयार हो जाती है। धीरे-धीरे इन रूपरेखा पर कैल्शियम का जमना प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार आठवें से दसवें सप्ताह के मध्य में अस्थियां बनना प्रारम्भ हो जाती हैं। इससे पूर्व प्रत्येक अस्थि निर्माण के एक या एक से अधिक अस्थि-विकास केन्द्र उदित होते हैं। ये विकास-केन्द्र जन्म के बाद भी उदित होते हैं तथा यह विकास तब तक चलता है, जब तक पूर्ण अस्थि नहीं बन जाती है।

अस्थि निर्माण में कैल्शियम सबसे अधिक आवश्यक है अत: ऐसे पदार्थ जिनमें कैल्शियम काफी मात्रा में पाया जाता है, जैसे—दूध, बादाम, मूंगफली, नींबू, पालक, शलजम, अंजीर, मूली आदि बच्चों को अधिक मात्रा में खिलाने चाहिए। इनमें दूध मुख्य है, जिसमें अधिकांश पोषक तत्त्व पाये जाते हैं।

6.0 अस्थियों के प्रकार (Types of Bone)

मानव शरीर में रचना एवं आकृति के अनुसार निम्न प्रकार की अस्थियां पाई जाती हैं—

1. लम्बी अस्थियां (Long Bone)
2. छोटी अस्थियां (Short Bone)
3. चपटी अस्थियां (Flat Bone)
4. अनियमित अस्थियां (Irregular Bone)
5. स्यानुजात अस्थियां (Sesamoid Bone)

6.1 लम्बी अस्थियां (Long Bone)

इस प्रकार की अस्थियों में एक लम्बी नाली (Shaft) तथा दो बाह्य सिरे (Extremities) होते हैं। इनके मध्य में अस्थि मज्जा रहता है। ये अस्थियां साधारणतया हाथ एवं पैरों में होती हैं।

6.2 छोटी अस्थियां (Short Bone)

इनमें नाली नहीं होती हैं बल्कि ये स्पंजी अस्थि के छोटे पिंड होते हैं, जिनके ऊपर सघन अस्थि का खोल होता है। कलाई तथा टखने की अस्थियां इसके अच्छे उदाहरण हैं।

6.3 चपटी अस्थियां (Flat Bone)

इनमें दो सघन अस्थि के बीच में एक स्पंजी अस्थि होती है। ये शरीर के उस भाग में होती हैं, जहाँ कोमल भागों की सुरक्षा करनी होती है, जैसे—कपाल एवं कन्धे की अस्थि।

6.4 अनियमित अस्थियां (Irregular Bone)

इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है तथा उपरोक्त वर्णित किसी प्रकार में भी नहीं आती है। इसके उदाहरण हैं—चेहरे तथा मेरुदण्ड की अस्थियां।

6.5 स्यानुजात अस्थियां (Sesamoid Bone)

इस प्रकार की अस्थियों का एक अपना ही विशेष समूह होता है। वैसे ये छोटी अस्थियां होती हैं, जो कुछ संधियों के निकट स्वत: विकसित हो जाती हैं। वास्तविकता में ये मांसपेशियों के टेंडन (Tendons) के रूप में विकसित होती है। उदाहरण के लिए घुटने की जान्विका (Patella) आदि।

7.0 अस्थि संधियां (Skletal Joints)

हमारा शरीर कई अलग-अलग प्रकार की अस्थियों से मिलकर बना है। ये अस्थियां विभिन्न स्थानों पर दो या दो से अधिक संख्या में जुड़ी हुई हैं। ये जोड़ वाले स्थान ही संधि कहलाते हैं। इन सभी संधियों की रचनाओं एवं गतियों में भिन्नता है। प्रमुख रूप से संधियां निम्न प्रकार की होती हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संधि के प्रकार (Type of Joints)

रचना के अनुसार

1. सूत्रक-संधि (Fibrous Joints)
2. उपस्थित-संधि (Cartilaginous Joint)
3. स्नेहक-संधि (Synovial Joints)

गति के अनुसार

1. अचल संधियां (Synarthroser)
2. अल्पचल संधियां (Amphiapthoses)
3. अबाधचल संधियां (Diapthroses or Movable Joints)
   - गेंद और प्याला संधि (Ball and Socket Joint)
   - कब्जेदार संधि (Hing Joint)
   - कीलदार संधि (Pivot Joint)
   - काठीवार संधि (Suddhe Joint)
   - कोन्डिलायड संधि (Condoyloid Joint)
   - फिसलनदार संधि (Glind Joint)

7.1 रचना के अनुसार संधि के प्रकार

संधियों का कोई भी वर्गीकरण संतोषजनक नहीं है, फिर भी गति के आधार पर किया गया वर्गीकरण संतोषजनक कहा जा सकता है।

7.1.1 सूत्रक-संधि (Fibrous Joints) – अपने नाम के ही अनुरूप इस संधि में अस्थियां सूत्रों से निर्मित एक चादर द्वारा आपस में संबंधित रहती हैं तथा इसी के सहारे गति भी करती हैं।

7.1.2 उपास्थि-संधि (Cartilaginous Joint) – ये भी अपने नाम के अनुरूप संधि है। इसमें संधि स्थल पर उपस्थि की चादर लगी रहती है।

7.1.3 स्नेहक-संधि (Synovial Joints) – दोनों अस्थियों के मध्य स्नेहक तरल द्रव्य भरा होने के कारण इस संधि का नाम स्नेहक संधि पड़ा। इस तरल के कारण ही इसकी अस्थियां एक-दूसरे पर स्वतंत्र गति कर सकती हैं।

7.2 गति के अनुसार संधि के प्रकार

7.2.1 अचल संधियां (Synarthroser) – दो या दो से अधिक अस्थियां जब इस प्रकार जुड़ती हैं कि उनमें कोई गति नहीं हो सकती है। उस संधि को अचल संधि कहते हैं। इनमें उपास्थि नहीं होती है। जैसे—कपालीय संधियां (इस संधि में लकड़ी काटने वाली आरी के समान दांते दो अस्थियों में होते हैं। जुड़ते समय ये दांते आपस में फिट हो जाते हैं।)

7.2.2. अल्पचल संधियां (Amphiapthoses) – इनमें थोड़ी मात्रा में उपस्थि होती है तथा थोड़ी मात्रा में ही गति होती है। इसकी रचना सूत्रक संधि के समान होती है, जैसे—कशेरुक तथा पर्शुकाओं की संधियां।

7.2.3 अबाधचल संधियां (Diapthroses or Movable Joints)– इन संधियों में गति करने की क्षमता काफी अधिक होती है तथा ये गतियां कई दिशाओं में तथा कई प्रकार से हो सकती हैं। इनमें उपास्थि होती है। यहां एक अस्थि के छोर पर शुभ्र उपास्थि (Hayline) तथा दूसरी अस्थि पर तंतु उपास्थि (Fibre) की गद्दी रहती है। इसी कारण ये स्वतंत्र रूप से गति करती हैं। ये संधियां कण्डराओं (Tendons) से बंधी होती हैं। इन संधियों में स्नेहक तरल (Synovial Fluid) रिसता रहता है। इससे गति में सहायता मिलती है। ये संधि कई प्रकार की होती है, जिनमें मुख्य निम्न हैं—

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.2.3.1 गेंद और प्याला संधि (Ball and Socket Joint)– इस संधि में एक अस्थि का सिरा गोल तथा दूसरी अस्थि का सिरा प्याला के आकार का होता है। गोल सिरा प्याला के आकार में फंस जाता है। इस संधि में चारों दिशाओं में गति की जा सकती है। उदाहरण—कंधे व नितम्ब का जोड़।

7.2.3.2 कब्जेदार संधि (Hing Joint) – इसके जोड़ दरवाजों के जोड़ की तरह होते हैं। दरवाजों के जोड़ में कब्जे का प्रयोग किया जाता है, जिससे दरवाजे एक ही दिशा में खुलते हैं। इस तरह की संधि कोहनी, घुटने व उंगलियों के जोड़ में होती है।

7.2.3.3 कीलदार संधि (Pivot Joint)– कीलदार संधि, काठीदार संधि तथा कोन्डिलायड संधि—इन तीनों संधियों की बनावट थोड़े अन्तर सहित लगभग एक जैसी होती है। इन तीनों को धुराग्र संधि भी कहते हैं। पुराने समय में हर घर में एक पत्थर की हस्त चलित आटा चक्की होती थी। उसमें नीचे ऊपर दो पाट होते थे। नीचे का पाट स्थिर तथा ऊपर का पाट गतिशील होता था। नीचे के पाट में लकड़ी या लोहे का एक धुरा होता था, जो ऊपर के पाट के मध्य छिद्र में समा जाता था। ये संधियां भी इसी तरह की होती है। एक शिरा नुकीला (धुरी) होता है, जो दूसरी अस्थि के छिद्र में समा जाता है। उदाहरण—गर्दन, रीढ़ की हड्डी में प्रथम एवं द्वितीय जोड़ आदि।

7.2.3.4 काठीवार संधि (Suddle Joint)– पूरे शरीर में इस तरह का मात्र एक ही जोड़ है। अंगूठे का मेराकारपस तथा कलाईकी कारपस अस्थि के मध्य की संधि। इसी संधि के कारण अंगूठा चारों दिशाओं में घूम सकता है।

7.2.3.5 कोन्डिलायड संधि (Condoyloid Joint)– इसमें गति आगे व पीछे व गोलाकार हो पाती है। ये कुछ-कुछ कब्जेदार संधि की तरह होती हैं, जैसे—कलाई की संधि। ये आगे-पीछे एवं गोलाकार घूम सकती हैं।

7.2.3.6 फिसलनदार संधि (Glind Joint)– इस संधि में दो सपाट अस्थियां एक-दूसरे के ऊपर फिसलती हैं। ये आपस में उपास्थि से जुड़ी होती हैं, जैसे—कलाई तथा मेरुदण्ड की कशेरुकाएँ। इनमें गति बहुत ही सीमित होती है।

बोध-प्रश्न

प्रश्न-1. रचना के अनुसार संधि के कितने प्रकार हैं?

प्रश्न-2. कीलदार संधि के उदाहरण बताइये।

8.0 गठिया (Arthritis)

गठिया रोग मुख्यत: प्रोटीन चयापचय से संबंधित है। इस चयापचय की गड़बड़ी से रक्त में यूरिक एसिड आदि की मात्रा बढ़ जाती है। यह बढ़ी हुई मात्रा कैल्शियम के लिए नुकसानदायक होती है। आप जानते ही हैं कि सर्वाधिक कैल्शियम हमारी अस्थियों में होता है। जिससे वहां से कैल्शियम का क्षय होने लगता है। अस्थियां विशेषकर जोड़ों को काफी हानि पहुंचती हैं। इसे ही गठिया कहते हैं। यह आनुवांशिक व बुढ़ापे का रोग है। अस्थि-संधि के स्थान पर दर्द, सूजन एवं जकड़ आदि इस रोग की पहचान हैं। यह आम तौर पर 40-50 वर्ष की उम्र पर ही होता है लेकिन कभी-कभी कम उम्र के व्यक्तियों में भी दिखाई पड़ता है।

8.1 गठिया के लक्षण – गठिया के मुख्य लक्षण निम्न हैं—

1. शरीर के जोड़ों में दर्द।
2. जोड़ों में सूजन।
3. संधियां गर्म एवं सुर्ख।
4. संधियों का टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना।
5. कमजोरी।
6. थकान।
7. भूख की कमी।
8. रयूमेटिक ज्वर।
9. जीभ का सफेद हो जाना, कब्ज आदि।
10. सिरदर्द, चिड़चिड़ापन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.2 गठिया के कारण

गठिया के मुख्य कारण निम्न हैं—

1. संक्रमण।
2. ऑटो एलर्जेन नामक प्रोटीन का बनना।
3. यूरिक एसिड की मात्रा का बढ़ जाना।
4. आनुवांशिक।
5. सिनोवियल फ्लूड की कमी या विकृति।
6. कम श्रम करना।
7. लम्बे समय तक कब्ज की बीमारी का होना (बीमारी होने के बाद भी कब्ज की शिकायत हो सकती है।)

8.3 गठिया के प्रकार

गठिया मुख्यत: निम्न प्रकार का होता है—

1. रियूमेटायड (Rheumatoid)
2. ओस्टियो (Osteo)
3. गाउट (Gout)
4. एन्किलूजिंग स्पान्डिलाइटिस (Ankylosing Spondylitis).

8.3.1 रियूमेटायड (Rheumatoid)– यह रोग धीरे-धीरे प्रारम्भ होकर अचानक तेजी से उभरता है। गायब होते हैं तथा पुन: उभरते हैं। इस रोग की मुख्य पहचान शरीर के दायीं एवं बायीं दोनों तरफ रोग का होना है। साथ ही बुखार, वजन घटना, कमजोरी आदि लक्षण भी उभरते हैं। अधिकांशत: यह रोग 20 से 40 वर्ष की उम्र में होता है। पुरुषों की अपेक्षा यह रोग महिलाओं में ज्यादा पाया जाता है। रोगग्रस्त संधि की त्वचा मोटी तथा चमकदार हो जाती है। इस रोग के प्रारम्भ में सिनोवियल झिल्ली में सूजन होती है, जिससे सिनोवियल तरल सूखने लगता है। कुछ समय पश्चात् एक दानेदार ऊतक का निर्माण होता है, जो उपास्थि के अग्र भाग को नुकसान पहुंचा देता है। इस कारण उस संधि वाले भाग को मोड़ने में जकड़न एवं दर्द का अनुभव होता है।

8.3.2 ओस्टियो (Osteo)– यह विकृति अधिकांशत: उन जोड़ों में पाई जाती है, जिन पर शरीर का भार अधिक टिका रहता है। मुख्य रूप से कूल्हे, घुटने एवं मेरुदण्ड के जोड़ आदि। यह बीमारी पुरुष एवं महिलाओं में बराबर पाई जाती है। लगभग 40 वर्ष की उम्र के बाद यह बीमारी पाई जाती है। इसलिए इसे बुढ़ापे की बीमारी कहते हैं। इस बीमारी का मुख्य कारण उपास्थि के पैड में टूट-फूट है, जिसके कारण अस्थियों के सिरे फूल जाते हैं तथा इनसे जुड़े पेशियों के तंतुओं में भी सूजन हो जाती है।

8.3.3 गाउट (Gout) – तनाव ग्रस्त जीवनशैली, पर्यावरण प्रदूषण, तैलीय भोजन एवं जीन की खराबी इस रोग के प्रमुख कारण है। इस रोग में यूरिक एसिड जिसे मूत्र के द्वारा बाहर निकाल दिया जाता, यदि किन्हीं कारणों से पर्याप्त मात्रा में बाहर न निकल पाये तब उस स्थिति में ये सोडियम के साथ क्रिया करके सोडियम यूरेट नामक रासायनिक यौगिक का निर्माण कर लेता है, जो जोड़ों के रिक्त स्थानों में भर जाता है, जिससे वहां जकड़न सूजन और दर्द होने लगता है। यह रोग अधिकांशत: 35 वर्ष की उम्र के बाद होता है।

8.3.4 एन्किलूजिंग स्पान्डिलाइटिस (Ankylosing Spondylitis)– यह एक अलग प्रकार का जोड़ों का रोग है। इसकी प्रारम्भिक अवस्था में मेरुदण्ड (रीढ़) के निचले छोर तथा पैरों में दर्द उठता है, जो धीरे-धीरे कूल्हों तथा दोनों कंधों में फैलता दिखाई देता है। कुछ समय बाद रीढ़ का लचीलापन गायब हो जाता है तथा उठते-बैठते दर्द होता है। रोगी अपनी रीढ़ को सीधा नहीं कर पाता है, जिसके फलस्वरूप उसमें सदा के लिए एक झुकाव-सा बन जाता है।

8.4 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन

1. रोगी को उष्ण चिकित्सा दी जानी चाहिए, जिसके अन्तर्गत गर्म स्नान, गर्म पट्टी, गर्म सेक और पैराफिन वैक्स के लेप का प्रयोग करते हैं। इससे सूजन व दर्द दोनों में आराम मिलता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. गठिया के रोगियों को शीत चिकित्सा भी लाभकारी होती है। जिस जोड़ पर दर्द रहता हो, वहां सूती कपड़े से बनी थैली में बर्फ भरकर, उसकी पट्टी बनाकर बांधने से लाभ मिलता है। एक साथ बारी-बारी से गर्म-शीत सेक करने से सूजन एवं दर्द में आराम मिलता है।

3. जोड़ों पर धीरे-धीरे दबाव देते हुए गोलगोल घुमाकर मालिश करने से भी जोड़ों का दर्द घटता है तथा उनकी जकड़न दूर होती है।

गठिया की प्रेक्षा-चिकित्सा

आसन—पवनमुक्तासन, पश्चिमोत्तानासन, सम्पूर्ण शरीर की यौगिक क्रियाएँ
प्राणायाम—रोगग्रस्त स्थान पर ध्यान केन्द्रित कर सूक्ष्म भस्त्रिका, दीर्घश्वास अथवा प्राण संचार का प्रयोग।
प्रेक्षा—दर्द के स्थान की प्रेक्षा—10 मिनट।
अनुप्रेक्षा—'मेरे गठिया का दर्द समाप्त हो रहा है, मेरे जोड़ स्वस्थ हो रहे हैं।'—15 मिनिट
मंत्र—'लां लां लां लां' का दीर्घ उच्चारण फुफ्फुस पर—10 मिनट।
तप—चीनी, मिठाई तथा खट्टे पदार्थों का वर्जन।

9.0 गर्दन का दर्द (Cervical Pain)

इस रोग का मुख्य कारण कशेरुकाओं की सूजन, उनमें संक्रमण, संबंधित पेशियों में विकृति पूर्ण तनाव एवं खिंचाव आदि है। इन कारणों से गर्दन, कंधा तथा हाथों में दर्द, झनझनाहट, गर्दन पीछे मोड़ते समय चक्कर आना आदि लक्षण उभरने लगते हैं। प्रारम्भ में यदि इसका उपचार न किया जाए तो रोग के बढ़ने पर गर्दन तथा कटि क्षेत्र के नाड़ी पूलों पर दबाव बढ़ने लगता है, जिससे हाथ-पैरों में सुन्नपन जैसे लक्षण भी उभरने लगते हैं।

गर्दन दर्द की मुख्य बीमारी—सरवाइकल स्पोण्डिलाइटिस (Cervical Spondilitis) है। सरवाइकल ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है—गर्दन से संबंधित तथा स्पॉण्डिलाइटिस का अर्थ है—कशेरुका की सूजन या संक्रमण। इस रोग में गर्दन तथा सिर के पिछले भाग में दर्द होता है। गर्दन की मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं। इसका दुष्प्रभाव आंखों पर भी पड़ता है। यह रोग मुख्यत: ग्रीवा की अस्थियों का आगे या पीछे खिसक जाने या एक-दूसरे के ऊपर चढ़ जाने से होता है। कई बार रीढ़ अस्थियों के मध्य की उपास्थि के पिस जाने या वहां पर कैल्शियम के जमा होने से भी होता है।

9.1 लक्षण

गर्दन दर्द की बीमारी में कई लक्षण उभरकर सामने आते हैं लेकिन सभी लक्षणों का प्रत्येक व्यक्ति में होना आवश्यक नहीं है। कई बार एक या दो लक्षण ही दिखाई देते हैं लेकिन बीमारी धीरे-धीरे गंभीर स्थिति में पहुंच जाती है। इस रोग के मुख्य लक्षण निम्न हैं—

1. गर्दन में दर्द होना,
2. गर्दन पीछे ले जाते समय चक्कर आना,
3. गर्दन को घुमाने में दर्द,
4. कन्धा एवं हाथों में दर्द,
5. कन्धा तथा हाथों में झनझनाहट,
6. सिर के पिछले भाग में दर्द।

9.2 कारण

1. लम्बे समय तक बिना विश्राम किये मेज पर लिखना-पढ़ना या अन्य कार्य करना।
2. अचानक सर्दी लगना।
3. किसी भी प्रकार से गर्दन में झटका लग जाना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. लम्बी-लम्बी यात्राएँ करना (सीटों पर बैठकर)।
5. एक ही स्थिति में लम्बे समय तक कार्य करना।
6. ज्यादा मोटा तकिया लगाकर सोना।
7. ऊँची एडी के जूते, चप्पल या सेण्डिल पहनना।

9.3 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन

1. रोग हो जाने पर कुछ समय के लिए गर्दन का पट्टा लगाकर रखें।
2. यात्रा आदि के समय गर्दन का पट्टा लगाएँ, दर्द ठीक हो जाने पर हटा दें।
3. श्रम करने के साथ-साथ आराम भी करें। बैठने के लिए सीधी कुर्सी, लैटने के लिए सख्त पाटा का प्रयोग करें।
4. मोटे गद्दे का प्रयोग एवं मोटे तकिये का प्रयोग किसी भी स्थिति में न करें।
5. रोगी को स्थिति के अनुसार गर्म व ठण्डा सेक दें।

गठिया की प्रेक्षा-चिकित्सा

आसन—गर्दन की क्रियाएँ—भुजंगासन, शलभासन, पश्चिमोत्तानासन, उष्ट्रासन।
प्राणायाम—सूर्यभेदी व दीर्घ रेचन का अभ्यास।
प्रेक्षा—गर्दन तथा उसमें होने वाली वेदना की प्रेक्षा—10 मिनट।
अनुप्रेक्षा—गर्दन की स्वस्थता का सुझाव—'मेरी गर्दन स्वस्थ हो रही है'—15 मिनट
जप—'ह्राँ'—10 मिनट।
तप—चीनी और चिकनाई का वर्जन।

11.0 सारांश

अस्थियों के प्रकार (आकृति के अनुसार)

1. लम्बी अस्थियां (Long Bone)
2. छोटी अस्थियां (Short Bone)
3. चपटी अस्थियां (Flat Bone)
4. अनियमित अस्थियां (Irregular Bone)
5. स्यानुजात अस्थियां (Sesamoid Bone)

अस्थि संधि के प्रकार

रचना के अनुसार—

1. सूत्रक-संधि (Fibrous Joints)
2. उपस्थित-संधि (Cartilaginous Joint)
3. स्नेहक-संधि (Synovial Joints)

गति के अनुसार—

1. अचल संधियां (Synarthroser)
2. अल्पचल संधियां (Amphiapthoses)
3. अबाधचल संधियां (Diapthroses or Movable Joints)—
   (1) गेंद और प्याला संधि (Ball and Socket Joint) (2) कब्जेदार संधि (Hing Joint)
   (3) कीलदार संधि (Pivot Joint) (4) काठीवार संधि (Suddhe Joint)
   (5) कोन्डिलायड संधि (Condoyloid Joint) (6) फिसलनदार संधि (Glind Joint)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गठिया

यह प्रोटीन चयापचय से संबंधित रोग है। इसमें जोड़ों में दर्द होता है। यह रोग मुख्यत: बुढ़ापे की बीमारी है।

लक्षण—जोड़ों में दर्द, सूजन, सूर्ख एवं लाल, कमजोरी, थकान, सिरदर्द, चिड़चिड़ापन आदि।

कारण—संक्रमण, ऑटो एलर्जेन नामक प्रोटीन का बनना, यूरिक एसिड की मात्रा का बढ़ जाना, आनुवांशिक, सिनोविल फ्लूड की कमी या विकृति, कम श्रम करना आदि।

प्रकार—

1. रियूमेटायड (Rheumatoid)—अचानक तेजी से उभरता है। पुरुषों से अधिक महिलाओं में पाया जाता है। यह रोग मुख्यत: 20 से 40 वर्ष की अवस्था में होता है।

2. ओस्टियो (Osteo)—जिन जोड़ों पर शरीर का भार अधिक टिका होता है, उनमें यह रोग पाया जाता है। मुख्यत: कुल्हे, घुटने एवं मेरुदण्ड आदि। यह रोग मुख्यत: 40 वर्ष की उम्र के पश्चात् होता है।

3. गाउट (Gout)—तनावग्रस्त जीवनशैली इस रोग का मुख्य कारण है। यह रोग मुख्य रूप से यूरिक एसिड के शरीर से बाहर न निकल पाने के कारण होता है। यह रोग होने की उम्र लगभग 35 वर्ष के बाद है।

4. एन्किलूजिंग स्पान्डिलाइटिस (Ankylosing Spondylitis)—इसकी प्रारम्भिक अवस्था में मेरुदण्ड (रीढ़) के निचले छोर तथा पैरों में दर्द उठता है, जो धीरे-धीरे कूल्हों तथा दोनों कंधों में फैलता दिखाई देता है।

गर्दन का दर्द

कशेरुकाओं की सूजन, संक्रमण, पेशियों की विकृतिपूर्ण खींचाव आदि के कारण यह रोग होता है। इस रोग का दुष्प्रभाव आंखों पर भी पड़ता है।

लक्षण—गर्दन में दर्द होना, गर्दन पीछे ले जाते समय चक्कर आना, गर्दन को घुमाने में दर्द, कन्धा एवं हाथों में दर्द, कन्धा तथा हाथों में झनझनाहट, सिर के पिछले भाग में दर्द।

कारण—बिना विश्राम किये लम्बे समय तक मेज पर लिखना-पढ़ना या अन्य कार्य करना, अचानक सर्दी लगना, गर्दन में झटका लग जाना, लम्बी-लम्बी यात्राएँ करना, एक ही स्थिति में लम्बे समय तक कार्य करना आदि।

12.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अस्थि संधि को विस्तार से समझाइये।
2. गठिया के कारण, लक्षण एवं चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अस्थियों के कार्य लिखें।
2. अस्थि संगठन का परिचय दीजिए।
3. गर्दन दर्द के कारण लिखिए।
4. गर्दन दर्द का उपचार बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रेडियस अस्थि कहां होती है?
2. वक्षास्थि की लम्बाई कितनी होती है?
3. अल्पचल संधि के उदाहरण बताइये।
4. उंगलियों के जोड़ में किस प्रकार की संधि होती है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–3 शारीरिक तंत्रों का रचनात्मक–कार्यात्मक परिचय, संबंधित रोग एवं रोगों का प्रबन्धन

पाठ–ख

पेशी–तंत्र—परिचय पेशी तंत्र के विकार—पेशीय डिस्ट्राफी जीवन–विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

प्रिय विद्यार्थियों,

पिछले पाठ में आपने अस्थि तंत्र एवं उस तंत्र से संबंधित रोगों के विषय में अध्ययन किया। अभी तक आपने अपना आधा कोर्स बहुत ही परिश्रम व लगन से पूरा किया है। अब शेष आधे भाग में भी इसी प्रकार परिश्रम व लगन को जारी रखना है। हम इस पाठ में पेशी तंत्र तथा पेशी तंत्र के विकार के संबंध में चर्चा करेंगे।

हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं—

उद्देश्य

1. पेशियों की रचना की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. पेशियों की गति को समझ सकेंगे।
3. पेशियों के प्रकार के विषय में आपको ज्ञान होगा।
4. पेशी डिस्ट्राफी जैसी भयानक बीमारी के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

विषय–वस्तु

1.0 पेशियों की रचना
2.0 पेशियों का महत्त्व
3.0 पेशियों के प्रकार
    3.1 ऐच्छिक पेशी
    3.2 अनैच्छिक पेशी
    3.3 हृदय पेशी
4.0 पेशियों की गति
    4.1 आकुंचन
    4.2 प्रसारण
    4.3 अपवर्तन
    4.4 अभिवर्तन
    4.5 घूर्णन
    4.6 वलय
5.0 पेशियों की क्रियाएँ
    5.1 भौतिक क्रियाएँ
        5.1.1 यांत्रिक परिवर्तन
        5.1.2 ताप क्रिया
        5.1.3 रचना परिवर्तन
        5.1.4 विद्युत परिवर्तन
    5.2 रासायनिक क्रियाएँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.0 पेशी स्फूर्ति

7.0 मानव शरीर की महत्त्वपूर्ण पेशियां

7.1 सिर एवं मुँह की पेशियाँ

7.2 ग्रीवा की पेशियाँ

7.3 वक्ष की पेशियाँ

7.4 उदर की पेशियाँ

7.5 पीठ की पेशियाँ

7.6 ऊर्ध्वशाखा की पेशियाँ

7.7 अधोशाखा की पेशियाँ

8.0 पेशी डिस्ट्राफी

8.1 प्रकार

8.1.1 ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्राफी

8.1.2 डिस्ट्रोफिया मायोटानिया

8.1.3 डिस्ट्रोफिया एडिपोसो मेनिटेलिस

8.1.4 मायोटोनिया

8.1.5 आंकुलोफराइनजेन

8.1.6 फेसियो स्केपुलो ह्यूमेरल

8.2 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

8.2.1 आहार चिकित्सा

8.2.2 प्राकृतिक चिकित्सा

8.2.3 प्रेक्षा चिकित्सा

9.0 स्लिपडिस्क (कंकाल पेशीय रोग)

9.1 कारण

9.2 लक्षण

9.3 जीवन-विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

10.0 सारांश

11.0 प्रश्नावली

पेशी तंत्र (Muscular System)

यदि त्वचा को हटा दिया जाए तो पूरा शरीर लाल मांस के रूप में दिखाई देगा, यह मांस ही पेशी है। इन्हें मांसपेशी भी कहते हैं। इनका लाल रंग रक्त के कारण होता है। ये हमारे अस्थि संस्थान के आवरण भी हैं। प्रत्येक पेशी का एक अस्थि पर मूलबंध होता है तथा दूसरी पर निवेश होता है। इस प्रकार यह जोड़ को आच्छादित करती है।

1.0 पेशियों की रचना

पेशियां 75% जल तथा 25% प्रोटीन से बनी होती है। पोटेशियम व गंधक भी अल्प मात्रा में पाया जाता है। शरीर के भार का 42% भाग पेशियों का ही होता है। हमारे शरीर में लगभग 600 मांसपेशियां होती हैं। पेशी को लम्बाई में चीरने पर उसमें अनेक पेशी तन्तु दिखाई देते हैं। एक पेशी में लाखों तंतु होते हैं तथा प्रत्येक तन्तु लगभग 2 से.मी. लम्बा होता है। ये आपस में संयोजक वस्तु से जुड़े रहने के कारण गुच्छ के समान दिखाई देते हैं। गुच्छ पर आवरण भी चढ़ा रहता है।

सूक्ष्म तन्तु, तन्तुक (Fibril) कहलाता है। इनमें केन्द्रक तथा जीव द्रव्य होता है तथा एक तंत्रिका तन्तुक भी रहता है, जो भीतर अनेक भागों में बंट जाता है। तंत्रिका तन्तुक के द्वारा ही पेशी का संचालन व नियंत्रण होता है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.0 पेशियों का महत्त्व

पेशियों के कुछ मुख्य महत्त्व निम्न हैं—

- ❖ ये हमारी शक्ति का भंडार हैं।
- ❖ अस्थियों की सुरक्षा करती हैं।
- ❖ शरीर को दृढ़ और सुगठित बनाती है।
- ❖ पेशियों के कारण ही अस्थियों में गति होती है, जिससे हमारे शरीर में चलना, मुड़ना आदि गति होती है।
- ❖ रासायनिक क्रिया के द्वारा ऊर्जा तथा उष्मा को उत्पन्न करती है।
- ❖ पेशियां शरीर के तापक्रम को बनाए रखने में सहायक होती है।

3.0 पेशियों के प्रकार

कार्य के अनुसार पेशियों के तीन प्रकार होते हैं—

1. ऐच्छिक पेशी (Voluntary Muscles),
2. अनैच्छिक पेशी (Involuntary Muscles),
3. हृदय पेशी (Cardiac Muscles).

3.1 ऐच्छिक पेशी (Voluntary Muscles) – ये पेशियां हमारे मस्तिष्क से संबंधित रहती हैं तथा हमारी इच्छानुसार कार्य करती हैं। ये अस्थियों पर लगी रहती हैं। इनके ही संकुचन से अस्थियों में गति उत्पन्न होती है, जिससे हमारा चलना-फिरना, हिलना, अंगों का मुड़ना, अंगों का घूमना आदि क्रियाएँ होती हैं। इन पेशियों के उक्त कार्यों की वजह से ही इन्हें **कंकाल पेशी (Skeletal Muscles)** भी कहते हैं। ये अधिकांशत: शरीर की ऊपरी सतह पर रहती हैं।

प्रत्येक ऐच्छिक पेशी का एक अस्थि पर मूलबंध तथा दूसरी पर निवेश होता है। ये पेशियां अस्थि संधि को आच्छादित करती हैं अथवा उसकी कण्डरा संधि पर से होती हुई उसके नीचे की अस्थि पर पहुंचकर उसके सिरे से जुड़ी रहती है।

ये पेशियां छोटी, बड़ी, पतली, मोटी विभिन्न आकार की होती हैं। इनमें आड़ी धारियां होती हैं **इसलिए इन्हें रेखित पेशी (Striped Muscles) भी कहते हैं।**

3.2 अनैच्छिक पेशी (Involuntary Muscles)– ये पेशियां हमारी इच्छा के अधीन नहीं होती है। इन पर हमारा कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण भी नहीं होता है। ये स्वत: संचालित हैं। ये अस्थियों से भी जुड़ी हुई नहीं होती है। रक्त कोशिकाएँ नहीं होने से इनका रंग श्वेत रहता है। ये चिकनी तथा धारीविहीन होती हैं **इसलिए इन्हें आरेखित पेशी (Unstriped Muscles) भी कहते हैं।** उदाहरण—आमाशय, छोटी आंत, बड़ी आंत, फेफड़े, अन्त:स्रावी ग्रंथियां आदि।

3.3 हृदय पेशी (Cardiac Muscles) – इन पेशियों की रचना ऐच्छिक पेशी के समान है लेकिन कार्य की दृष्टि से ये अनैच्छिक पेशी के समान हैं। ये पेशियां निरन्तर संकुचित एवं प्रसारित होती रहती हैं। इन पेशियों में शाखाएँ निकलती हैं, जो पास की कोशिका की शाखा से आपस में जुड़ी रहती हैं। हृदय पेशियों के सिकुड़ने से हृदय का रक्त बाहर जाता है तथा जैसे ही शिथिल अवस्था में आती है। फुफ्फुसीय शिरा के माध्यम से रक्त हृदय के अन्दर पहुंच जाता है।

4.0 पेशियों की गति

पेशियों की क्रियाओं के कारण ही हमारे शरीर में गति होती है, जिससे हम भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य सुचारू रूप से कर पाते हैं। ये गतियां मुख्य रूप से निम्न होती हैं—

1. आकुंचन (Flexion),
2. प्रसारण (Extension),
3. अपवर्तन (Abduction),
4. अभिवर्तन (Adduction),
5. घूर्णन (Rotation),
6. वलय (Circular)।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.1 आकुंचन (Flexion)– पेशियों की क्रियाओं के कारण जब अस्थि-संधि मुड़ जाती है तब पेशियों की इस गति को आकुंचन कहते हैं, जैसे—कोहनी से हाथ का मुड़ना आदि।

4.2 प्रसारण (Extension)– पेशी संकुंचन के बाद प्रसरण क्रिया होती है, जिसके कारण मुड़े हुए अंग पुनः पूर्व अवस्था में आ जाते हैं। ऐसी पेशी गति को प्रसारण गति कहते हैं, जैसे—कोहनी से मुड़े हुए हाथ का सीधा हो जाना आदि।

4.3 अपवर्तन (Abduction) – शरीर की मध्य रेखा से अंगों को दूर ले जाने वाली पेशियों की गति को अपवर्तन गति कहते हैं, जैसे—प्रगण्ड (Upper Arm) को पार्श्व भाग (Laterol) में वक्ष से दूर, बगल से उठाकर ले जाते हैं।

4.4 अभिवर्तन (Adduction) – शरीर को मध्य रेखा से दूर ले जाये गये भाग को पुनः वापस लाने के लिए पेशियों की जो गति होती है, उसे अभिवर्तन कहते हैं, जैसे—बगल से उठे हुए हाथ को वापिस लाना आदि।

4.5 घूर्णन (Rotation) – इस गति में अंगों को चारों तरफ गोलाकार घुमाया जा सकता है, जैसे—हाथों को कंधे से गोलाकार घुमाना, गर्दन को गोलाकार घुमाना आदि।

4.6 वलय (Circular) – शरीर में कुछ छिद्र होते हैं, जिन्हें हम पेशियों के द्वारा खोल व बन्द कर सकते हैं। इस खोलने व बंद करने की गति को वलय गति कहते हैं। जैसे—आंख व मुंह की पेशी गति आदि।

5.0 पेशियों की क्रियाएँ

हमारी पेशियों में दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं—भौतिक एवं रासायनिक।

5.1 भौतिक क्रियाएँ – पेशियों में संकुचन व प्रसारण का गुण होता है। संकुचन के समय पेशी की लम्बाई घट जाती है तथा मोटाई बढ़ जाती है। प्रसारण के समय पूर्व स्थिति में आ जाती है। पेशियों में संकुचन एवं प्रसारण की क्रिया तंत्रिकाओं के माध्यम से होती है। यह परिवर्तन निम्न क्रियाओं से होता है—

यांत्रिक परिवर्तन (Mechanical Change) ताप क्रिया (Thermal Action)

रचना परिवर्तन (Structural Change) विद्युत परिवर्तन (Electrical Change)।

5.1.1 यांत्रिक परिवर्तन (Mechanical Change)– संकुचन के समय पेशियों में तनाव उत्पन्न हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। यह विभिन्न स्थितियों पर निर्भर है।

5.1.2 ताप क्रिया (Thermal Action)– पेशियों से ऊष्मा विभिन्न अवस्थाओं में मुक्त होती है, जैसे—तनाव बनाए रखते समय, संकुचन के समय, शिथिलन काल आदि में।

5.1.3 रचना परिवर्तन (Structural Change)– जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि संकुचन के समय पेशियां छोटी व मोटी हो जाती हैं लेकिन इस परिवर्तन का आयतन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

5.1.4 विद्युत परिवर्तन (Electrical Change)– पेशियों में उत्तेजनाएँ मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से आती हैं। ये उत्तेजनाएँ तंत्रिकाओं के माध्यम से आती हैं। उत्तेजनाओं की स्थिति में पेशी में उपास्थि तंत्रिका में विद्युत परिवर्तन होता है।

5.2 रासायनिक क्रियाएँ

ग्लुकोज एवं ऑक्सीजन के संयोग से ऊर्जा बनती है, जिससे हमारी पेशियां कार्य करती हैं। इस क्रिया में ग्लुकोज का ऑक्सीकरण होता है, फलस्वरूप कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा जल बनता है, जिसे प्रश्वास के माध्यम से बाहर निकाल देते हैं। कार्बन-डाई-ऑक्साइड बनने से पूर्व दुग्धाम्ल बनता है, जो पशियों में थकावट पैदा करता है। विश्राम करने से या हल्का व्यायाम करने से दुग्धाम्ल शीघ्र कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा जल में परिवर्तित हो जाता है।

पेशी की गति के कारण ऊतकों में टूट-फूट होती है, जो हमारे लिए विषैले होते हैं, ऐसी स्थिति में रक्त का अमीनो-अम्ल, पेशीय अमीनो-अम्ल में परिवर्तित हो जाता है, जो अमोनिया के रूप में मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6.0 पेशी स्फूर्ति (समभाव) (Muscular Tone)

संकुचन व प्रसारण के गुण पेशी में पाये जाते हैं। अधिक समय तक कोई भी पेशी संकुचित या प्रसारण अवस्था में नहीं ठहर सकती है अत: संकुचन व प्रसारण का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। विश्राम की अवस्था में संकुचन पेशी तथा प्रसारण पेशी दोनों में थोड़ा तनाव रहता है। इसे ही पेशी समभाव कहते हैं। परिश्रम से, योगासनों से पेशियों में विश्राम होता है, साथ ही साथ इनकी लोच भी बढ़ती है।

7.0 मानव शरीर की महत्त्वपूर्ण पेशियाँ

शरीर के अलग-अलग भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की पेशियां रहती है, जो विभिन्न प्रकार की गति करती है। इनमें से कुछ पेशियां कार्य आदि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, जो निम्न हैं—

1. सिर एवं मुँह की पेशियाँ,
2. ग्रीवा की पेशियाँ,
3. वक्ष की पेशियाँ,
4. उदर की पेशियाँ,
5. पीठ की पेशियाँ,
6. ऊर्ध्वशाखा की पेशियाँ,
7. अधोशाखा की पेशियाँ।

7.1 सिर एवं मुंह की पेशियाँ

हमारे चेहरे से विभिन्न प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, जैसे—सुख-दु:ख, दर्द, हर्ष, क्रोध आदि। ये सभी भाव हमारी साठ पेशियों के मिले-जुले प्रयास का ही फल है।

क्रोध के समय हमारे चेहरे की लगभग पचास पेशियां कार्य करती हैं, वहीं मुस्कुराने में मात्र तेरह पेशियां ही कार्य करती हैं। इसलिए अधिक श्रम के कारण क्रोध में थकान का अनुभव शीघ्र होने लगता है, जबकि मुस्कुराने में थकान का अनुभव नहीं होता है **इसलिए सदा प्रसन्न एवं मुस्कुराते रहना चाहिए। इससे तनाव व थकान दूर होती है।**

भाव उत्पन्न करने वाली पेशियां सिर और चेहरे की त्वचा से लगी रहती है। इसलिए यह त्वचा के भागों को विभिन्न दिशाओं में खींच कर विभिन्न प्रकार के भावों की मुखाकृतियों बनाती है।

नेत्र के खुलने व बन्द होने के लिए नेत्र के चारों तरफ गोलाकार पेशियां होती हैं, जो नेत्र को खोलती तथा बन्द करती हैं। नेत्र गोलक को घुमाने के लिए नेत्र मंडलिका (Orbicularis Oculi) नामक छोटी-छोटी पेशियां होती हैं, जिनके मूल, नेत्र गुहा की अस्थि पर तथा निवेश वाला किनारा नेत्र गोलक पर मढ़े संयोजी ऊतक से जुड़ी होती है, इनसे आंख को चारों तरफ घुमाया जा सकता है।

हमारे मुख का छिद्र भी उपरोक्त प्रकार की पेशियों से घिरा रहता है, जो जबड़ों को आहार को फाड़ने, काटने, पीसने आदि में सहयोग करती हैं। इन पेशियों को वक्त्र मंडलिका (Orbicularis Oris) कहा जाता है।

7.2 ग्रीवा की पेशियाँ

हमारे गर्दन के सामने, पार्श्व तथा पीछे के भाग पर दोनों तरफ अनेक पेशियाँ उपस्थित रहती हैं। इन पेशियों के द्वारा हम अपने सिर को चारों तरफ सरलता से मोड़ एवं घुमा सकते हैं।

7.3 वक्ष की पेशियाँ

वक्ष पर वृहत् उरच्छदा (Pectoralis Major) नामक एक वृहत् पेशी होती है तथा इसके नीचे इसी आकार की एक और पेशी होती है, जिसे लघु उरच्छदा (Pectoralis Minor) कहते हैं। इन दोनों पेशियों के नीचे पसलियों के मध्य पर्शुकांतर पेशियां (Inter Costales Muscles) होती है। ये श्वसन कार्य में सहयोग करती (देखें श्वसन तंत्र) हैं। वृहत् उरच्छदा पेशी के कारण ही व्यायाम करने वाले व्यक्तियों के सीने पर उभार बनते हैं।

7.4 उदर की पेशियाँ

उदर के चारों तरफ दृढ़ एवं मजबूत पेशियां होती हैं, जो उदर गुहा के अंगों को सुरक्षा प्रदान करती हैं। ये उदर की भित्ती को बनाती हैं। आप जानते हैं कि उदर में कोई अस्थि नहीं होती है। मात्र पीछे की तरफ स्तम्भ के रूप में कशेरुकाएँ होती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

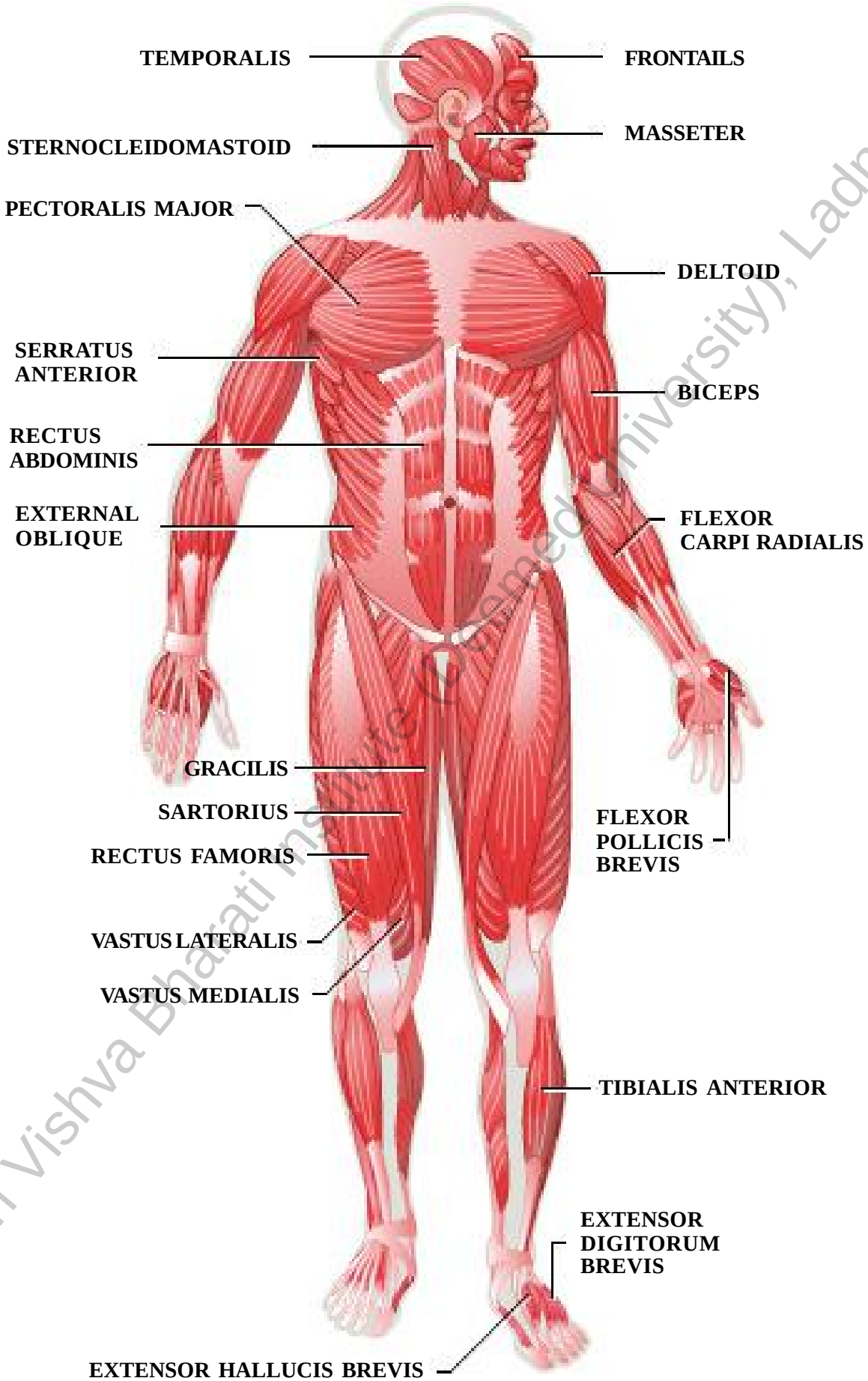

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

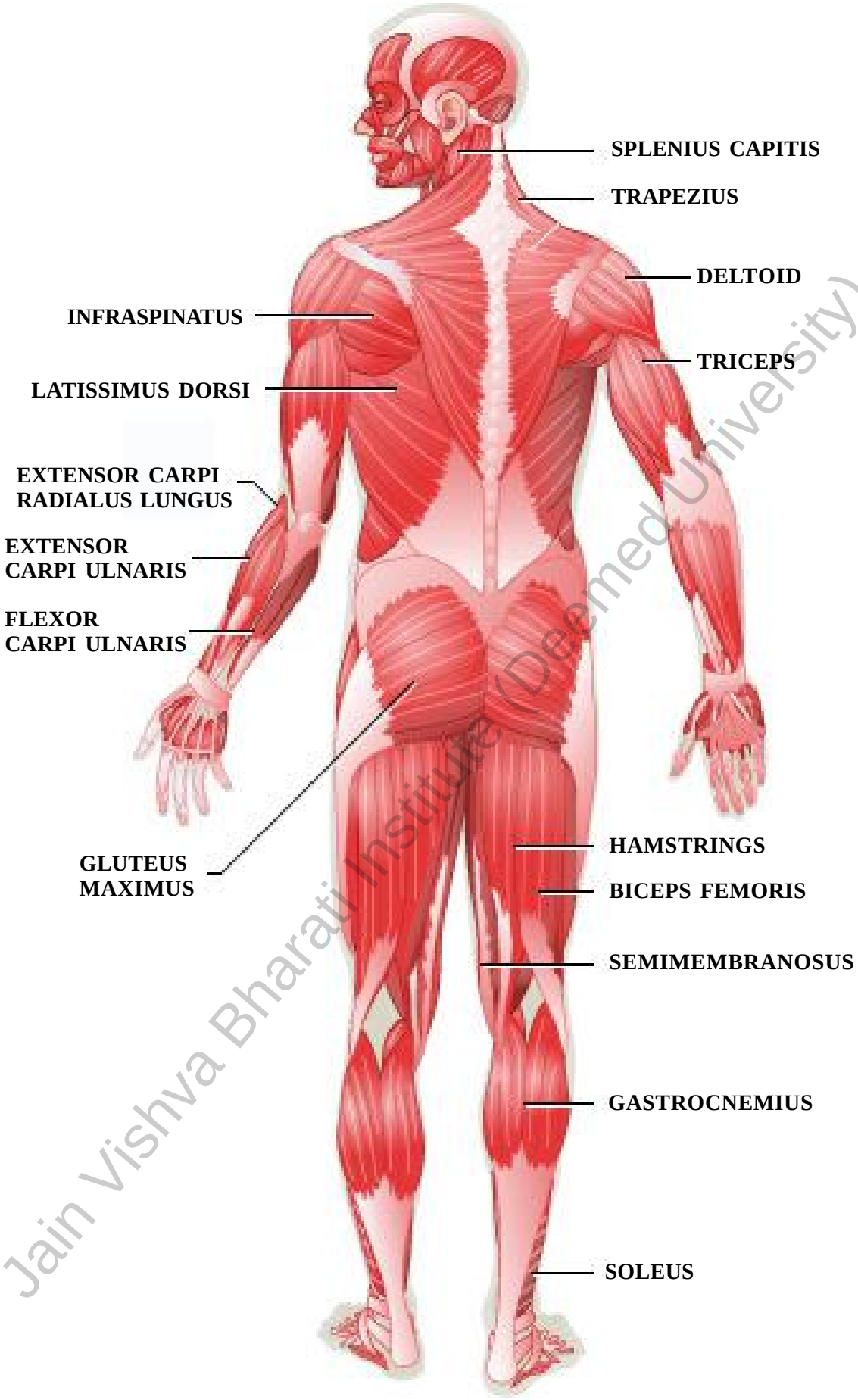

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उदर में सामने की ओर समोदरी पेशी (Rectus-abdominis) रहती है, जो लम्बी तथा मोटी होती है। खांसने, छीकने, मल-मूत्र त्याग के समय व अन्य कारणों से उदर गुहा में जो संकुचन तथा प्रसरण होता है, वह समोदरी पेशी के ऊपर की ओर तीन विस्तृत पेशियों के द्वारा होता है। ये तीन विस्तृत पेशियां ऊपर से नीचे की ओर क्रमशः निम्न हैं—

(i) तिर्यक बाह्य औदरी (Obliqus Externu Abdominis)
(ii) तिर्यक आभ्यान्तरी औदरी (Obliqus Internu Abdominis)
(iii) अनुप्रस्था औदरी (Transkers Abdominis).

7.5 पीठ की पेशियाँ

ये पेशियां सिर के नीचे से प्रारम्भ होकर कमर तक पूरी पीठ में अनेक दृढ़ पेशियों के रूप में कई स्तरों में रहती हैं। इनमें से कुछ एक कशेरुक से, दूसरे कशेरुक में लगी रहती हैं, कुछ कशेरुक के पीछे दाएँ-बाएँ होती हैं। ये रीढ़ को दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे घुमाने, झुकाने तथा सीधा करने में सहायता प्रदान करती हैं।

उक्त पेशियों के ऊपर निम्न दो बड़ी तथा विस्तृत पेशियां होती हैं—

(i) पृष्ठच्छदा (Trapezium),
(ii) कटिपार्श्वच्छदा (Latissimus Dorsi).

पृष्ठच्छदा प्रथम कशेरुक से लेकर बारहवें कशेरुकों के प्रवर्धों से निकलती है।

कटिपार्श्वच्छदा नितंबास्थि तथा कटिप्रांत की कशेरुक एवं वक्ष प्रांत की निचली छः कशेरुकाओं के कंटकों से निकलती हैं तथा ऊपर जाकर बाहु की प्रगंडास्थि से जुड़ी रहती हैं। इन्हीं पेशियों की सहायता से हम अपने बाहु को आगे-पीछे उठा एवं घुमा सकते हैं।

7.6 ऊर्ध्वशाखा की पेशियाँ

ये पेशियाँ संधियों के चारों ओर लगी रहती हैं। इनमें से स्कंध पर अंसच्छद-पेशी (Deltoid-Muscle) समस्त स्कंध को ढके रहती है। ये अपने संकुचन के द्वारा बाहों को ऊपर उठाती हैं। कोहनी को मोड़ने पर बाहु के सामने एक मोटा पिण्ड बन जाता है। व्यायाम करने वाले व्यक्तियों में और भी अधिक मोटा होता है। यह द्विशिरिस्का पेशी (Biceps) के संकुचन से बनता है, जो कोहनी मोड़ने में सहायता करती है। द्विशिरिस्का के विपरीत कार्य करने वाली पेशी को त्रिशिरिस्का (Triceps) कहते हैं, जो कोहनी के पीछे की ओर बाहु में होती है। इसके प्रसारण से हाथ सीधा होता है।

उंगलियों तथा कलाई आदि को मोड़ने के लिए निम्न पेशियां कार्य करती हैं—

(i) बहिर्मणिबन्ध आकुंचनी (Flexor Carpi Radialis)
(ii) अंतर्मणिबन्ध आकुंचनी (Flexor Carpi Ulnaris)
(iii) आकुंचनी उपबन्ध (Flexor Retinaculum)
(iv) प्रगंड प्रकोष्ठिकी (Brachioradialis)

7.7 अधोशखा की पेशियां

जांघ को आगे व पीछे की ओर उठाने के लिए नितम्ब में अनेक दृढ़ पेशियां रहती हैं, जो श्रोणि की भिन्न-भिन्न अस्थियों से निकलकर ऊर्ध्वास्थि पर लग जाती हैं। इनमें से निम्न तीन प्रमुख हैं—

(i) वृहत् अभिमध्यस्था (Vastus Medialis),
(ii) वृहत् पार्श्वस्था (Vastus Lateralis),
(iii) वृहत् मध्यस्था (Vastus Intermedius).

ऊर्ध्वस्थि के निचले सिरे से टांग की प्रसारक तथा आकुंचन पेशियां निकलती हैं, जो टांग की अस्थियों को ढकती हुई पांव की अस्थियों से जुड़ जाती हैं। पांव की उंगलियों में गति इन्हीं पेशियों की सहायता से होती है। ये पेशियां मोटी होती हैं तथा पीछे की पिण्डली का निर्माण करती है। इनमें निम्न दो प्रमुख हैं—

(i) परापिंडिका (Gastroenemius),
(ii) अनुपरापिंडिका (Soleus).

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

टांग की अन्य मुख्य पेशियां निम्न हैं–

(i) महानितंबिका (Gluteus Maximus) (ii) अभिवर्तनी पेशियाँ (Adductor Muscles)
(iii) पार्श्व हैम्स्ट्रींग (Lateral Hamstring) (iv) अभिमध्य हैम्स्ट्रींग (Medial Hamstring).

बोध–प्रश्न

प्रश्न–1. पेशियों का महत्त्व बताइये।
प्रश्न–2. हृदय पेशी के विषय में लिखिए।
प्रश्न–3. वक्ष की पेशियों के विषय में बताइये।

8.0 पेशीय डिस्ट्राफी

पेशीय डिस्ट्राफी उन रोगों में से एक है, जिसकी चिकित्सा आज का विज्ञान खोज नहीं सका है। इस रोग में रोगी धीरे–धीरे अपने आप को मृत्यु के मुंह में जाते हुए देखता है। माता–पिता भी किसी चमत्कार की प्रतीक्षा में अपनी संतान के शरीर को धीरे–धीरे घुलता एवं लुंज–पुंज होते हुए देखते रह जाते हैं लेकिन अंत में मात्र मृत्यु.....। पेशीय डिस्ट्राफी को चिकित्सा के क्षेत्र में मायोपैथी के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग जब पैतृक कारणों से होता है, तब इसे पेशीय डिस्ट्राफी तथा जब किसी अन्य कारण से होता है, तब उसे पॉलीमायोसाइटिस या एक्वायर्ड मायोपैथी कहते हैं। उपरोक्त दोनों ही स्थितियों में मांसपेशियां निष्क्रिय–सी हो जाती हैं। उनका खिंचाव तथा उनकी शक्ति लगभग समाप्त हो जाती है तथा रोगी असमर्थ–सा हो जाता है। इस रोग में सर्वप्रथम मांसपेशियां अकड़ने लगती हैं, फिर धीरे–धीरे करके पत्थर की तरह सख्त हो जाती हैं। रोगी का धीरे–धीरे उठना–बैठना, चलना–फिरना, देखना–बोलना तक बंद हो जाता है। मांसपेशियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं। रोगी मृत्यु की प्रतीक्षा में पड़ा रहता है।

8.1 प्रकार

पेशीय डिस्ट्राफी रोग के निम्न प्रकार हैं–

1. ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्राफी
2. डिस्ट्रोफिया मायोटानिया
3. डिस्ट्रोफिया एडिपोसो मेनिटेलिस
4. मायोटोनिया
   (i) मायोटोनिया कॉनजेनिटा
   (ii) डिस्ट्रोफिया मायोटोनिया
5. आंकुलोफराइनजेन
6. फेसियो स्केपुलो ह्यूमेरल

8.1.1 ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्राफी

भारत में पेशीय डिस्ट्राफी के जितने भी रोगी हैं, उनमें सर्वाधिक संख्या ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्राफी रोगियों की है। ड्यूशन नामक वैज्ञानिक ने यह पता लगाया था कि यह रोग आनुवांशिक है अत: उस वैज्ञानिक के नाम पर इस रोग का नाम ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्राफी रखा गया। यह रोग पुरुषों में अधिक पाया जाता है। पुरुष एवं महिला रोगियों का अनुपात 6 : 1 होता है। यह रोग बचपन में ही हो जाता है लेकिन चार वर्ष तक इस रोग से ग्रसित बच्चा पूर्ण रूप से स्वस्थ दिखता है। तत्पश्चात् रोग के लक्षण उभरने लगते हैं।

यह रोग माता की पीढ़ी से संतान को प्राप्त होता है। इस रोग का जीन X गुणसूत्र के किसी स्थान पर उपस्थित होता है। अनुमानत: यह 23वें गुणसूत्र में रहता है तथा एक विशेष प्रकार के रसायन के उत्पन्न हो जाने के कारण इस रोग के जीन का निर्माण होता है। इस रोग का जीन अपने नियमों को तोड़कर दूसरे गुणसूत्र में अपना स्थान बना लेता है। ऐसी स्थिति में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एमिनो एसिड्स प्रोटीन, संयुक्त झिल्ली में बदलकर यह सारा उथल-पुथल कर देती है। आपको मालूम ही है कि प्रोटीन हमारी मांसपेशियों का मुख्य तत्त्व है लेकिन यह परिवर्तित प्रोटीन, कंकालीय पेशियों को निष्क्रिय कर व्यक्ति को अपंग बना देता है।

लक्षण—

- ❖ अधिकांशत: पुरुषों में पाया जाता है।
- ❖ बचपन में ही इस रोग के लक्षण उभरने लगते हैं।
- ❖ रोगी चार वर्ष तक स्वस्थ दिखता है, तत्पश्चात् लक्षण उभरने लगते हैं।
- ❖ इस रोग में निम्न क्रमानुसार मांसपेशियां कमजोर, क्षीण व निष्क्रिय होती हैं—
  (i) नितम्ब तथा कमर की मांसपेशियां (ii) पिण्डलियों की मांसपेशियां
  (iii) कन्धे एवं भुजाओं की मांसपेशियां (iv) फेफड़े एवं हृदय की मांसपेशियां।
- ❖ चार से पांच वर्ष में रोगी पूर्णत: दूसरों पर आश्रित हो जाता है।
- ❖ शरीर की अस्थियों तथा मांसपेशियों में खनिज लवण का अनुपात बिगड़ जाता है।
- ❖ अस्थियों में दर्द रहता है।
- ❖ अन्य रोगों का आक्रमण तेजी से होता है।

8.1.2 डिस्ट्रोफिया मायोटानिया

यह स्त्री तथा पुरुषों दोनों में ही बराबर पाया जाता है। इस रोग में मुख्य रूप से—

- ❖ बाल झड़ने लगते हैं।
- ❖ चेहरा, गर्दन तथा जबड़े की मांसपेशियां निष्क्रिय हो जाती हैं।
- ❖ मोतियाबिन्द हो जाता है।
- ❖ मांसपशियों की संकुचन क्षमता समाप्त हो जाती है।
- ❖ अन्त:स्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन्स असंतुलित हो जाते हैं।
- ❖ ऐच्छिक पेशियों पर व्यक्ति का नियंत्रण समाप्त हो जाता है।

8.1.3 डिस्ट्राफिया एडिपोसो मेनिटेलिस

- ❖ यह एक ऐसी पेशीय डिस्ट्राफी है, जिसमें मस्तिष्क का हाइपोथैलेमस विकृत हो जाता है।
- ❖ शरीर का वजन बढ़ता जाता है।
- ❖ भूख अस्त-व्यस्त हो जाती है।
- ❖ नींद का क्रम अनिश्चित हो जाता है।
- ❖ लैंगिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।
- ❖ यह रोग मुख्यत: लड़कों में पाया जाता है।
- ❖ इस रोग को प्रोहलिचेंस सिण्ड्रोम भी कहते हैं।

8.1.4 मायोटोनिया

इस रोग में मुख्य रूप से—

- ❖ मांसपेशियों की अकुंचन एवं विस्फारण क्षमता समाप्त हो जाती है।
- ❖ पकड़ने की क्षमता धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है।
- ❖ यह रोग आनुवांशिक भी होता है।

इस रोग के निम्न दो प्रकार हैं—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(I) मायोटोनिया कॉनजेनिटा

मायोटोनिया कॉनजेनिटा के रोगी में मुख्य रूप से—

- ❖ मांसपेशियों की क्षमता क्षीण हो जाती है।
- ❖ शरीर का आकार बिगड़ जाता है।
- ❖ बच्चों में यह रोग अधिकांशत: देखा गया है।

(II) डिस्ट्रोफिया मायोटोनिया

इस रोग के रोगी में—

- ❖ अग्न्याशय की बीटा कोशिकाएँ विकृत हो जाती हैं, जिससे इन्सुलिन का स्तर असामान्य हो जाता है, जिसका प्रभाव रक्त शर्करा पर पड़ता है।
- ❖ अन्य अन्त:स्रावी ग्रंथियों के स्राव भी अस्त-व्यस्त हो जाते हैं।
- ❖ मांसपेशियों की वृद्धि एवं विकास की स्थिति भी असामान्य हो जाती है।

8.1.5 आंकुलोफराइनजेन

इस पेशीय डिस्ट्राफी में—

- ❖ रोगी की कोशिकाओं में माइटोकोण्ड्रिया काफी बड़ा हो जाता है।

8.1.6 फेसियो स्केपुलो ह्यूमेरल

इस पेशीय डिस्ट्राफी में—

- ❖ पेशीय प्रोटीन काफी बढ़ जाती है।
- ❖ बढ़ी हुई पेशीय प्रोटीन विशेष रंग में जमा होकर पेशियों की क्षमता को समाप्त कर देती है।

8.2 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

जैसा कि पूर्व में बताया था कि पेशीय डिस्ट्राफी की अभी तक कोई चिकित्सा नहीं खोजी जा सकती है। हाँ, इस रोग से होने वाले कष्ट को अवश्य कम किया जा सकता है।

8.2.1 आहार चिकित्सा

इस रोग के रोगी को खाने में निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—

1. धूम्रपान, मद्यपान, मांसाहार एवं गरिष्ठ भोजन का पूर्णत: त्याग करें।
2. प्रतिदिन अंकुरित अनाज का सेवन लाभदायक है।
3. शरीर के खनिज लवण की जांच करवाकर तदानुसार फल, सब्जी आदि का सेवन ज्यादा लाभ दे सकता है (विशेष रूप से कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम आदि)।
4. फल एवं सब्जी का जूस एक कप प्रतिदिन पिएँ।
5. **कुछ वैज्ञानिक शोधों से यह पता चला है कि इस रोग में विटामिन-ई की कमी हो जाती है। अत: विटामिन-ई वाले खाद्य पदार्थों का सेवन करें।**

8.2.2 प्राकृतिक चिकित्सा

1. रोगी को रोगानुसार एनीमा दें।
2. प्रात: बाल सूर्य की उपस्थिति में सरसों के तेल से मालिश करें।
3. बिना तेल की मालिश अर्थात् सूखी मालिश दिन में एक-दो बार अवश्य करें।
4. गरम-ठण्डा सेक के बाद पेडू पर आधा घंटा मिट्टी की पट्टी करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8.2.3 प्रेक्षा चिकित्सा

(किसी भी आसन को बल पूर्वक न करें।)

1. **आसन**—सम्पूर्ण शरीर की यौगिक क्रियाएँ।
2. **प्राणायाम**—अनुलोम-विलोम एवं दीर्घश्वास प्राणायाम। 5-5 मिनट
3. **प्रेक्षा**—शरीर प्रेक्षा 10 मिनट
4. **अनुप्रेक्षा**—स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा 15 मिनट
5. **जप**—आरोग्य-वोहिलायंसमाहिवरमुत्तमं दितुं 10 मिनट
6. **तप**—सभी प्रकार का नशा एवं गरिष्ठ व तले हुए आहार का वर्जन।

बोध-प्रश्न

प्रश्न-1. पेशीय डिस्ट्राफी में किस विटामिन की कमी हो जाती है?

प्रश्न-2. डिस्ट्रोफिया मायोटानिया के विषय में बताएँ।

9.0 स्लिपडिस्क (Slipdisc) (कंकाल पेशीय रोग)

स्लिपडिस्क रोग मेरुदण्ड से संबंधित है। इसलिए सर्वप्रथम हम मेरुदण्ड को समझने का प्रयास करेंगे। हमारे मेरुदण्ड में कई मोड़ व घुमाव होते हैं। यह ग्रीवा के समीप आगे की तरफ निकली हुई सी रहती है। सीने के पास यह पीछे की ओर दबी रहती है। कटि के पास पुन: आगे की तरफ मुड़ी होती है, त्रिकास्थि पर पुन: पीछे की ओर दबती है एवं अंत में आगे की तरफ मुड़ जाती है।

हमारे मेरुदण्ड में 33 कशेरुक होते हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

कशेरुक	संख्या
1. ग्रेव कशेरुक (Cervical)	7
2. वक्ष कशेरुक (Thoracic)	12
3. कटि कशेरुक (Lumbar)	5
4. त्रिकास्थि (Sacrum)	5
5. अनुत्रिकास्थि (Coccyx)	4

स्लीप डिस्क का रोग मुख्यत: कटि कशेरुक नं. 4 व 5 तथा त्रिकास्थि 1 पर ही होता है।

हमारे कशेरुक के ऊपर व नीचे का भाग ठोस गोलाकार, मोटी गद्दी के समान होता है, जो उत्तल (Concave) होती है। दोनों ओर की सतह पर दृढ़ उपास्थि से निर्मित अन्तर कशेरुक उपास्थियां (Inter vertebral discs) रहती है, जो ऊपर व नीचे के कशेरुकों को अलग-अलग रखती है। अर्थात् **डिस्क दो कशेरुकों के मध्य का कोमल भाग है। जो इन्हें प्राकृतिक लचक एवं संतुलन प्रदान करता है।** कई बार अधिक श्रम व गलत हलन-चलन, गति आदि कारणों से डिस्क का प्राकृतिक फैलाव कम हो जाता है। कशेरुकाएं अपने स्थान से खिसककर इधर-उधर हो जाती हैं, जिससे गति में प्रतिकूल प्रभाव पड़ जाता है। अन्य क्रियाएँ भी प्रभावित हो जाती हैं। इस कारण यहां से संबंधित नाड़ियों पर दबाव पड़ना प्रारम्भ हो जाता है, जिससे हल्के से लेकर तीव्र दर्द होता है। कई बार शियाटिका रोग भी हो जाता है। इसे ही स्लीप डिस्क कहते हैं।

9.1 कारण

1. अधिक उम्र
2. क्षमता से अधिक वजन उठाना
3. गलत ढंग से वजन उठाना
4. ऊँचाई से कूदना (गलत ढंग से)
5. अकस्मात गिर जाना
6. जोर से छींकने व खांसने पर भी यह रोग हो जाता है
7. अचानक कमर पर झटका लग जाना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.2 लक्षण

सभी लक्षण रोगी में पाये जायें, यह जरूरी नहीं है। अधिकांश रोगियों में निम्न लक्षणों में से एक या दो लक्षण ही पाये जाते हैं—

1. पीठ के भाग में दर्द,
2. नितम्ब के दायें या बायें तरफ दर्द अथवा दोनों तरफ दर्द,
3. शियाटिका वात नाड़ी में दर्द,
4. एक जांघ या पैर का दूसरे से पतला हो जाना,
5. एक पैर की क्षमता कम हो जाना,
6. कमर का सन्तुलन बिगड़ जाना आदि।

9.3 जीवन-विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

1. स्लीप डिस्क के रोगी को वाष्प स्नान से बहुत लाभ होता है। प्रत्येक दो दिन के अन्तराल में रोगी को वाष्प स्नान देना चाहिए (दो माह तक)। इसके बाद अन्तराल को बढ़ाते रहना चाहिए।

2. कटि स्नान भी इस रोग में उपयोगी होता है।

3. प्रारम्भ में कमर पर लम्बर पट्टा कार्य करते समय अवश्य बांध लेना चाहिए।

प्रेक्षा-चिकित्सा

आसन—मेरुदण्ड की क्रियाएं, भुजंगासन, मत्स्यासन, सुप्त वज्रासन—10 मिनट।
प्राणायाम—नाड़ी शोधन, सूक्ष्म भस्त्रिका—5 मिनट।
प्रेक्षा—अन्तर्यात्रा, शरीर प्रेक्षा का ध्यान—10 मिनट।
अनुप्रेक्षा—मेरुदण्ड की स्वस्थता का सुझाव—'मेरा मेरुदण्ड स्वस्थ हो रहा है'—15 मिनट।
जप—'ॐ' ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं'—10 मिनट।
तप—गरिष्ठ एवं तली हुई वस्तुओं का वर्जन।
विशेष—सामने झुककर किये जाने वाले आसनों का वर्जन।

बोध-प्रश्न

प्रश्न-1. स्लिपडिस्क के कारण एवं लक्षण लिखिए।

प्रश्न-2. स्लिपडिस्क रोग की चिकित्सा बताइये।

10.0 सारांश

त्वचा को हटाने पर जो मांस दिखाई देता है, उसे पेशी कहते हैं। इनका रंग लाल होता है। प्रत्येक पेशी का एक अस्थि पर मूलबंध तथा दूसरी अस्थि पर निवेश होता है।

पेशियों की रचना- यह 75 प्रतिशत जल एवं 25 प्रतिशत प्रोटीन से बनी होती हैं। लगभग 600 मांसपेशियां हमारे शरीर में पाई जाती हैं, जिनका वजन शरीर के भार का 42 प्रतिशत होता है।

पेशियों का महत्त्व- मुख्य रूप से पेशियों के कारण ही हमारा शरीर गति करता है।

पेशियों के भेद

1. ऐच्छिक पेशी—इनका संबंध मस्तिष्क से होता है तथा ये हमारी इच्छा के अनुसार ही कार्य करती हैं। उदाहरण स्वरूप—हमारा चलना, फिरना, हाथ-पैर को हिलाना आदि। इनमें आड़ी धारियां होती हैं, इसलिए इन्हें रेखित पेशी भी कहते हैं।

2. अनैच्छिक पेशी—इन पेशियों पर हमारा प्रत्यक्ष रूप से कोई नियंत्रण नहीं होता है। ये स्वत: संचालित होती हैं, यथा—आमाशय की पेशी, छोटी आंत, बड़ी आंत, फेफड़े, अंदर की ग्रंथियां आदि। इनमें धारियां नहीं होती हैं, इसलिए इन्हें आरेखित पेशी भी कहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. हृदय पेशी—यह रचना की दृष्टि से ऐच्छिक पेशी के समान होती है। लेकिन कार्य की दृष्टि से अनेच्छिक पेशी के समान होती है। ये पेशियां निरन्तर कार्य करती रहती हैं।

पेशियों की गति

1. आकुंचन (Flexion),
2. प्रसारण (Extension),
3. अपवर्तन (Abduction),
4. अभिवर्तन (Adduction),
5. घूर्णन (Rotation),
6. वलय (Circular).

पेशीय डिस्ट्रोफी – यह एक लाईलाज रोग है। इसकी कोई चिकित्सा आज तक नहीं खोजी जा सकती है। इस रोग में शरीर पूरा लूंज-पुंज होता चला जाता है और अंत में व्यक्ति मृत्यु के मुख में समा जाता है।

प्रकार—1. ड्यूशन मस्कुलर डिस्ट्राफी
2. डिस्ट्रोफिया मायोटानिया
3. डिस्ट्रोफिया एडिपोसो मेनिटेलिस
4. मायोटोनिया
   (i) मायोटोनिया कॉनजेनिटा
   (ii) डिस्ट्रोफिया मायोटोनिया
5. आंकुलोफराइनजेन
6. फेसियो स्केपुलो ह्यूमेरल

स्लिपडिस्क – डिस्क दो कशेरुकों के मध्य का कोमल भाग है, जो एक ठोस गोलाकार मोटी गद्दी के समान होता है। यह दृढ़ उपास्थि से निर्मित होती है। यह कशेरुकाओं को प्राकृतिक लचक एवं संतुलन प्रदान करती है। कई बार अधिक श्रम व गलत हलन-चलन या गलत ढंग से वजन को उठाने आदि कारणों से डिस्क का प्राकृतिक फैलाव कम हो जाता है तथा कशेरुकाएं अपने स्थान से खिसककर इधर-उधर हो जाती हैं, जिससे कशेरुकाओं की गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संबंधित स्थान की नाड़ियों पर दबाव पड़ने लगता है, जिससे दर्द होता है। इसे ही स्लिपडिस्क कहते हैं।

11.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पेशी तंत्र की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. पेशी डिस्ट्राफी रोग का वर्णन करते हुए इसकी जीवन-विज्ञान प्रबन्धन प्रविधि बताइये।
3. स्लिपडिस्क रोग के कारण, लक्षण एवं चिकित्सा का विस्तृत वर्णन कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. पेशियों का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
2. अनैचिछक पेशी का वर्णन कीजिए।
3. पेशी की रसायनिक क्रिया के संबंध में बताइये।
4. सिर एवं मुंह की पेशियों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. नेत्र गोलक को घुमाने वाली पेशी का नाम बताइये।
2. वक्त्र मंडलिका पेशियों का कार्य बताइये।
3. प्रोहलिचेंस सिण्ड्रोम किसे कहते हैं?
4. माइटोकॉन्ड्रिया किस प्रकार की पेशी डिस्ट्राफी में बड़ा हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–4 शारीरिक तंत्रों का रचनात्मक परिचय संबंधित रोग एवं रोगों का प्रबन्धन

पाठ–क

श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र–परिचय श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र के विकार दमा एवं ब्रोंकाइटिस, मधुमेह, रक्ताल्पता, जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

प्रिय विद्यार्थियों,

पिछले अध्याय में आपने अस्थि–तंत्र, पेशी–तंत्र एवं उनसे संबंधित रोगों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया था। प्रस्तुत पाठ में आप श्वसन–तंत्र एवं पाचन–तंत्र का परिचय तथा दमा एवं ब्रोंकाइटिस, मधुमेह तथा रक्ताल्पता रोगों के विषय में अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत पाठ कुछ बड़ा अवश्य है लेकिन इसकी उपयोगिता भी है अत: धैर्य के साथ इसका अध्ययन करें। हमें विश्वास है कि इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप जन–साधारण को भी लाभन्वित कर पायेंगे।

उद्देश्य

1. आप श्वसन–तंत्र का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
2. आप पाचन–तंत्र का भी सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. आपको दमा एवं ब्रोंकाइटिस, मधुमेह तथा रक्ताल्पता रोगों की जानकारी प्राप्त होगी।
4. आप जीवन–विज्ञान द्वारा उपरोक्त रोगों का सफलतापूर्वक निदान कर सकेंगे।

विषय–वस्तु

1.0 श्वसन–तंत्र
- 1.1 श्वसन–प्रक्रिया
  - 1.1.1 बाह्य श्वसन
  - 1.1.2 अन्त: श्वसन
- 1.2 श्वसन–तंत्र के मुख्य अवयव
  - 1.2.1 नासा गुहाएँ
  - 1.2.2 ग्रसनी
  - 1.2.3 स्वरयंत्र
  - 1.2.4 श्वास नली
  - 1.2.5 श्वसनी
  - 1.2.6 श्वसनिक
  - 1.2.7 श्वास प्रकोष्ठ
- 1.3 फुप्फुस

2.0 पाचन–तंत्र
- 2.1 पाचन
- 2.2 पोषण नाल
  - 2.2.1 मुख गुहा
    - 2.2.1.1 दांत
    - 2.2.1.2 जिह्वा
    - 2.2.1.3 लार
  - 2.2.2 ग्रसनी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.3 ग्रासनली
2.2.4 आमाशय
2.2.5 छोटी आंत्र
2.2.5.1 पक्वाशय
2.2.5.2 मध्यान्त्र
2.2.5.3 शेषान्त्र
2.2.6 बड़ी आंत्र
2.2.6.1 अंधान्त्र
2.2.6.2 कोलन
2.2.6.3 मलाशय
2.3 यकृत
2.4 पित्ताशय
2.5 अग्न्याशय
2.6 प्लीहा
3.0 रोग—दमा एवं ब्रोंकाइटिस, मधुमेह, रक्ताल्पता
3.1 दमा
3.1.1 दमा के लक्षण
3.1.2 दमा के कारण एवं प्रकार
3.1.3 दमे का उपचार (3.2.4)
3.2 ब्रोंकाइटिस
3.2.1 ब्रोंकाइटिस के प्रकार
3.2.2 ब्रोंकाइटिस के लक्षण
3.2.3 ब्रोंकाइटिस के कारण
3.2.4 दमा एवं ब्रोंकाइटिस का जीवन-विज्ञान द्वारा प्रबन्धन
3.3 मधुमेह
3.3.1 अर्थ
3.3.2 परिचय
3.3.3 मधुमेह के प्रकार
3.3.4 मधुमेह के लक्षण
3.3.5 मधुमेह के कारण
3.3.5.1 आनुवंशिक
3.3.5.2 श्रमहीनता
3.3.5.3 वसायुक्त भोजन
3.3.5.4 तनाव
3.3.5.5 मोटापा
3.3.5.6 संक्रमण
3.3.5.7 हार्मोन्स
3.3.5.8 औषधियाँ
3.3.5.9 रोग
3.3.5.10 जाति, देश तथा परिवेश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3.5.11 नशा
3.3.5.12 गर्भावस्था
3.3.5.13 उम्र
3.3.5.14 व्यवसाय
3.3.5.15 लिंग
3.3.5.16 अन्य कारण
3.3.6 मधुमेह का जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि
3.4 हर्निया
3.4.1 कारण
3.4.2 प्रकार
3.4.2.1 इन्वायल
3.4.2.2 फीमोरल
3.4.2.3 हापटस
3.4.3 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि
4.0 सारांश
5.0 प्रश्नावली

1.0 श्वसन तंत्र

जीवन की प्रथम आवश्यकता ऑक्सीजन है। इसके बिना जीवन की कल्पना संभव नहीं है क्योंकि कोशिकाओं में सभी तत्त्वों का चयापचय और उससे प्राप्त ऊर्जा तथा ऊष्मा का सृजन ऑक्सीजन के द्वारा ही होता है। अगर हमारे शरीर में ऑक्सीजन का अभाव हो जाए तो कुछ ही मिनट में ऊतक निष्क्रिय हो जाएँगे, हृदय की धड़कन बन्द हो जाएगी, मस्तिष्क कार्य करना बन्द कर देगा तथा हमारी मृत्यु हो जाएगी। अत: ऑक्सीजन के बिना जीवन की कल्पना संभव नहीं है।

वातावरण की ऑक्सीजन को शरीर के भीतर पहुंचना तथा शरीर में वर्ज्य पदार्थ के रूप में उत्पन्न कार्बन-डाई-ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकालने का कार्य जो तंत्र करता है, उसे श्वसन तंत्र कहते हैं।

1.1 श्वसन प्रक्रिया

श्वसन वास्तविकता में दो भिन्न-भिन्न क्रियाओं का एक सम्मिलित रूप है, साथ ही साथ यह एक दोहरी प्रक्रिया है। दो भिन्न-भिन्न क्रियाएँ इस रूप में हैं क्योंकि इस क्रिया में प्रथम वातावरण की वायु को भीतर लिया जाता है, जिसे निश्वसन (Inspiration) कहते हैं तथा द्वितीय वर्ज्य वायु के रूप में उत्पन्न कार्बन-डाई-ऑक्साइड को शरीर से निकाला जाता है, जिसे नि:श्वसन (Expiration) कहते हैं। इस प्रकार श्वसन क्रिया निश्वसन और नि:श्वसन दो भिन्न क्रियाओं का सम्मिलित रूप है।

श्वसन क्रिया एक दोहरी प्रक्रिया इस रूप में है क्योंकि इस क्रिया के दो निम्न प्रावस्थाएँ होती हैं—

1. बाह्य श्वसन (External respiration),
2. अन्त:श्वसन (Internal respiration)।

उपरोक्त दोनों प्रावस्थाओं को क्रमश: समझने का प्रयत्न करेंगे।

1.1.1 बाह्य श्वसन (External respiration)

इसे फुफ्फुस श्वसन (pulmonary respiration) भी कहते हैं क्योंकि यह क्रिया फुफ्फुसों तक ही सीमित है। इस क्रिया में वातावरण की वायु को श्वास के माध्यम से फुफ्फुसों तक ले जाया जाता है, जहाँ ये श्वास प्रकोष्ठ (Alveoli) में पहुंचती हैं। यहां पर वायु में उपस्थित ऑक्सीजन को रक्त द्वारा अंत:शोषित कर लिया जाता है तथा रक्त के द्वारा फुफ्फुसों में छोड़ी गई कार्बन-डाई-ऑक्साइड को प्रश्वास के माध्यम से बाहर निकाल दिया जाता है। फुफ्फुसों में उपस्थित ऑक्सीजन को रक्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के द्वारा अवशोषित करना तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड को फुफ्फुसों में छोड़ने की प्रक्रिया गैसों के विसरण गुण (difussion)के कारण संभव होती है।

1.1.2 अन्त:श्वसन (Internal respiration)

फुफ्फुसों में रक्त द्वारा ऑक्सीजन का अवशोषण किया जाता है। वह वास्तविकता में रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन के द्वारा होता है। हीमोग्लोबिन में ऑक्सीजन के लिए बहुत आकर्षण होता है, जिससे यह वायु में उपस्थित ऑक्सीजन को खींच लेता है, जो संतृप्त होकर ऑक्सी-हीमोग्लोबिन बन जाता है। ऑक्सीजन रक्त परिसंचरण तंत्र के माध्यम से कोशिकाओं तक पहुंचती है, जहाँ कोशिकाओं की भित्तियों के माध्यम से पुन: आदान-प्रदान की क्रिया होती है। इस क्रिया में कोशिकाओं में ऑक्सीजन छोड़ दी जाती है। कोशिकाओं में ऑक्सीकरण (oxidation) की क्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप कार्बन-डाई-ऑक्साइड मुक्त होती है। यह मुक्त कार्बन-डाई-ऑक्साइड पुन: हीमोग्लोबिन के द्वारा ले ली जाती है तथा वापिस रक्त परिसंचरण तंत्र के माध्यम से फुफ्फुसों तक लाई जाती है, जहां पुन: विनिमय (Exchange) होता है। इस विनिमय में कार्बन-डाई-ऑक्साइड को मुक्त कर दिया जाता है तथा ऑक्सीजन को ले लिया जाता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

1.2 श्वसन तंत्र के मुख्य अवयव (Main Organs of Respiratory System)

श्वसन तंत्र का मुख्य कार्य वातावरण की वायु को भीतर खींचना तथा श्वास प्रकोष्ठ (Alveoli) तक पहुंचना एवं मुक्त की गई कार्बन-डाई-ऑक्साइड को श्वास के माध्यम से बाहर निकालना है। लेकिन इस क्रिया में स्वास्थ्य की दृष्टि से कई बातों का ध्यान भी रखा जाता है। वह कार्य भी श्वसन तंत्र के माध्यम से होता है। श्वसन तंत्र मुख्यत: नाक से लेकर श्वास प्रकोष्ठ तक फैला हुआ एक तंत्र है जिसके निम्न मुख्य अंग हैं—

1. नासा गुहाएँ (Nasal cavities),
2. ग्रसनी (Pharynx),
3. स्वरयंत्र (Larynx),
4. श्वास नली (Trachea),
5. श्वसनी (Bronchi),
6. श्वसनिक (Bronchioles),
7. श्वास प्रकोष्ठ (Alveoli)।

1.2.1 नासा गुहाएँ (Nosal cavities)

नासिका वायु का स्वाभाविक प्रवेश द्वार है। इसी मार्ग से वायु भीतर प्रवेश करती है। नासिका एक विभाजक पर्दे (Nosal septum) के द्वारा भीतर दो भागों में बंटी होती है। इन्हें ही नासा गुहाएँ (Nosal cavities) कहते हैं। इनमें आगे व पीछे दो द्वार बन जाते हैं, जिन्हें क्रमश: अग्र-नासा-द्वार तथा पश्च-नासा-द्वार (Anterior and posterior narus) कहते हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ और द्वार भी यहां होते हैं, जैसे—

- ❖ ऊर्ध्वहनुद्वार (Moxillary Antrum)
- ❖ ललाटास्थि, झझरास्थि एवं जतुकास्थि के वायु विवर (Air sinyses of frontal, ethmaid and spenoid bones)
- ❖ नासाश्रुवाहिनी के छिद्र (Opening of Lacrimal duct)

नासिका मार्ग के अग्र-नासा-द्वार की सतह पर कुछ तैलीय ग्रंथियां होती हैं। इसी स्थान पर कुछ दृढ़ बाल भी पाये जाते हैं। शेष भाग में आच्छादित करने वाली उपकला का स्तर रहता है। इनमें श्लेष्मा उत्पन्न करने वाली कोशिकाएँ (Mucous cells) होती हैं, जो अपनी श्लेष्मा से नासिका की श्लेष्मिक-कला को नम, चिकनी व चिपचिपी रखती हैं। श्वसन क्रिया के समय वायु के साथ आये कण, रेशे, जीवाणु आदि कुछ अशुद्धियां इनमें चिपक जाते हैं तथा कुछ अशुद्धियां नासागुहा में उपस्थित बालों में फंस जाते हैं। जब श्वास बाहर निकालते हैं, उस समय हवा के दबाव में ये बाहर निकल जाते हैं।

इसी स्थान पर घ्राण-केन्द्र होते हैं, जहाँ घ्राण-तंत्रिका (fibres of orjetory nerve) के सूत्र आते हैं। ये वायु की महक को पता कर यह सूचना देते हैं कि वायु किस प्रकार की है। यदि वायु दुर्गंधित होती है तो उससे बचने के प्रयास के लिए संबंधित अंगों को सूचना देती है। इसके अतिरिक्त इस स्थान पर उपस्थित श्लेष्मिक कला वायु को अधिक नम तथा उष्ण कर देती है, जिससे फुफ्फुसों को हानि नहीं पहुंचती है। उक्त सभी कारणों से श्वास सदैव नाक से ही लेनी चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

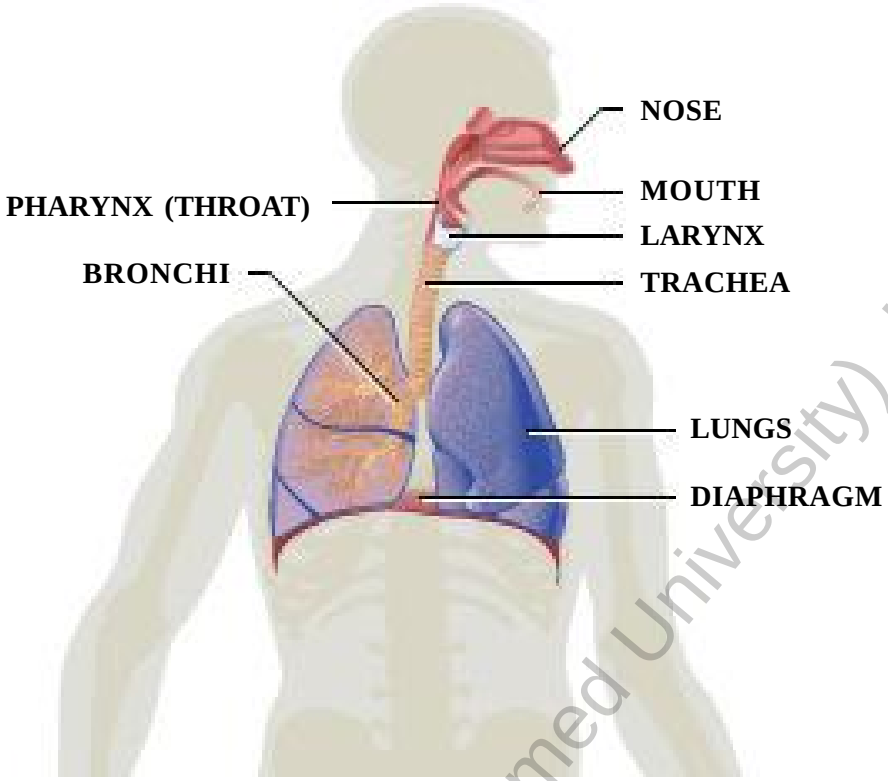

1.2.2 ग्रसनी (The Pharynx)

नासिका में जो वायु पहुंचती है, वह नाक में स्थित मार्ग से पार कर कंठ अथवा ग्रसनी में पहुंचती है। जो नाक, मुंह तथा स्वर यंत्र के पीछे होती है तथा नासा-गुहाओं के बाद कपाल के सबसे निचले भाग में स्थित है। यहां कान से आने वाली कर्ण-कंठ-नली (Eustachian Tube) का मुँह खुलता है है। इस प्रकार यह स्थान कान, मुंह, नाक, पेट तथा फुफ्फुसों से आपस में संबंधित रहते हैं तथा एक-दूसरे को सहयोग करते हैं, जैसे—खाते-पीते समय श्वास मार्ग बंद हो जाता है। ग्रसनी की भित्तियां पेशियों से निर्मित होती हैं। इसकी पश्च भित्ति पर दोनों तरफ कुछ लसिका ऊतक का समूह होता है, जिसे टॉन्सिल (Tonsil) कहते हैं। संक्रमण होने पर यह एडिनायड (Adenoid) रोग का रूप धारण कर लेता है, जिसमें इनका आकार बढ़ जाता है।

1.2.3 स्वर-यंत्र (The Larynx)

श्वास नली के सबसे ऊपर वाले भाग को स्वर-यंत्र (Larynx) कहते हैं। इस स्थान पर उपास्थि का एक ढक्कन होता है, जिसे कंठच्छद (Epiglotis) कहते हैं। यह भोजन निगलते समय स्वर-यंत्र के मुख को बंदकर देता है, जिससे भोजन इसमें प्रवेश नहीं कर पाता है। श्वास लेते समय यह ढक्कन खुला रहता है, जिससे श्वसन क्रिया सामान्य रूप से निरन्तर चलती रहती है। स्वर-यंत्र का मुख्य कार्य ध्वनि की उत्पत्ति करना है। जब हम बोलते हैं तब इसमें स्थित स्वर-रज्जुओं (vocal cord) में कंपन होता है। इससे ध्वनि उत्पन्न होती है। बाद में दांत, जीभ व ओंठ आदि मिलकर इस ध्वनि को भिन्न रूपों में उच्चारित करते हैं। इस सम्पूर्ण स्वर-यंत्र का निर्माण निम्नलिखित अस्थि एवं उपास्थियों आदि से होता है।

1. अवटु उपास्थि (Thyroid cartilage)
2. मुद्रा उपास्थि (Cricod cartilage)
3. दर्वीकल्प उपास्थि (Arytnoid Cartilage)
4. कंठच्छद (Epiglottis)
5. हायड अस्थि (Hyoid Bone)
6. स्वर-रज्जु (Vocal Cords)

1.2.4 श्वास-नली (Trachea)

श्वसन-तंत्र में स्वर-यंत्र के बाद वायु जाने का जो मार्ग होता है, उसे श्वासनली अथवा कंठनाल कहते हैं। यह श्वास-नली, ग्रासनली (Qesophasus) के सामने की तरफ स्थित होती है तथा वक्ष मार्ग के चौथे-पांचवे कशकेरुक तक लम्बी होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वैसे इसकी लम्बाई 4.5 इंच तथा व्यास 1 इंच होता है। इस पूरी नली का आधा भाग ग्रीवा में तथा आधा भाग वक्ष के ऊध्र्व भाग में स्थित रहता है। ऊपर वाले भाग को ग्रेव-प्रांत की श्वास नली तथा नीचे वाले भाग को वक्ष-प्रांत की श्वास नली (Cervical Trachea and Thoracic Trachea) कहते हैं। श्वास नली 16 से 20 उपास्थियों की अपूर्ण मुद्रिकाओं अथवा छल्लों की बनी होती है। इसी कारण यह सदैव फूली रहती है। इन छल्लों का आकार अंग्रेजी के 'C' अक्षर की तरह होता है। श्वास नली की पिछली परिधि, जो कि तंतु ऊतकों तथा श्लेषिमक झिल्ली से निर्मित होती है, ग्रास-नली से सटी रहती है। इस भाग को उपास्थि का सहारा प्राप्त नहीं होता है। श्वास नली सदैव चिकनी तथा नम रहती है। इसके अस्तर का निर्माण रोमिकामयी स्तंभाकार उपकला से होता है। इसमें चषक-कोशिकाओं से निरन्तर श्लेष्म द्रव (mucals) स्रावित होता रहता है, जो इस नली को चिकना तथा नम रखता है। श्वास नली के अस्तर की रोमिकाएँ ऊपर की ओर गति करती रहती हैं, जिससे धूल कण आदि अशुद्धियां भीतर प्रवेश नहीं कर पाती हैं।

1.2.5 श्वसनी (The Bronchi)

जैसा कि पूर्व में बताया गया कि श्वास नली वक्ष प्रांत को चौथे-पांचवे कशेरुक तक लम्बी होती है। यह श्वास नली इस स्थान पर पहुंचने के बाद दो शाखाओं में बंट जाती है। इन दो शाखाओं को ही श्वसनी (bronchi) कहते हैं। इनमें दाहिनी श्वसनी बांयी श्वसनी की अपेक्षा कुछ लम्बी तथा पतली होती है।

दायीं एवं बायीं श्वसनी दायें व बायें फुफ्फुसों में प्रवेश करती है तथा पुनः कई शाखाओं-प्रशाखाओं में बंट जाती है। इनमें एक शाखा फुफ्फुसीय धमनी के स्तर से कुछ ऊपर फूटती है, जिसे ऊर्ध्व-खंड-श्वसनी (Upper-lobe-bronchus) कहते हैं। जब शाखा धमनी से आगे बढ़ जाती है तब दूसरी शाखा फूटती है, इसे निम्न खण्ड श्वसनी (lower-lobe-bronchus) कहते हैं। इस निम्न-खण्ड-श्वसनी से ही मध्य खण्ड श्वसनी (middle-lobe-bronchus) निकलती है। श्वसनी की शाखाएँ फुफ्फुसों में प्रवेश करने से पूर्व तक उपास्थि की बनी होती है। बायीं श्वसनी में दो शाखाएँ ही फूटती हैं।

1.2.6 श्वसनिकाएँ (Bronchioles)

पूर्व में बताया गया है कि श्वास नली दो मुख्य शाखाओं में बंट जाती है। उसके बाद इन दो मुख्य शाखाओं से अन्य प्रशाखाएँ निकलती हैं। पुनः इन प्रशाखाओं से अन्य शाखाएँ फूटती हैं। ये क्रमशः पहले की अपेक्षा कम व्यास की होती हैं। अन्त में ये अत्यन्त सूक्ष्म व्यास श्वसनिकाओं (bronchioles) में बंट जाती हैं। ये देखने में ऐसी लगती हैं, जैसे किसी पेड़ को तना सहित उलटा खड़ा कर दिया गया हो।

रचना की दृष्टि से देखा जाए तो श्वास नली तथा श्वसनी की रचना लगभग एक समान होती है लेकिन श्वसनिकाओं की रचना इनसे अलग होती है। इनमें उपास्थि नहीं पाई जाती है। ये सूत्रमय पेशी ऊतकों (fibrous muscular tissues) से बनी होती हैं लेकिन ये पेशी ऊतक से अधिक परिपक्व होते हैं। श्वास नली तथा श्वसनी की अनैच्छिक पेशियों में जब संकुचन एवं शिथिलन होता है, उस समय इसका प्रभाव श्वसनिकाओं पर भी पड़ता है तथा उसी के अनुरूप इनमें भी गति होती है। ये भी सिकुड़ती तथा फैलती हैं।

1.2.7 श्वास प्रकोष्ठ (Alveoli)

श्वास-प्रकोष्ठ को वायु कोष्ठिका कोष या वायु कोष भी कहते हैं। नवजात शिशु के एक फेफड़े में इनकी संख्या लगभग दो करोड़ तक हो सकती है, वहीं वयस्क में इनकी संख्या पन्द्रह करोड़ से भी ज्यादा हो सकती है।

श्वसनिकाएँ अन्त में बहुत ही महीन नलिका का रूप धारण कर लेती हैं। इन्हें कूपिका नलिका (Alveolar duct) कहते हैं। इनके सिरे फूलकर कूपिका (Atrium) बनाते हैं, जिन पर ये वायु कोष (Alvuoli) लगे होते हैं।

प्रत्येक श्वास प्रकोष्ठ बहुत ही बारीक झिल्ली की दीवार से बने होते हैं। ये झिल्ली चपटी कोशिकाओं से बनी होती हैं। इनकी बाहरी सतह पर रक्त कोशिकाओं (Blood capillaries) का एक जाल फैला रहता है। श्वास प्रकोष्ठ तथा रक्त कोशिकाएँ इतनी नजदीक होती हैं कि इनमें से गैसों का आदान-प्रदान सुलभ हो जाता है। इस स्थान पर ही रक्त द्वारा ऑक्सीजन को ग्रहण किया जाता है तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड को मुक्त किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.3 फुफ्फुस (Lungs)

इन्हें आम बोलचाल की भाषा में फेफड़े कहा जाता है। ये संख्या में दो होते हैं। ये प्रधान श्वसन अंग हैं। ये वक्ष गुहा (Thoracic cavity) में हृदय के दायें व बायें तरफ स्थित होते हैं। इनका रंग नवजात शिशु में लाल होता है लेकिन वयस्क में ये कत्थई-स्लेटी रंग के होते हैं। ये अत्यन्त कोमल तथा लचीले होते हैं। प्रत्येक फुफ्फुस गुहा (Pleural cavity) होती है, जिसमें एक लसदार तरल पदार्थ भरा रहता है। ये झिल्लियाँ दोहरी पर्त की बनी होती हैं। ये फुफ्फुसों को सुरक्षा प्रदान करती हैं इसलिए इन्हें फुफ्फुसावरण (Pleura) कहते हैं।

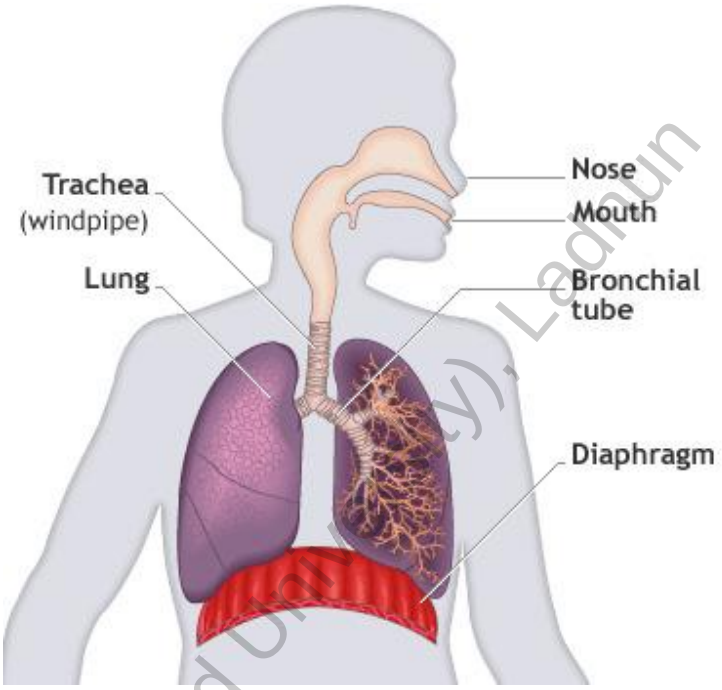

हमारा दाहिना फुफ्फुस बायें फुफ्फुस की अपेक्षा कुछ बड़ा होता है। वजन की दृष्टि से बायां फुफ्फुस 570 ग्राम का होता है तथा दायां फुफ्स 620 ग्राम का होता है। यहां ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के फुफ्फुस कम वजन के होते हैं। हमारा प्रत्येक फुफ्फुस दरारों के द्वारा खण्डों (Lobes) में विभक्त होता है। दाहिने फुफ्फुस में तीन खण्ड होते हैं, वहीं बायें फुफ्फुस में दो खण्ड ही होते हैं। फुफ्फुसों की बाहरी सतह सपाट तथा चिकनी होती है तथा भीतरी संरचना मधुमक्खी के छाते की तरह स्पंजी तथा असंख्य श्वास प्रकोष्ठ में बंटी होती है।

फुफ्फुसों की सामर्थ्य

फुफ्फुस कभी भी खाली नहीं रहते हैं। ये सदैव वायु से भरे रहते हैं। जो वायु सामान्यत: 2.5 लीटर होती है, इस वायु को कार्यात्मक अवशेष वायु कहते हैं। सामान्यत: हम 0.5 लीटर वायु फुफ्फुसों में भरते हैं व निकालते हैं। इस वायु को प्रवाही वायु कहते हैं। किन्तु श्वास प्रेक्षा के प्रयोग के माध्यम से हम इस प्रवाही वायु को 3.5 लीटर तक कर सकते हैं। वैसे हमारे फुफ्फुसों की क्षमता लगभग 5-6 लीटर वायु की है लेकिन पूरी वायु निकालने के बाद भी लगभग 1.5 लीटर वायु शेष रह जाती है।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—श्वसनी का वर्णन कीजिए।

प्रश्न—श्वास-नली के विषय में विस्तार से बताइये।

2.0 पाचन तंत्र (Digestive System)

हमारा शरीर निरन्तर विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करता रहता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर के ऊतकों में टूट-फूट होती रहती है तथा कई कोशिकाएँ नष्ट भी हो जाती हैं। इन सभी कार्यों के लिए शरीर को ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा शरीर की पेशियों में होने वाली रासायनिक क्रिया से ऊष्मा या ताप के रूप में प्राप्त होती है। यह ऊर्जा शरीर में शक्ति उत्पन्न करती है, शरीर के तापक्रम को बनाये रखती है, शरीर की कोशिकाओं के निर्माण, मरम्मत तथा वृद्धि में सहायक होती है लेकिन इसके लिए हमें भोजन की आवश्यकता होती है। इसमें पाये जाने वाले पोषक तत्त्व विभिन्न रासायनिक क्रियाओं से गुजरने के पश्चात् हमें ऊर्जा प्रदान करते हैं।

2.1 पाचन (Digestion)

यह हमारे शरीर की एक महत्त्वपूर्ण यांत्रिक एवं रासायनिक प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत भोजन को सूक्ष्मतम कणों में विभक्त किया जाता है, साथ ही साथ विभिन्न प्रकार के पाचक रसों की क्रियाओं के द्वारा उसके रूप में भी परिवर्तन किया जाता है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिससे उसके घटक तत्त्व रक्त द्वारा अवशोषित किये जा सकें। अर्थात् अविलेय भोजन को स्वांगीकरण (Assimilation) के लिए विलेय रूप में परिवर्तित कर देना ही पाचन है। इस प्रक्रिया में जो भोजन सूक्ष्मतम स्तर तक टूट नहीं पाते या पच नहीं पाते, उन्हें मल के रूप में गुदा मार्ग से बाहर निकाल दिया जाता है। उक्त समस्त क्रिया जिस तंत्र के द्वारा की जाती है, उसे पाचन तंत्र कहते हैं।

2.2 पोषण-नाल (Alimentary Canal)

यह एक अनैच्छिक पेशियों से बनी लगभग 10 मीटर लम्बी नली है, जिसके अलग-अलग भाग हैं तथा उनके पृथक्-पृथक् कार्य हैं। इन अलग-अलग भागों की लम्बाई व व्यास में बहुत अन्तर है। इस पोषण नाल का जगह-जगह पाचक रस बनाने वाली ग्रंथियों से सम्पर्क है। इनसे प्राप्त होने वाले स्राव भोजन को पचाने में सहायता करते हैं।

उपरोक्त सभी अंगों को सामुहिक रूप से पाचन तंत्र कहते हैं। अब सर्वप्रथम अध्ययन की दृष्टि से पोषण नाल का अध्ययन निम्न भागों में बांटकर करेंगे—

1. मुख गुहा (Mouth Cavity)
2. ग्रसनी (Pharynx)
3. ग्रासनली (Oesophogus)
4. आमाशय (Stomach)
5. छोटी आंत (Small intestine)
6. बड़ी आंत (Large intestine)

2.2.1 मुख गुहा (Mouth-cavity)

यह दोनों जबड़ों तथा गालों से घिरी एक चौड़ी गुहा है। इसकी छत को तालु कहते हैं। तालु (Palate) का अगला भाग कठोर तथा पिछला भाग मुलायम होता है। यह पिछला मुलायम भाग एक लटकन के रूप में होता है, जिसे काग (Uvula) कहते हैं। काग के दोनों तरफ टॉन्सिल होते हैं।

इस मुख गुहा के अन्दर गाल, ओंठ, तालु आदि चिकने तथा कोमल होते हैं क्योंकि श्लेष्मक स्रावित करने वाली श्लेष्मक कला से ढके रहते हैं।

2.2.1.1 दांत (teeth)

हमारे मुख गुहा में कुल 32 दांत (tuth) होते हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

- **ऊपर-नीचे—16-16 दांत होते हैं।**
- **दायें व बायें तरफ 8-8 दांत होते हैं।**
- मध्य के चार काटने वाले **कृन्तक** (incisors)
- कृन्तक के दोनों तरफ एक-एक फाड़ने वाले **रदनक** (canine)
- रदनक के बगल में दो-दो कुचलने वाले **अग्रचर्वणक** (premolar)
- अग्रचर्वणक के बगल में तीन-तीन **चर्वणक** (molar)

(इनमें अन्तिम दांतों को विवेक दांत (wisdom teeth) भी कहते हैं।) ये 20-21 वर्ष के बाद निकलते हैं।

2.2.1.2 जिह्वा (tongue)

ये दो प्रकार की पेशियों से बनी होती है—बहिस्थ पेशी एवं अन्तस्थ पेशी (Extrinsic and intrinsic muscles)। इनमें से बहिस्थ पेशी भोजन चबाने, निगलने आदि में गति प्रदान करती है जबकि अन्तस्थ पेशी जिह्वा को सूक्ष्म गति प्रदान करती है। सामान्यत: जिह्वा चौड़ी होती है लेकिन जब इसे बाहर निकाला जाता है तब यह नुकीली हो जाती है। जिह्वा का ऊपरी भाग रुखड़ी झिल्ली से बना होता है, जिस पर छोटे-छोटे दानों के रूप में ग्रहांकुर (popillar) होते हैं। इनमें स्वाद कलियां पायी जाती हैं, जिनके द्वारा हमें भोजन के स्वाद का अनुभव होता है। जिह्वा पर प्रत्येक स्वाद के पृथक्-पृथक् स्थान हैं, जैसे—मीठा स्वाद नोक से, खट्टा स्वाद किनारे से, कड़वा स्वाद पीछे से तथा नमकीन स्वाद सभी जगह से। जिह्वा अपने द्वारा निम्न महत्त्वपूर्ण कार्य करती है—

1. भोजन को मुँह में महीन होने के लिए घुमाना।
2. भोजन के स्वाद का अनुभव कराना।
3. भोजन को निगलना।
4. बोलने में सहायता करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

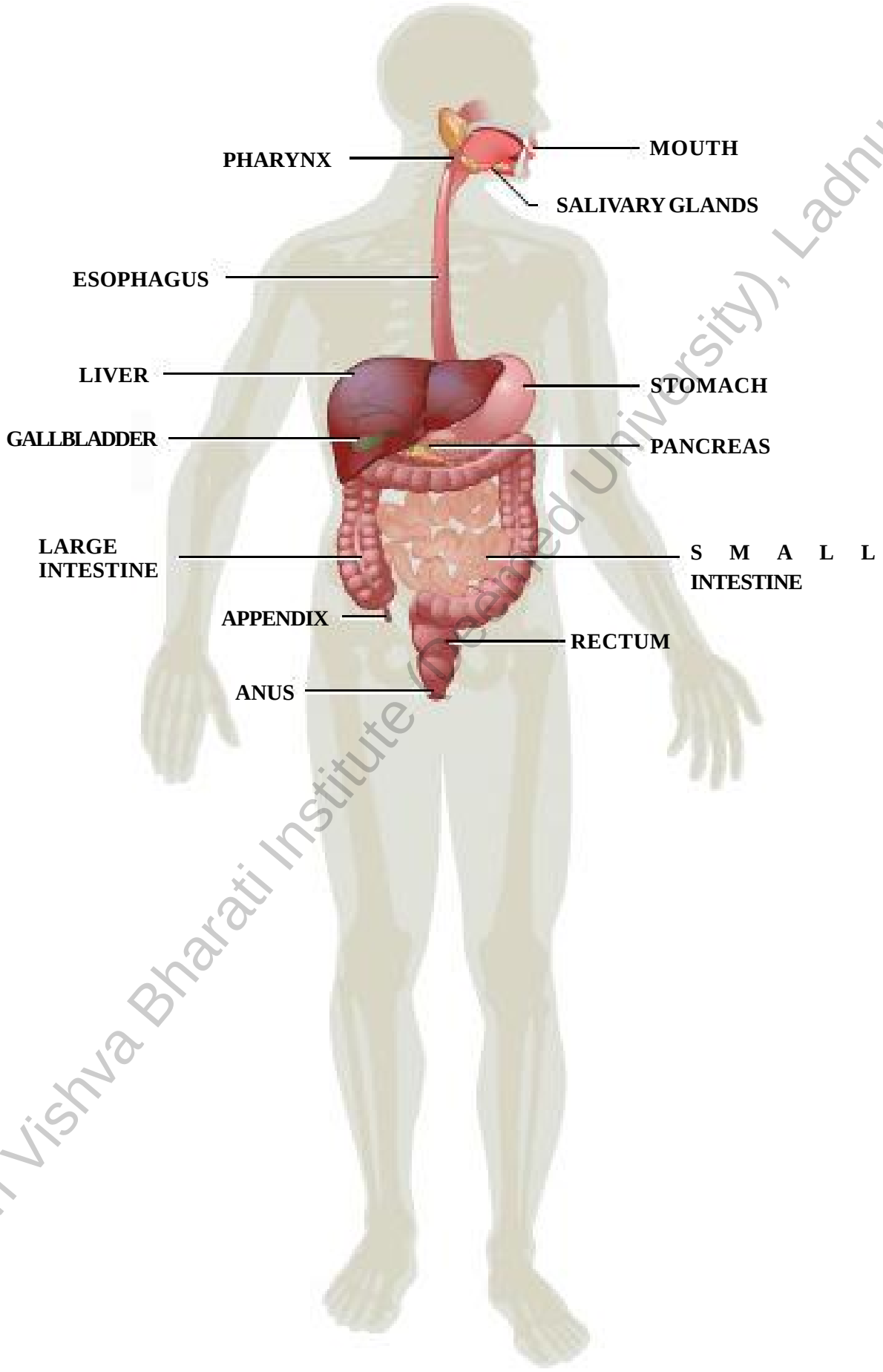

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हम सब भोजन करते हैं तथा सर्वप्रथम भोजन को दांतों द्वारा चबाते हैं। जीभ इस कार्य में सहायता करती है। यहां भोजन में लार मिलती है, जो भोजन को पचाने में सहायता करती है।

2.2.1.3 लार (saliva)

लार क्षारीय होती है। इसमें दो एंजाइम टायलिन तथा म्यूसिन (Ptylin and mucin) पाये जाते हैं। टायलिन के द्वारा मण्ड को घुलनशील शर्करा में बदल दिया जाता है तथा म्यूसिन भोजन को चिकना बनाये रखता है। लार में 99.2 प्रतिशत जल तथा 0.8 प्रतिशत तरल रासायन होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें क्षार रूप में सोडियम, पोटेशियम, कैल्शियम के बाई-कार्बोनेट उपस्थित रहते हैं।

हमारे मुंह में कुल छः लार ग्रंथियां होती हैं। इनमें तीन दायीं तरफ तथा तीन बायीं तरफ, जो निम्न हैं—

1. कर्ण पूर्व ग्रंथियाँ (Parotid)
2. जिह्वाधर ग्रंथियाँ (Sublingual)
3. अव-अधोहनु ग्रंथियाँ (Sub-mandibular)

2.2.2 ग्रसनी (Phorynx)

मुख गुहा के पीछे का भाग जो कीप के समान होता है, उसे ग्रसनी कहते हैं। यह लगभग 12-15 से.मी. लम्बा होता है। चबाया हुआ भोजन इसी स्थान से होकर ग्रास नली में जाता है। ग्रसनी में सात द्वार खुलते हैं, जो निम्न हैं—

- ❖ कर्ण कंठनली-2
- ❖ पश्च नासा रन्ध्र-2
- ❖ मुंह-1
- ❖ स्वर-यंत्र-1
- ❖ ग्रासनली-1

ग्रसनी में पेशियों के तीन स्तर होते हैं। पूरी ग्रसनी को निम्न तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है—

- ❖ नासा ग्रसनी (Nose phorynx)
- ❖ मुख ग्रसनी (Oral phorynx)
- ❖ स्वर-यंत्र ग्रसनी (Laryngeal Phorynx).

उक्त नासा ग्रसनी श्वसन मार्ग के पीछे स्थित होती है। यहां कर्ण कंठ नली खुलती है। मुख ग्रसनी मुंह के पीछे रहती है। इसके दोनों तरफ टॉन्सिल होते हैं। स्वर-यंत्र ग्रसनी स्वर-यंत्र के पीछे होती है। यह सबसे नीचे वाला भाग है, जो अंत में ग्रास नली में खुलता है।

2.2.3 ग्रास नली (Oesophagus)

यह लगभग 25-26 से.मी. लम्बी एवं संकरी नली है। यह गर्दन के पीछे से प्रारम्भ होती है तथा रीढ़ की दसवीं कशेरुका के पास स्थित तनुपट (diaphragm) को छेदकर उदरगुहा में प्रवेश कर जाती है। वहाँ इसका संबंध आमाशय से होता है।

ग्रासनली में पेशियों की तीन परतें होती हैं, जिससे इसकी दीवार मोटी तथा मांसल दिखती है। सबसे भीतर वाली सतह श्लेष्मिक झिल्ली की होती है, जिससे श्लेष्मा स्रावित होता है। ग्रासनली अनैच्छिक पेशियों की बनी होती है।

ग्रासनली, श्वास नली के पीछे स्थित होती है। भोजन श्वासनली को पार कर ग्रासनली में जाता है। ऐसी स्थिति में कंठच्छद (epiglotis) के द्वारा श्वास नली को ढक दिया जाता है, जिससे भोजन श्वास नली में नहीं जाने पाता है।

ग्रासनली में क्रमांकुचन गति होती है, जिससे भोजन सीधे आमाशय में चला जाता है। इस क्रिया में गुरुत्वाकर्षण भी कार्य करता है।

2.2.4 आमाशय (Stomach)

आमाशय पोषण नाल का सबसे चौड़ा भाग है। इसकी लम्बाई 24-26 से.मी. तथा चौड़ाई 10 से.मी. होती है। यह तनुपट तथा हृदय के नीचे स्थापित होता है। इसका आकार मशक के समान होता है। आमाशय को दो भागों में बांट सकते हैं। हृदयी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भाग तथा दूसरा पक्वाशयी भाग (cordiac and pyloric part)। इनमें पक्वाशयी भाग कम चौड़ा होता है। यह अन्त में एक निकास द्वार होता है, जिसे पक्वाशयी छिद्र (pyloric valve) कहते हैं।

आमाशय में सबसे ज्यादा पेशियां पायी जाती हैं, जो विभिन्न आकार की होती हैं। इनकी गति के कारण ही आमाशय भोजन को और अधिक पीसता तथा मथता है। इसकी दीवारें तीन तहों से मिलकर बनी होती है। इनमें भीतरी तह श्लेष्मिक कला (mucous membrane) की बनी होती है। आमाशय में तीन प्रकार की ग्रंथियाँ होती हैं—

- ❖ हार्दिकी ग्रंथियाँ (Cordiac Gland)
- ❖ बुहन ग्रंथियाँ (Fundus Gland)
- ❖ पक्वाशय ग्रंथियाँ (Pyloric Gland)

उपरोक्त ग्रंथियों से निकलने वाले स्राव को जठर रस (Gastric Juice) कहते हैं। इस जठर रस में 4 प्रतिशत नमक का अम्ल (Hydrocloric Acid) स्वतंत्र अवस्था में रहता है। इसके अतिरिक्त दो एन्जाइम पेप्सीन (Pepsin) तथा रेनिन (Renin) भी पाये जाते हैं। पेप्सीन अपनी क्रिया प्रोटीन पर करती है। रेनिन दूध को फाड़कर उसकी प्रोटीन अलग कर देता है। आमाशय में जब भोजन अच्छी तरह से मथ कर अम्लीय हो जाता है तब धीरे-धीरे करके छोटी आंत में पहुंचता है।

2.2.5 छोटी आंत (Small Intestine)

छोटी आंत आमाशय की पक्वाशयिक द्वार से प्रारम्भ होकर बड़ी आंत तक लम्बी एक नली है। यह जीवित अवस्था में लगभग 6.5 मीटर लम्बी तथा 2.5 से.मी. चौड़ी होती है लेकिन मृत अवस्था में छोटी आंत की लम्बाई लगभग 2.44 मीटर हो जाती है। इसका कारण यह है कि मृत अवस्था में पेशियाँ अपना तनाव खो देती है तथा शिथिल अवस्था में आ जाती हैं। छोटी आंत पेट में कुंडली के रूप में रहती है। इस पूरी आंत को निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है—

- ❖ पक्वाशय (गृहणी) (Duodenum)
- ❖ मध्यातंत्र (Jejunum)
- ❖ शेषांत्र (Ileum).

2.2.5.1 पक्वाशय (गृहणी) (Duodenum)

छोटी आंत्र का प्रथम 25 से.मी. लम्बा भाग पक्वाशय कहलाता है। यह अंग्रेजी के (C) अक्षर की तरह होता है। इसका प्रारम्भ पक्वाशयिक द्वार से है। आमाशय में भोजन जब अच्छी तरह मथकर द्रव जैसा एवं अम्लीय हो जाता है, तब उस समय यह द्वार स्वत: ही खुल जाता है तथा भोजन पक्वाशय में धीरे-धीरे करके चला आता है।

पक्वाशय में भोजन के आने के बाद भोजन पर दो विशेष पाचक रस अपनी क्रिया करते हैं—पित्त रस (Bile Juice) एवं अग्न्याशयिक रस (Pancreatic Juice)। पित्ताशय से पित्तरस निकलकर भोजन को क्षारीय कर देता है, जो जीवाणु नाशक होने से भोजन को सड़ने से भी बचाता है। पित्त रस वैसे तो यकृत में बनता है लेकिन अधिक होने पर यह पित्ताशय में एकत्र होता जाता है। पित्त रस में सोडियम-बाई-कार्बोनेट, टारोकोलेट, ग्लाइकोलेट तथा कोलेस्ट्राल आदि लवण होते हैं। पित्त की उपस्थिति के कारण ही अग्नाशय रस क्रियाशील होकर पाचन का कार्य प्रारम्भ करता है।

अग्न्याशयिक रस (Pancreatic Juice)—इस रस में तीन प्रकार के एन्जाइम पाये जाते हैं—

- ❖ एमाइलोप्सीन (Amylopsin)।
- ❖ ट्रिप्सिन (Tripsin)।
- ❖ स्टेप्सिन या लाइपेज (Steapsin or Lipase)।
- ❖ एमाइलोप्सिन स्टार्च पर क्रिया कर उसे शर्करा में बदल देता है।
- ❖ ट्रिप्सिन, पेप्टोन को पोलीपेप्टाइड में बदल देता है।
- ❖ स्टेप्सिन, वसा को वसीय अम्ल तथा ग्लिसरॉल में बदल देता है।
- ❖ भोजन का अधिकतम पाचन पक्वाशय में ही हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.5.2 मध्यातंत्र (Jejunum)

यह लगभग 2.5 मीटर लम्बी तथा 4 से.मी. चौड़ी नलिका है। इस स्थान पर कोई विशेष कार्य नहीं होता है।

2.2.5.3 शेषांत्र (Ileum)

यह 2.75 मीटर लम्बी तथा 3.5 से.मी. चौड़ी नली है। मध्यातंत्र तथा शेषांत्र कुण्डली के रूप में पेट में रहती है। शेषान्त्र में निम्न चार स्तर होते हैं—

- ❖ ऊपरी आवरण
- ❖ पेशीय आवरण
- ❖ अधोश्लेषमल स्तर
- ❖ श्लेषमलकला स्तर

मध्यातंत्र तथा शेषान्तत्र में तौलिये के रोंयें की तरह उभार लटके रहते हैं, जिन्हें रसांकुर (Villi) कहते हैं। ये भोजन को अवशोषित करती हैं। प्रत्येक दो रसांकुर के मध्य ग्रंथियां होती हैं, जिन्हें आंत्र ग्रंथियां (intestinal gland) कहते हैं। यह आंत्रीयरस (intestinal juice) बनाती है। इस रस में एन्ड्रोकाइनेज नामक रसायन अग्न्याशय को सक्रिय करती है। आंत्रीय रस की उपस्थिति में ही अग्न्याशयिक अपना कार्य करता है। इस आंत्र रस में निम्नलिखित प्रकिण्व होते हैं—

- ❖ एन्ड्रोकाइनेज
- ❖ इरेप्सिन
- ❖ माल्टेज
- ❖ लैक्टेज
- ❖ सुक्रेज।

छोटी आंत्र के भीतर श्लेष्मक कला का विशेष महत्त्व है। इसमें भी आमाशय की तरह कई ग्रंथियां होती हैं, जिनसे श्लेष्मक के अतिरिक्त आंत्र रस भी स्रावित होता है। सम्पूर्ण आंत्र में निम्न ग्रंथियां उपस्थित रहती हैं—

- ❖ लीबरकुन गुहा
- ❖ ब्रुनर ग्रंथियाँ
- ❖ एकान्त ग्रंथियाँ
- ❖ पेयर्स ग्रंथियाँ।

2.2.6 वृहदांत्र (बड़ी आंत्र) (Large Intestine)

छोटी आंत्र के बाद का शेष भाग बड़ी आंत्र कहलाता है। इस वृहदांत्र की लम्बाई 2 मीटर तथा चौड़ाई 7 से.मी. होती है। छोटी आंत्र तथा बड़ी आंत्र के मध्य एक कपाट होता है, जिसे इलियोसिकल (ileo-coecal) कहते हैं। यहाँ से भोजन गुजरने के बाद छोटी आंत्र में वापिस नहीं आने पाता है। इस बड़ी आंत्र को निम्न तीन भागों में बांट सकते हैं—

- ❖ अंधांत्र (Caecum)
- ❖ कोलन (Colon)
- ❖ मलाशय (Rectum)।

2.2.6.1 अंधांत्र (Caecum)

यह 6 से.मी. लम्बी तथा 7.5 से.मी. चौड़ी शैली की तरह एक नली है। इस नली से 5-15 से.मी. लम्बी, संकरी कड़ी तथा बन्द एक नलिका निकलती है। इसे आंत्र-पुच्छ (Vermiform Appendix) कहते हैं। जानवरों में भोजन के पाचन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है लेकिन मनुष्य में इसका कोई कार्य नहीं है। कई बार यह रोगग्रस्त हो जाती है, जिसे आंत्र पुच्छ शोध (Appendicytis) कहते हैं। ऐसी अवस्था में चिकितसा इसे काट कर निकाल देते हैं।

2.2.6.2 कोलन (Colon)

यह लगभग 1.5 मीटर लम्बी तथा 6 से.मी. चौड़ी नली है, जो उलटे 'यू' (U) आकार में पूरी छोटी आंत्र को घेरे रहती है। इसका अन्तिम भाग कुछ दांयी झुककर मलाशय में खुलता है। कोलन को निम्न तीन भागों में बांट सकते हैं—

- ❖ ऊर्ध्वगामी वृहदांत्र (Ascending Colon)
- ❖ अनुप्रस्थ वृहदांत्र (Transverse Colon)
- ❖ अधोगामी वृहदांत्र (Descending Colon)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.6.3 मलाशय (Rectum)

मलाशय 12 से.मी. लम्बा तथा 4 से.मी. चौड़ी एक नलिका है, जो अन्तिम 3-4 से.मी. भाग में काफी संकरी है। इस भाग को गुदा नाल (Anul Canal) कहा जाता है। यह मजबूत संकुचनशील पेशियों की बनी होती है। यह भाग एक छिद्र द्वारा बाहर खुलता है, जिसे मलद्वार (Anus) कहते हैं। इसका बाहरी भाग इच्छाधारी पेशियों का बना होता है। इसलिए मलत्याग की इच्छा होने पर यह भाग खुल जाता है। बड़ी आंत्र में मात्र जल का अवशोषण होता है, जिससे अर्धद्रवीय पदार्थ अर्धठोस मल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस पूरी क्रिया में लगभग 12 से 20 घंटे का समय लगता है।

हमारी पाचन क्रिया में निम्न भागों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है—

- ❖ यकृत (liver)
- ❖ पिताशय (gall-bladder)
- ❖ अग्न्याशय (pancreas)
- ❖ प्लीहा (spleen)।

2.3 यकृत (liver)

यह शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि है। ऊपर दाहिनी तरफ तनुपट के नीचे पसलियों के पास स्थित है। नीचे की पांच-छः पसलियां इसको ढके रहती हैं। इसके दो भाग होते हैं—दाहिना भाग बायें भाग से बड़ा होता है। इसका वजन लगभग 1.5 कि. ग्रा. होता है।

आंतरिक रचना की दृष्टि से पूरा यकृत अनेक खण्डों में बंटा होता है, जिन्हें खण्डिका (lobules) कहते हैं। यकृत के निचले भाग में कई नलिकाएँ होती हैं। इनमें मुख्य रूप से यकृत धमनी (Hepatic Artory), प्रतिहारिणी शिरा (Portal Vain), यकृत वाहिनी (Hepatic Duct) एवं यकृत शिराएँ (Hepatic Vein) मुख्य है। इनमें से यकृत वाहिनी यकृत से पित्त को बाहर ले जाती है।

यकृत शरीर के लिए कई महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। पाचन की दृष्टि से भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है, जो निम्न है—

1. पित्तरस का स्राव करना।
2. ग्लुकोज को ग्लाइकोजन के रूप में संचय करना।
3. ग्लाइकोजन को पुनः ग्लुकोज में बदलने में सहायता करना।
4. आवश्यकता पड़ने पर अमीनो अम्ल तथा वसीय अम्ल से भी ग्लुकोज का निर्माण करना।
5. वसा एवं विटामिन्स का संश्लेषण व संचय करना।
6. कुछ एन्जाइम का निर्माण करना।
7. अकार्बनिक पदार्थों का संचय करना।

2.4 पिताशय (gall-bladder)

यह एक चार इंच लम्बी थैली है, जिसकी क्षमता 50-60 मि.ली. की होती है। इस थैली के मुख्य तीन भाग होते हैं—

- ❖ बुहन (Fundus),
- ❖ पिंड (Body),
- ❖ ग्रीवा (Neck)।

पित्ताशय की ग्रीवा से पित्ताशय वाहिनी (Cystic Duct) प्रारम्भ होती है। यह 1.5 ईंच लम्बी एक नली है। यह नली आगे चलकर यकृत से निकली यकृत वाहिनी (Hepatic Duct) में मिल जाती है। दोनों वाहिनी मिलकर सामान्य पित्त वाहिनी (Bile Duct) बनाती हैं, जो ग्रहणी में खुलती है। पित्ताशय तथा वाहिनियों का आन्तरिक भाग श्लेष्मल कला का बना होता है। वैसे इसकी निम्न तीन सतह होती हैं—

- ❖ बाहरी पर्युदर्या पर्त
- ❖ मध्य की आरेखित पेशी ऊतक
- ❖ भीतरी श्लेष्मल कला।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पित्त का संगठन

पित्त का स्राव यकृत से होता है तथा अधिक मात्रा में निकला पित्त पित्ताशय में संचित कर लिया जाता है। एक स्वस्थ व्यक्ति में 0.5 लीटर से 1 लीटर तक पित्त प्रतिदिन स्रावित होता है। पित्त के महत्त्वपूर्ण गुण एवं कार्य निम्न हैं—

1. यह क्षारीय द्रव है।
2. इसमें पित्त लवण, कोलेस्ट्राल, लेसिथल, पित्त वर्णक कोशिकाएँ पाई जाती हैं।
3. इसमें ग्लाइकोकोलिक, टारोकोलिक अम्लों के सोडियम और पोटेशियम लवण होते हैं।
4. पित्त में दो प्रकार के रंग बिलिरूबिन (Bilirubin) और बिलिकर्डिन (Bilikerdin) होते हैं, जो लाल रक्त कणों के टूटने से बनते हैं।

पित्त के मुख्य कार्य

1. आमाशय से आये हुए भोजन को क्षारीय बनाना।
2. वसा के इमल्सीकरण में सहायता करना।
3. आंतों के हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करना।
4. पोषण नाल की क्रमांकुंचन गति को बढ़ाना।
5. यकृत के उत्सर्जी पदार्थों को बाहर ले जाना।
6. आहार को सड़ने से रोकना।

2.5 अग्न्याशय (Pancreas)

अग्न्याशय की लम्बाई 15 से.मी. तथा चौड़ाई 4 से.मी. होती है। इसका आकार चपटा तथा लम्बा होता है। ये दाहिनी और मोटी तथा बायीं ओर पतली और नुकीली होती हैं। यह उदर के ऊपरी मध्य भाग से लेकर बायीं तरफ प्लीहा तक फैली रहती हैं। मटमेले रंग की इस ग्रंथि पर शहतूत की भांति छोटे-छोटे उभार होते हैं।

अग्न्याशय अन्त:स्रावी एवं बहि:स्रावी दोनों प्रकार की ग्रंथि है। इसके अन्त:स्राव में इन्सुलिन तथा ग्लुकागोन नामक हार्मोन्स का स्राव होता है तथा बहि:स्राव में भोजन को पचाने के लिए निम्न एन्जाइमों का स्राव होता है—

1. ट्रिप्सिन (Tripsin),
2. स्टियाप्सिन (Steapsin),
3. एमाइलोप्सिन (Amylopsin)।

2.6 प्लीहा (spleen)

यह लगभग 5 इंच लम्बी तथा 3 इंच चौड़ी एक ग्रंथि है, जो नीलापन लिये हुए लाल रंग की होती है। यह स्पंज की तरह होती है। इस स्पंज में रक्त गाढ़े रूप में भरा रहता है। यह ग्रंथि उदर के ऊपरी भाग में बायीं तरफ तनुपट से सटी रहती है। अग्न्याशय का पुच्छ भाग इससे सटा रहता है। इसका मुख्य कार्य लाल रक्त कण, जो अपना जीवन काल पूर्ण कर चुके हों, उनमें से आवश्यक तत्त्वों को निकाल लेना है।

प्लीहा पाचन क्रिया के महत्त्वपूर्ण अंग यकृत को रक्त पहुंचाने का कार्य करता है। इस क्रिया के लिए प्लीहा में संयोजक तथा लसीकाभ ऊतक का जाल बिछा रहता है, जिनमें अनेक रक्त कोशिकाएँ रहती हैं। यह रेशेदार तथा साधारण पेशी तंतु की बनी संपुटिका (Capsules) से ढकी रहती है। इस पेशी तंतु में कुछ-कुछ अंतराल के बाद सिकुड़न होती है, जिससे रक्त प्लीहा से निकलकर यकृत की ओर चला जाता है।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—पाचन तंत्र का चित्र सहित वर्णन कीजिए।

प्रश्न—पित्त का संगठन एवं कार्यों को बताइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.0 रोग—दमा एवं ब्रोंकाइटिस, मधुमेह, रक्ताल्पता

3.1 दमा (Asthma)

आप यह जान चुके हैं कि नासाद्वार और नासागुहा से होती हुई वायु फेरिंक्स (गले का भाग) में जाती है। उसके बाद स्वरयंत्र को पार करती हुई, श्वासनली से होती हुई, श्वसनी और फिर श्वसनिकाओं के द्वारा फेफड़ों में पहुंचती है। श्वासनली दो भागों में विभाजित होकर दो श्वसनियों में परिवर्तित होती हैं और प्रत्येक श्वसनी छोटी-छोटी श्वसनिकाओं में विभक्त हो जाती हैं। दोनों फेफड़ों के अन्दर अनेक वायु प्रकोष्ठ (Alveoli) होते हैं। हर वायु प्रकोष्ठ में श्वसनिकाओं की शाखाएँ वायु पहुंचाने का कार्य करती हैं। वायु प्रकोष्ठों की दीवार में पतली-पतली रक्त केशिकाओं का जाल बिछा होता है। इसमें अत्यन्त सघन दाब के साथ रक्त प्रवाहित होता रहता है। यह रक्त वह होता है, जो शुद्धिकरण के लिए फेफड़ों तक लाया जाता है। इस वायु में कार्बन-डाई-ऑक्साइड अधिक होती है। वायु प्रकोष्ठों की दीवार के आर-पार ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है। वायु-प्रकोष्ठ में श्वास के साथ लाई गई वायु से ऑक्सीजन रक्त में प्रवेश करती है जबकि रक्त केशिकाओं से कार्बन-डाई-ऑक्साइड निकलकर वायु प्रकोष्ठों में आ जाती है और नि:श्वास के साथ उसे बाहर कर दिया जाता है। इस प्रकार रक्त ऑक्सीजन ग्रहण कर आगे चला जाता है और शरीर की प्रत्येक कोशिका को वही ऑक्सीजन बांट देता है। इसे फिर ऊर्जा और चयापचय की क्रिया में उपयोग में ली जाती है।

जब किसी कारण श्वास के साथ धूलकण, कार्बन कण, कीटाणु, जीवाणु या इसी प्रकार के कतिपय अन्य विजातीय एवं अनावश्यक पदार्थ श्वासनली से होते हुए श्वसनियों और श्वसनिकाओं में पहुंचते हैं तो श्वसनियों और श्वसनिकाओं की दीवार में अनावश्यक उद्दीपन उत्पन्न होता है। इसकी ऐनक कोशिकाएँ और श्लेष्मा कोशिकाएँ उद्दीप्त हो जाती हैं तथा मुख की ओर लहराने लग जाती है तब खांसी तथा थूक के साथ उन सभी को बाहर निकाल दिया जाता है। श्लेष्मा कोशिकाओं से श्लेष्मा का स्राव उन सभी विजातीय पदार्थों को आगे नहीं बढ़ने देती। परन्तु जब इस प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियाँ सीमा से बाहर हो जाती हैं तब इन श्वसनियों तथा श्वसनिकाओं की पेशियों में सूजन आ जाती है। श्लेष्मा का स्राव अत्यधिक हो जाता है, जो नलिका के अन्दर जमा होने लगता है। नलिका की सूजी हुई दीवार सूखकर कड़ी होने लगती है। परिणाम यह होता है कि वायु मार्ग सिकुड़कर इतना छोटा हो जाता है कि श्वास लेने में अत्यधिक कठिनाई होती है। अत: श्वास का प्रयास कम हो जाता है। बाह्य श्वास लम्बा होने लगता है, सीने पर दबाव के साथ बार-बार खांसना पड़ता है, फिर भी पूरी तरह श्वास नहीं लिया जा सकता। **इसी अवस्था को दमा कहते हैं।**

दमा की मुख्यत: तीन अवस्थाएँ होती हैं—प्रथम अवस्था में श्वास नलियों (श्वसनियों और श्वसनिकाओं) की दीवार में सूजन, द्वितीय अवस्था में इन नलियों की दीवार की मांसपेशियों में ऐंठन और खिंचाव तथा तृतीय अवस्था में इन नलियों के स्राव (श्लेष्मा-कफ) में अति असामान्य वृद्धि होती है। उपरोक्त तीनों क्रमिक स्थितियों के कारण वायु-मार्ग अत्यंत संकरा हो जाता है और वायु के आवागमन के लिए जगह की कमी हो जाती है तथा सांस लेने में असुविधा होने लग जाती है। सांस की गति तेज हो जाती है। छाती में सांय-सांय, चूं-चूं की आवाज सुनाई देती है। इन वायु-नलिकाओं की ये अनैच्छिक पेशियों स्वत: फैलती-सिकुड़ती रहती हैं।

3.1.1 दमा के लक्षण

1. खांसी के साथ श्वास लेने में असुविधा।
2. श्वास की गति अत्यन्त तेज हो जाना।
3. नाक से पानी गिरना।
4. आंखों का लाल हो जाना।
5. पित्ती उछलना।
6. खुजली हो जाना।
7. छींकें आना।
8. बुखार हो जाना।

3.1.2 दमा के कारण एवं प्रकार

दमा एक वंशानुगत रोग है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिवार के सदस्यों को रोगी बनाता है। अर्थात् एक ही वंश की पीढ़ियों में, जिनमें किसी भी रूप में रक्त का सम्बन्ध होता है, दमा होने की पूरी संभावना बनी रहती है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कि हर पीढ़ी के हर सदस्य को दमा हो ही जाए। बीच की एक-दो पीढ़ियां अथवा एक ही पीढ़ी के एक-दो सदस्य उससे मुक्त हो सकते हैं। परन्तु उसके बाद की पीढ़ियों में और समकालीन अन्य सदस्यों में दमा होना पूरी तरह स्वाभाविक है।

दमा के प्रकार—

एलर्जिक दमा

दमा के रोगियों में 75 से 80 प्रतिशत रोगी एलर्जिक दमा से पीड़ित होते हैं। हमारी श्वास के द्वारा लाखों की संख्या में जीवाणुओं तथा अन्य रासायनिक लघु अणु (एलर्जेन) हमारे नासाद्वार में प्रवेश करते हैं। कई व्यक्तियों के शरीर का रोग-प्रतिरोधी तंत्र इन अणुओं के प्रति अतिसंवेदनशील होता है। इसके कारण इस तंत्र की कोशिकाएँ (हाइपरसेन्सिटिव टी सेल) प्रतिविष (एन्टीबाडी) का निर्माण करने में जुट जाती हैं। ये एन्टीबाडी खाली समय में शरीर में स्थित हिस्टामीन नामक रसायनों से भरी मास्टर कोशिकाओं से चिपक जाती हैं। एलर्जेन के पुनः प्रवेश करने पर उन्हें नष्ट करने के लिए श्वास नलियों में उभार के रूप में स्थित मास्टर कोशिकाओं से चिपकी एन्टीबाडी उत्तेजित हो जाती हैं, जिससे मास्टर कोशिका फट जाती है। इनके फटने से हिस्टामीन नामक रसायन मुक्त होकर इन पतली-संकरी श्वास-नलिकाओं में भर जाता है। इसके कारण यहां सिकुड़न, जकड़न और ऐंठन पैदा हो जाती है तथा दमा का दौरा तेज हो जाता है। एलर्जिक दमा में नाक से पानी गिरना, आंखों का लाल हो जाना, पित्ती उछलना, खुजली होना, बुखार हो जाना, अतिशय छींकें आना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

विशेष मौसम में खिलने वाले फूलों के परागकण, जन्तुओं के रोम, खुशबू पैदा करने वाले सेन्ट और अगरबत्ती, धुआं और धूलकण, बरसात का मौसम, तम्बाकू एवं पौधों की कटाई के मौसम में उड़ते हुए भूसे-छिलके आदि के कारण उत्पन्न हुई एलर्जी से दमा होने की संभावना रहती है। अनेक प्रकार के डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ, तरल पेय, कुछ दवाइयां, रंग-रोगन में प्रयोग होने वाले रसायन तथा कई रंग एलर्जिक दमा के कारण बनते हैं।

संक्रमणजन्य दमा

जब गले में संक्रमण अथवा श्वासमार्ग से विषाणु, रोगाणु एवं परजीवियों के प्रवेश के कारण दमा होता है, उसे संक्रमणजन्य दमा कहते हैं। कई बार पेट में कीड़ों की उपस्थिति के कारण भी दमे की शिकायत पायी जाती है।

पुरानी खांसीजन्य दमा

खांसी के कई कारण हैं परन्तु यदि खांसी की शिकायत लम्बे समय तक बनी रहे तो श्वासनली तथा इस प्रक्रिया से जुड़ी समस्त मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं। इससे श्वास से संबंधित नलिकाओं में सूजन तथा एंठन हो जाती है, जो दमा का कारण बनती हैं।

कार्डियक दमा

हृदय से संबंधित कुछ रोगों में, जैसे—माइट्रल स्टेनोसिस, हृदय में छेद, उच्च रक्तचाप एवं हृदय में सूजन आदि रोगों में श्वसन तंत्र ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाता है। इसके कारण शनैः-शनैः व्यक्ति दमा रोग से पीड़ित हो जाता है।

संवेगात्मक दमा

तनाव, भय, क्रोध, दुःख, प्रतिकूल परिस्थितियों आदि में भी दमा हो सकता है, क्योंकि इन स्थितियों में श्वास लेने का तरीका असामान्य हो जाता है। इससे श्वास की गति बढ़ जाती है एवं बढ़ने के साथ-साथ उथली एवं छिछली भी हो जाती है। इसका कारण यह होता है कि प्रतिकूल मानसिक स्थितियों से उत्पन्न स्नायविक विक्षेपों के कारण श्वासनली एवं श्वसनिकाओं में सिकुड़न एवं एंठन उत्पन्न हो जाती है, जिससे दमा हो जाता है।

रक्तविकारजन्य दमा

हिमोग्लोबिन की कमी की स्थिति में कई बार श्वास लेने में कठिनाई होती है, जिससे दमा हो जाता है। यह रोग हिमोग्लोबिन की पूर्ति होने पर ठीक भी हो जाता है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Lalitpur

3.2 ब्रोंकाइटिस (श्वसनी विस्फार)

श्वसन-तंत्र में आपने पढ़ा था कि हमारे फेफड़ों में अनेक श्वास वाहिकाएँ होती हैं, जिनकी संख्या लाखों में होती है। इन्हें श्वसनिक (Bronchioles) कहते हैं। श्वास श्वसनिक से श्वास-प्रकोष्ठ (Alveoli) में पहुंचती है। यहां पर ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड का विनिमय होता है। कई बार श्वास के साथ वायरस, कीटाणु, फंगस आदि विजातीय पदार्थ इस स्थान तक पहुंच जाते हैं। इससे इन स्थानों पर सूजन हो जाती है, जो ऑक्सीजन तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड के विनिमय में अवरोध उत्पन्न करती है। यहां ब्रोकोस्पास्य (श्वसन संबंधी नलिकाओं का संकरी होकर ऐंठ जाना) पैदा हो जाता है। इस ब्रोकोस्पास्य तथा विजातीय पदार्थ को दूर करने के लिए खांसी उत्पन्न होती है, इसे ही ब्रोंकाइटिस कहते हैं।

3.2.1 ब्रोंकाइटिस के प्रकार

ब्रोंकाइटिस रोग कई प्रकार के होते हैं। लेकिन इस रोग के मुख्यत: दो प्रकार ही होते हैं—

I. तीव्र ब्रोंकाइटिस,
II. जीर्ण ब्रोंकाइटिस।

3.2.2 ब्रोंकाइटिस के लक्षण

I. तीव्र ब्रौंकाइटिस के लक्षण—इस रोग के लक्षण एक-दो दिन में बहुत तेजी से उभरते हैं तथा 5-6 दिन से लेकर 20-21 दिन में लक्षण कम हो जाते हैं लेकिन रोग बना रहता है। अत: ऐसी स्थिति में भी उपचार बन्द नहीं करना चाहिए। इस रोग के मुख्य लक्षण निम्न हैं—

1. तेज आवाज के साथ श्वास का आना-जाना।
2. सूखी खांसी आना एवं सीने में दर्द।
3. 100-101^{0}F तक बुखार रहना।
4. सीना भींचा हुआ-सा रहना।
5. गला जकड़ा हुआ या बैठा हुआ-सा रहना।
6. गले में कफ जकड़ा रहना।
7. जीभ का रूखा-सूखा-सा होना।
8. खांसी के साथ झागदार कफ निकलना।
9. कुछ दिन होने के बाद पीला कफ निकलना।
10. स्टेथोस्कोप से सुनने पर सीने के दोनों तरफ सीटी जैसी ध्वनि सुनाई देना आदि।

II. जीर्ण ब्रौंकाइटिस के लक्षण—जब उपरोक्त लक्षण काफी समय तक बने रहें और उनका उपचार सही तरह से न कराया जाए तो जीर्ण ब्रौंकाइटिस के लक्षण उभरने लगते हैं, जो निम्न हैं—

1. बुखार समाप्त हो जाता है।
2. सीने का दर्द कम हो जाता है।
3. झागयुक्त कफ निकलना।
4. हृदय के आकार में वृद्धि।
5. श्वास का छोटा होना।
6. घरघराहट जैसी ध्वनि का होना।
7. श्वास नलियों का क्षतिग्रस्त हो जाना।
8. दुर्गंधित बलगम का निकलना।
9. बलगम के साथ कभी-कभी रक्त का आना।
10. शीत ऋतु में ज्यादा तथा ग्रीष्म ऋतु में प्रकोप का कम हो जाना आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.2.3 ब्रोंकाइटिस के कारण

I. तीव्र ब्रौंकाइटिस के कारण—

1. मुख्य रूप से एक या एक से अधिक निम्न रोगाणु इस रोग के कारण बनते हैं—
   - ❖ न्यूमोकोकस
   - ❖ बेसिलस ऑफ फ्रीड लेण्डर
   - ❖ स्ट्रेप्टोकोकस
   - ❖ माइक्रोकोकस
   - ❖ केटरेलिस इन्फ्ल्युंजा बेसिलस आदि।
2. रोग प्रतिरोधक क्षमता के कम होने से भी यह रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।
3. पुराना साइनोसाइटिस रोग भी इस रोग का कारण बनता है।
4. धूम्रपान इस रोग के मुख्य कारणों में से एक है।
5. प्रदूषित वातावरण, धूल आदि के कण।
6. फार्मल्डिहाइड अम्ल।
7. एसिटोन नामक रसायन आदि इस रोग के मुख्य कारण हैं।

II. जीर्ण ब्रौंकाइटिस के कारण—

1. न्यूमोनिया का बार-बार होना।
2. तीव्र बोकाइटिस का बार-बार होना।
3. गठिया रोग का उपस्थित होना।
4. सीने या श्वास-नलिकाओं में किसी प्रकार से चोट लगना।
5. ढ़लती उम्र (बुढ़ापे में) यह रोग ज्यादा होता है।

नोट—किसी भी प्रकार की खांसी जब दो-तीन सप्ताह से ज्यादा हो तब थूक की जांच अवश्य करा लेनी चाहिए।

3.2.4 दमा एवं ब्रोंकाइटिस का जीवन-विज्ञान द्वारा प्रबन्धन

दमा एवं ब्रौंकाइटिस का प्रेक्षा-चिकित्सा उपचार लगभग एक जैसा ही है। सर्वप्रथम ध्यान देने योग्य विशेष बातें—

1. गर्म जल पीयें।
2. धूम्रपान न करें।
3. सुबह के समय फेफड़ों से कफ को बाहर निकाल दें।
4. प्रोटीन युक्त भोजन करें।
5. वाष्प स्नान एवं वाष्प सूंघने से काफी लाभ होता है।
6. प्रदूषित वातावरण से दूर रहें।
7. रहने के स्थान में पर्याप्त मात्रा में वायु एवं प्रकाश पहुंचाना चाहिए।
8. हमेशा एयरकंडीशन का प्रयोग न करें, खुली हवा में भी रहें।
9. प्रातः भ्रमण।
10. गरिष्ठ भोजन एवं तनाव से दूर रहें।
11. समय-समय पर शुद्धि क्रियाएँ करते रहना चाहिए।

आहार चिकित्सा—

1. मसालेयुक्त भोजन एवं तनाव से दूर रहें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. प्रोटीन युक्त भोजन करें।

3. शाम का भोजन हल्का एवं सूर्यास्त से पूर्व लें।

4. गाजर का रस, पालक, अंकुरित गेहूं, हाथकुटा चावल, चीकू, संतरा, सेव तथा आम का भरपूर सेवन करें।

5. यथासंभव दीर्घश्वास का प्रयोग करें। उपवास काल में नींबू-पानी-शहद मिलाकर प्रयोग करें।

6. तले-भुने एवं गरिष्ठ भोजन का प्रयोग न करें।

7. भोजन संयम से करें। रुचिकर होने पर भी ठूंस-ठूंस कर कदापि न करें।

षटकर्म—जल नेति, सूत्र नेति, घृत नेति, कुंजल एवं शंख प्रक्षालन इस रोग को दूर करने के लिए अति आवश्यक हैं अत: समय-समय पर इनका प्रयोग करते रहें।

आसन—पेट और श्वास की क्रियाएँ, पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, हृदयस्तंभासन, नौकासन, सुप्त वज्रासन, इष्ट वंदन।

प्राणायाम—सूर्यभेदी, उज्जाई, अनुलोम-विलोम, नाड़ीशोधन, सूक्ष्म भस्त्रिका (कुंभक न करें)।

प्रेक्षा—फुफ्फुस्स पर नारंगी रंग का ध्यान—10 मिनट।

अनुप्रेक्षा—'मेरी श्वासनली और फेफड़े स्वस्थ हो रहे हैं'—15 मिनट।

जप—'ह्रीँ'—10 मिनट।

तप—शीतल पदार्थों का वर्जन।

3.3 मधुमेह (Diabetes)

3.3.1 अर्थ

'मधुमेह' दो शब्दों से मिलकर बना है—'मधु' एवं 'मेह'। यहां 'मधु' का अर्थ है—'शहद' या इसके समान मीठा तथा मेह का अर्थ है—'बरसना' या पानी के समान गिरना। इस प्रकार 'मधुमेह' शब्द का अर्थ होता है—शहद के समान मीठा मूत्र विसर्जन करना। आयुर्वेद में इसे 'वातज्' प्रमेह रोग माना गया है, इसलिए इसे 'मधु प्रमेह' भी कहते हैं।

3.3.2 परिचय

भोजन से प्राप्त कार्बोज का 100 प्रतिशत, प्रोटीन का 58 प्रतिशत तथा वसा का 10 प्रतिशत भाग ग्लुकोज में बदल जाता है। रक्त में ग्लुकोज का स्तर 120 मिलीग्राम से लेकर 180 मिलीग्राम प्रति 100 मिलीलीटर तक रह सकता है। इससे अधिक होने पर गुर्दों की ग्लोमेरुलर फिल्ट्रेट से रीनल ट्यूबल्स की ग्लुकोज को पुन: शोषित करने की शक्ति समाप्त होने लगती है। ऐसी स्थिति में ग्लुकोज गुर्दों से छनकर मूत्र के साथ बाहर निकलने लगता है।

रक्त में ग्लुकोज का सामान्य स्तर बनाए रखने में अग्न्याशय से निकलने वाला इन्सुलिन (Insulin) नामक हार्मोन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह हार्मोन अग्न्याशय के लैंगरहेन्स द्वीपिका की बीटा कोशिकाओं में उत्पन्न होता है। इसका स्राव रक्त में ग्लुकोज की मात्रा बढ़ाने के साथ-साथ होता है। इन्सुलिन, पेशियों, वसीय ऊतकों व अन्य ऊतकों में ग्लुकोज की ग्रहणशीलता बढ़ा देता है। इससे रक्त में ग्लुकोज का स्तर सामान्य से अधिक नहीं होने पाता है। इस क्रिया में इन्सुलिन अतिरिक्त ग्लुकोज को ग्लाइकोजन तथा अघुलनशील पॉलीसैकराइड के रूप में बदलकर यकृत तथा अन्य पेशियों में जमा कर देता है जिससे रक्त में ग्लुकोज की मात्रा सामान्य बनी रहती है। जब रक्त में ग्लुकोज की मात्रा सामान्य से कम होने लगती है, तब अग्न्याशय की अल्फा कोशिकाओं से निकलने वाला एक अन्य 'ग्लुकागोन' नामक हार्मोन ग्लाइकोजन को पुन: ग्लुकोज में बदलकर रक्त में पहुंचा देता है। इससे रक्त में ग्लुकोज का स्तर सामान्य से कम नहीं होने पाता है। **यदि रक्त में ग्लुकोज का स्तर 60 मि. ग्रा. प्रति 100 मिलीलीटर से कम हो जाए तो व्यक्ति बेहोश हो सकता है।** पेशियों में एकत्रित ग्लाइकोजन पेशियों की सक्रियता के काम आता है।

ग्लुकोज का मुख्य कार्य ऊर्जा का उत्पादन है। कोशिका में ग्लुकोज तथा ऑक्सीजन की क्रिया के फलस्वरूप ऊर्जा उत्पन्न होती है। लेकिन ग्लुकोज का कोशिका में प्रवेश तथा ऊर्जा उत्पादन की क्रिया इन्सुलिन की उपस्थिति में होती है। कोशिका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के रिसेप्टर में कोई विकृति आने से पर्याप्त इन्सुलिन इसमें प्रवेश नहीं कर पाता है, जिससे ग्लुकोज का प्रवेश नहीं हो पाता है। इसके कारण रक्त में ग्लुकोज का स्तर बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी कारण हो सकते हैं कि इन्सुलिन का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में न हो या इन्सुलिन निष्क्रिय हो या शरीर में इन्सुलिन के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न हो जाए। ऐसी स्थिति में भी रक्त में ग्लुकोज की मात्रा सामान्य से ज्यादा हो जाती है। रक्त में ग्लुकोज का स्तर प्रातः खाली पेट 80–100 मि.ग्रा. प्रति 100 मि. ली. तथा भोजन करने के दो घंटे के बाद 100–120 मि.ग्रा. प्रति 100 मि.ली. होना चाहिए। इससे कम या ज्यादा नहीं। रक्त में ग्लुकोज की मात्रा सामान्य से कम या ज्यादा होना ही 'मधुमेह' है।

3.3.3 मधुमेह के प्रकार

मधुमेह (Diabetes Mellitus) भी दो प्रकार का होता है—

I. टाइप–I इन्सुलिन आश्रित मधुमेह (Insulin Dependent Diabetes)
II. टाइप–II इन्सुलिन अनाश्रित मधुमेह (Non-insulin Dependent Diabetes)

I. टाइप–I (Type-I)

- ❖ इसे इन्सुलिन आश्रित मधुमेह भी कहते हैं।
- ❖ इसे अपरिपक्व मधुमेह (Juvenile Type Diabetes) भी कहते हैं।
- ❖ यह 45 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को होता है।
- ❖ इसमें बाहर से इन्सुलिन लेना ही पड़ता है।
- ❖ इस रोग के लक्षण एक–दो माह में ही तीव्र रूप धारण कर लेते हैं।
- ❖ इस रोग के रोगी का वजन सामान्य या सामान्य से कम पाया जाता है।
- ❖ अधिकांशतः यह रोग बचपन में ही हो जाता है।

II. टाइप–II (Type-II)

- ❖ इसे इन्सुलिन अनाश्रित मधुमेह भी कहते हैं।
- ❖ बड़ी उम्र में होने के कारण इसे परिपक्व मधुमेह (Maturity Type Diabetes) भी कहते हैं।
- ❖ यह 45 वर्ष के बाद होता है।
- ❖ इसमें बाहर से इन्सुलिन लेने की आवश्यकता हो भी सकती है और नहीं भी।
- ❖ इसके लक्षण धीरे–धीरे उभरते हैं।
- ❖ 45 प्रतिशत रोगियों का वजन सामान्य से अधिक पाया जाता है।
- ❖ 90–94 प्रतिशत मधुमेह के रोगी इस रोग से ही पीड़ित होते हैं।

III. गर्भावस्थाकालीन मधुमेह (Pregnancy Diabetes)

- ❖ गर्भावस्था के समय अधिकांश महिलाएँ इस रोग से पीड़ित हो जाती हैं इसलिए इसे गर्भावस्थाकालीन मधुमेह (Pregnancy Diabetes) कहते हैं।
- ❖ यह एक सामान्य प्रक्रिया है, जो बच्चे के जन्म के साथ ठीक हो जाती है।
- ❖ यदि महिला गर्भावस्था से पूर्व मधुमेह रोग से पीड़ित है तब उसे विशेष सावधानी रखनी चाहिए अन्यथा निम्न विकृतियां हो सकती हैं—
  - ❋ शिशु का वजन सामान्य से बहुत ज्यादा हो जा सकता है।
  - ❋ शिशु का वजन सामान्य से बहुत कम हो जा सकता है।
  - ❋ शिशु का आकार सामान्य से बहुत कम रह जा सकता है।
  - ❋ गर्भपात हो सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

❋ गर्भ में शिशु की मृत्यु हो सकती है।
❋ समय से पूर्व प्रसव हो सकता है।
❋ शिशु में कई जन्मजात विकृतियाँ हो सकती हैं।

3.3.4 मधुमेह के लक्षण– मधुमेह रोग में बहुत सारे लक्षण उभरकर आते हैं लेकिन सभी रोगियों में सभी लक्षण नहीं मिलते हैं। इस रोग के मुख्य लक्षण निम्न हैं—

- ❖ मधुमेह के रोगी को पेशाब बहुत ज्यादा आती हैं।
- ❖ रोगी भूख के कारण खाने को बेचैन रहता है।
- ❖ वजन का कम हो जाना।
- ❖ घावों का जल्दी न सूखना।
- ❖ त्वचा और मसूड़ों में विकार होना।
- ❖ हाथ-पैरों का सुन्न हो जाना।
- ❖ पेशाब पर चींटी लगना।
- ❖ बेहोशी आना या चक्कर आना।
- ❖ स्वप्न ज्यादा आना आदि।
- ❖ रोगी को प्यास बहुत लगती है।
- ❖ बार-बार मुंह सूखता है।
- ❖ कमजोरी आना तथा कार्यों से शीघ्र थकावट होना।
- ❖ गुप्तांगों के आस-पास खुजली का होना।
- ❖ नजर कमजोर हो जाना।
- ❖ यौन दुर्बलता या नपुंसकता।
- ❖ गैंगरिन होना (घावों का सड़ना)।
- ❖ पसीना ज्यादा आना।

3.3.6 मधुमेह रोग के कारण – मधुमेह रोग कई कारणों से होता है। एक ही व्यक्ति में दो-तीन या अधिक कारण दिखाई देते हैं। मुख्यत: मधुमेह रोग के निम्न कारण हैं—

- ❖ आनुवंशिक
- ❖ तनाव
- ❖ हार्मोन्स
- ❖ जाति, देश तथा परिवेश
- ❖ उम्र
- ❖ अन्य कारण
- ❖ भयहीनता
- ❖ मोटापा
- ❖ औषधियाँ
- ❖ नशा
- ❖ व्यवसाय
- ❖ वसायुक्त भोजन
- ❖ संक्रमण
- ❖ रोग
- ❖ गर्भावस्था
- ❖ लिंग

3.3.5.1 आनुवंशिक – मधुमेह एक वंशानुगत रोग है। मधुमेह से पीड़ित रोगियों में 45 प्रतिशत लोग ऐसे होते हैं, जिनके पूर्वजों में मधुमेह रोग था। मधुमेह रोग माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि से बच्चों में आ सकता है। यदि किसी बच्चे के माता-पिता दोनों को मधुमेह का रोग है तो किसी-न-किसी उम्र में उनके सभी बच्चों को मधुमेह हो सकता है। यदि माता-पिता दोनों में से कोई एक मधुमेह रोग से ग्रस्त है तो उनके 50 प्रतिशत बच्चे रोगी हो सकते हैं। अत: संतान के स्वास्थ्य के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि शादी से पहले यह ध्यान दिया जाए कि माता-पिता अथवा माता-पिता के परिवार दोनों इस रोग से ग्रसित न हों। जुड़वां बच्चों में से यदि किसी एक बच्चे को मधुमेह हो जाता है तो दूसरे बच्चे में मधुमेह रोग होने की संभावना 75 प्रतिशत अधिक रहती है। मधुमेह का रोग आनुवांशिकता से मिलता है लेकिन वंशानुगत रूप में यह बच्चों में किस प्रकार आता है—इस विषय में अभी तक विशेषज्ञों का ज्ञान न के बराबर है। इस विषय पर अभी भी अनेक अनुसंधान किये जा रहे हैं।

3.3.5.2 श्रमहीनता – जो लोग आरामतलब होते हैं, उनमें मधुमेह होने की संभावना शारीरिक श्रम करने वाले लोगों की तुलना में बहुत अधिक होती है। शारीरिक श्रम, व्यायाम, योग, खेल आदि क्रिया-कलापों से व्यक्ति का शरीर ठीक रहता है। इसीलिए मधुमेह रोग होने की संभावना कम हो जाती है। जबकि स्थूलता के कारण व्यक्ति का वजन बढ़ने लगता है, जिससे मधुमेह होने की संभावना बढ़ जाती है। श्रम करने से शरीर रक्त में उपस्थित शर्करा का उपयोग कर लेता है, जिससे यह रोग नहीं होने पाता है।

3.3.5.3 वसायुक्त भोजन– मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र व शत्रु आहार है। वसा वाला आहर तो हमारे शरीर का सबसे बड़ा शत्रु है। वसायुक्त आहार लेने से मोटापा बढ़ता है क्योंकि वसा पेट, जांघों, नितम्बों आदि में जमा होती जाती है। यह देखा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

गया है कि वसायुक्त आहार लेने से व्यक्ति शीघ्र ही मधुमेह का रोगी हो जाता है। वसा रहित भोजन लेने से शरीर में जमी वसा प्रयोग में आने लगती है और ग्लूकोज का उपयोग बढ़ जाता है। आज की दुनिया में हमारे खान-पान में चोकर रहित आटा और चीनी का उपयोग बढ़ता जा रहा है, वैसे ही मधुमेह के रोगियों की संख्या बढ़ी है। प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थ भी इस रोग के लिए काफी हद तक जिम्मेदार हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का यह मानना है कि विटामिन 'बी' की कमी से भी मधुमेह रोग होता है क्योंकि इसकी कमी से पेनक्रियास के कार्य प्रभावित होते हैं। भोजन में संतृप्त वसा, अत्यधिक मात्रा में प्रोटीन और अधिक कैलोरी वाले भोज्य पदार्थों के उपयोग से शरीर में यूरिक एसिड बढ़ता है। इसके कारण मधुमेह होने की संभावना बढ़ती है। जबकि कम वसा युक्त भोजन और उच्च रेशेदार आहार तथा नियमित श्रम से मधुमेह का रोगी कुछ ही महीनों में सामान्य स्थिति प्राप्त कर लेता है। इसलिए हमें कम वसा वाला और चोकर युक्त भोजन करना चाहिए।

3.3.5.4 तनाव – बहुत से रोगों का कारण तनाव है। चिन्ता, क्रोध, द्वेष आदि ऐसी भावनाएँ हैं, जिनसे स्नायुओं का दाब बढ़ता है और एड्रिनल ग्रंथि से एपीनेक्रीन व नौरएपीनेक्रीन हार्मोन पैदा होते हैं, जो तनाव पैदा करते हैं। इनके अलावा भी कई प्रकार के प्रभाव शरीर पर होते हैं। प्रेम, सुख, शांति तथा सौहार्दपूर्ण व्यवहार से मानसिक क्रियाओं का तालमेल बेहतर रहता है और शरीर में ऐसे रसायन पैदा होते हैं जो कार्बोहाइड्रेट की मेटाबॉलिक क्रियाओं को बढ़ाते हैं। इनसे मनुष्य में रोग-प्रतिरोधकता बढ़ती है और सौन्दर्य में वृद्धि होती है।

3.3.5.5 मोटापा– मोटापे से मधुमेह ही नहीं बल्कि उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि की संभावना भी बढ़ जाती है। कहावत है कि जितनी मोटी कमर, उतनी छोटी उमर। मोटापे का मुख्य कारण अधिक कैलोरी युक्त भोजन है। वसा और कार्बोहाइड्रेट पचाने के लिए अधिक इन्सुलिन कीआवश्यकता होती है, इससे इन्सुलिन पैदा करने के लिए पेनक्रियास की संवेदनशीलता बढ़ जाती है। परिणाम यह होता है कि पेनक्रियास पर दाब बढ़ जाता है और धीरे-धीरे उसकी कार्य-शक्ति कम हो जाती है।

वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि मोटे लोगों में मधुमेह की संभावना अधिक होती है तथा पतले लोगों में कम। जिस परिवार में कोई भी मधुमेह रोगी नहीं होता तथा यदि उस परिवार में कोई व्यक्ति मोटा हो जाता है तो उसे भी यह रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

3.3.5.6 संक्रमण– संक्रमण से भी मधुमेह रोग होने की संभावना रहती है। राइनो वायरस भी मधुमेह का कारण हो सकता है। विषाणु पेनक्रियास ग्रंथि में बीटा कोषों को नष्ट कर देते हैं। विषाणुओं से लड़ने के लिए शरीर में पैदा हुई एन्टीबॉडीज भी पेनक्रियास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, जिससे इन्सुलिन बनना बन्द हो जाता है और व्यक्ति मधुमेह का रोगी हो जाता है। विषाणुओं से यकृत भी प्रभावित होकर वायरल हिप्थेटाइटस रोग के कारण व्यक्ति मधुमेह का रोगी हो जाता है। **मधुमेह कोई संक्रामक रोग नहीं है लेकिन वायरस द्वारा होने वाले कुछ प्रभाव इन्सुलिन पैदा करने वाली कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं, जिससे व्यक्ति मधुमेह रोग से ग्रस्त हो जाता है।**

3.3.5.7 हार्मोन्स – कुछ हार्मोन्स इन्सुलिन बनने पर प्रभाव डालते हैं। पिट्यूटरी, थाइराइड, एड्रिनल आदि ग्रंथियों में यदि कोई विकृति हो जाए तो इनसे पैदा होने वाले हार्मोन पेनक्रियास पर प्रभाव डालते हैं, जिससे मधुमेह रोग की संभावना बढ़ जाती है। पेनक्रियाटाइटस तथा पेनक्रियाटिक कारसिनोमा आदि रोगों में रक्त व मूत्र में शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है।

3.3.5.8 औषधियाँ– औषधियों का भी पेनक्रियास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। स्टेराइड औषधियां, मूत्रवर्धक औषधियां, उच्च रक्तचाप की औषधियां, कार्टिजोन औषधियां, त्वचा रोगों की औषधियां तथा गर्भ-निरोधक औषधियां इन सभी का लम्बे समय तक प्रयोग करने से मधुमेह होने की संभावना बढ़ जाती है। हृदय रोगों में प्रयोग होने वाली कुछ औषधियों से भी मधुमेह रोग होने की संभावना होती है।

3.3.5.9 रोग– कुछ रोग ऐसे हैं जिनके होने से मधुमेह की संभावना बढ़ जाती है। जैसे—पेनक्रियास ग्रंथि की सूजन, हृदय रोगों का आक्रमण आदि मधुमेह रोग का कारण बन सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका एवं भारत के केरल राज्य में पेनक्रियास की सूजन इस रोग का मुख्य कारण है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3.5.10 जाति, देश तथा परिवेश– जिन जातियों के भोजन में कार्बोज, शराब आदि का उपयोग अधिक किया जाता है, उन जातियों में यह रोग होने की संभावना ज्यादा होती है। ऐसी जातियों में मधुमेह के रोगी अधिक पाये जाते हैं। गांवों की तुलना में महानगरों मे रहने वाले लोगों में मधुमेह रोग अधिक देखा गया है। भारत की शहरी जनसंख्या में 8 प्रतिशत तथा ग्रामीण जनसंख्या में 3 प्रतिशत लोगों में मधुमेह रोग पाया जाता है। कनाडा तथा जापान में मधुमेह के रोगी सबसे ज्यादा है। आस्ट्रेलिया के आस-पास के द्वीपों में मधुमेह रोगियों की संख्या नहीं के बराबर है। जिन स्थानों पर पर्यावरण प्रदूषित होता है, वहां पर मधुमेह रोगियों की संख्या ज्यादा होती है।

3.3.5.11 नशा– नशे का भी मधुमेह से काफी गहरा संबंध है। धूम्रपान और शराब पर किये गए शोध कार्यों से यह पता चला है कि जो व्यक्ति अधिक सिगरेट पीते हैं, उनको 45 वर्ष की आयु के बाद धूम्रपान न करने वालों की तुलना में मधुमेह रोग होने की संभावना अधिक होती है। यह भी पाया गया है कि जो व्यक्ति शराब पीते हैं, उनमें भी मधुमेह रोग होने की संभावना ज्यादा होती है।

3.3.5.12 गर्भावस्था – गर्भवती महिलाओं को अस्थायी तौर पर मधुमेह रोग हो जाता है लेकिन बच्चा पैदा होने के बाद यह रोग स्वयं ठीक हो जाता है। गर्भावस्था में कुपोषण के कारण गर्भ में पल रहे बच्चे में इन्सुलिन के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो जाती है, जो जन्म लेने के बाद भी बनी रहती है। जब बच्चा बड़ा हो जाता है तब भी कार्बोहाइड्रेट और शर्करा का भली-भांति उपयोग नहीं कर पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि माता के कुपोषण के कारण बच्चा मधुमेह का रोगी हो जाता है। अत: गर्भवती मां को कुपोषण से बचाना चाहिए। उन्हें अंकुरित अनाज, ताजी हरी सब्जियां, फल, दूध आदि पोषक आहार पर्याप्त मात्रा में लेना चाहिए। ऐसा करने से अपनी संतान का मधुमेह से बचाव कर सकते हैं।

3.3.5.13 उम्र– सामान्यत: 45 वर्ष की उम्र के बाद ही यह रोग होता है। 75 प्रतिशत मधुमेह के रोगियों की उम्र 50 वर्ष से ज्यादा होती है। 60 वर्ष की उम्र में भी बहुत से लोगों को मधुमेह का रोग हो जाता है। वास्तव में मधुमेह बुढ़ापे का रोग है। इस रोग का प्रारम्भ उम्र की दृष्टि से निम्नानुसार पाया जाता है—

1. दस वर्ष से कम आयु के बच्चों में यह रोग पांच प्रतिशत तक पाया जाता है।
2. 45 से 60 वर्ष की उम्र में 100 व्यक्तियों में से 50 व्यक्तियों को यह रोग होता है।
3. 70 से 80 वर्ष कीआयु में यह रोग तीन प्रतिशत नए लोगों में होता है।
4. 80 वर्ष की उम्र के बाद यह रोग न के बराबर होता है।

3.3.5.14 व्यवसाय– जो व्यक्ति लगातार बैठकर काम करने वाले होते हैं, जैसे—दुकानदार, अध्यापक, वकील, अधिकारी और उच्च व्यवसाय, जिसमें शारीरिक श्रम का बिल्कुल अभाव होता है, उन लोगों को मधुमेह रोग की संभावना बहुत अधिक होती है। श्रम रहित व्यवसाय से जुड़े व्यक्तियों का यकृत तथा क्लोम ग्रंथि सही तरह से कार्य नहीं कर पाती है, जिससे शरीर में शर्करा का चयापचय नियंत्रित नहीं हो पाता। खिलाड़ी, किसान तथा श्रमिक लोगों में इस रोग के होने की संभावना कम होती है।

3.3.5.15 लिंग– मधुमेह रोग पुरुषों और प्रौढ़ावस्था में महिलाओं को अधिक होता है। आंकड़ों के अनुसार मधुमेह के पुरुष रोगी महिलाओं की तुलना में ज्यादा होते हैं। जिन महिलाओं ने शारीरिक श्रम और घरेलू कामकाज छोड़ दिया है, उनमें मधुमेह रोग होने की संभावना ज्यादा होती है।

3.3.5.16 अन्य कारण

1. एलॉकजन जैसे विषैले पदार्थ बीटा कोशिकाओं को विकृत कर देते हैं और व्यक्ति को मधुमेह का रोगी बना देते हैं।
2. जो व्यक्ति बहुत अधिक शर्करा खाते हैं, उनके शरीर में शर्करा का सामान्य स्तर बनाए रखने के लिए क्लोम ग्रंथि की बीटा कोशिकाओं को निरन्तर अधिक कार्य करना पड़ता है। परिणाम स्वरूप बीटा कोशिकाएँ विकृत हो जाती हैं, जिससे व्यक्ति स्थायी रूप से मधुमेह रोगी बन जाता है।
3. जिन महिलाओं का बार-बार गर्भपात हो जाता है, उनमें मधुमेह ज्यादा पाया जाता है।
4. उच्च रक्तचाप वाले रोगियों को इन्सुलिन विहीन मधुमेह होने की संभावना ज्यादा होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3.6 मधुमेह का जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

सर्वप्रथम आहार में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

- ❖ मैथी, करेला, जामुन, तुलसी, नींबू, हरा धनिया, नीम के पत्ते आदि मधुमेह में लाभ पहुंचाते हैं अत: प्रतिदिन क्रम से सन्तुलित मात्रा में इनका सेवन लाभदायक होता है।
- ❖ अधिक मीठे पदार्थ अर्थात् मिठाई, खीर, हलवा, चाकलेट, आइसक्रीम आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।
- ❖ मीठे फल, जैसे—पका आम, केला, चीकू, अंगूर आदि का सेवन कम से कम मात्रा में करना चाहिए।
- ❖ आंवला, संतरा, मौसमी, नींबू आदि ले सकते हैं।
- ❖ भोजन में आलू, शकरकंद आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।
- ❖ अधिक वसा युक्त भोजन, जैसे—पूरी, कचौरी, समोसा आदि का सेवन न करें। वसा के रूप में आवश्यकतानुसार गाय का घी, सरसों का तेल एवं सूरजमुखी का तेल उपयोग कर सकते हैं।
- ❖ धूम्रपान एवं मद्यपान का पूर्णरूप से त्याग करना चाहिए।
- ❖ आटे में जौ एवं चने का आटा मिलाकर चौकर सहित प्रयोग करना चाहिए।
- ❖ हरी पत्ते वाली सब्जियों का सेवन करना चाहिए।
- ❖ अन्य सब्जी, जैसे—कटहल, बैंगन, भिण्डी, तीनों प्रकार की गोभी, मूली, गाजर, सोयाबीन, ग्वारफली, चने का साग आदि प्रयोग करें।
- ❖ मलाई रहित दूध, दही एवं छाछ का प्रयोग कर सकते हैं।
- ❖ मधुमेह के रोगी को एक साथ ज्यादा भोजन न करके तीन-चार घंटे के अन्तराल में थोड़ा-थोड़ा खाते रहना चाहिए।

मधुमेह के रोगी अपनी आवश्यक कैलोरी निम्नानुसार ग्रहण करनी चाहिए—

(सामान्यत: मधुमेह के रोगी को 1500 कैलोरी की आवश्यकता होती है।)

- ❖ 18-20 प्रतिशत नाश्ता।
- ❖ 33-35 प्रतिशत दोपहर के भोजन में।
- ❖ 8-10 प्रतिशत सायंकालीन अल्पाहार में।
- ❖ 30-35 प्रतिशत सायंकालीन/रात्रिकालीन में भोजन में।
- ❖ 8-10 प्रतिशत रात्रि में दूध आदि के द्वारा।

दैनिक आहार की रचना

- ❖ 225-275 ग्राम कार्बोहाइड्रेट
- ❖ 70-80 ग्राम प्रोटीन
- ❖ 35-45 ग्राम असंतृप्त वसा
- ❖ विटामिन एवं खनिज लवण आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में ले सकते हैं।
- ❖ रेसेदार पदार्थ अधिक से अधिक मात्रा में सेवन करें।
- ❖ जल आवश्यकतानुसार पीयें।

प्रेक्षा-चिकित्सा

1. **आसन**—श्वास एवं पेट की क्रियाएँ, इष्ट वंदन, उत्तानपादासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, त्रियगभुजंगासन, मत्स्यासन।
2. **प्राणायाम**—नाड़ी-शोधन, अनुलोम-विलोम, सूर्यभेदी। 5 मिनट।
3. **प्रेक्षा**—अग्न्याशय की प्रेक्षा। 10 मिनट
4. **अनुप्रेक्षा**—अग्न्याशय की स्वस्थता का सुझाव—'मेरा अग्न्याशय स्वस्थ हो रहा है'। 15 मिनट
5. **जप**—'णमो लोए सव्व साहूणं'। 10 मिनट
6. **तप**—मीठे पदार्थों एवं आलू, चावल आदि का वर्जन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.4 हार्निया (Hernias)– हार्निया मुख्यत: उदर भाग की पेशियों में शिथिलता के कारण होती है। हमारी आंतें लम्बी तथा घुमावदार होती हैं, जिन्हें उदर पेशियां निश्चित स्थान पर टिकाए रखती हैं। कुपोषण, कब्ज, खांसी की पुरानी बीमारी आदि कारणों से पेशियां कमजोर हो जाती हैं, जिससे आंतें अपने स्थान से हट जाती हैं तथा नीचे की तरफ दबाव बनाने लगती हैं, जिससे उदर भित्ति नीचे की तरफ खिसक कर एक थैली का रूप बना लेती है। कई बार आंत का हिस्सा खिसककर इस थैली में चला जाता है, जिससे भयानक दर्द उठता है। इसे ही हार्निया कहते हैं।

3.4.1 हार्निया के लक्षण

1. पेडू के भाग में फुलाव।
2. अण्डकोषों (Testis) में तेज दर्द।
3. योनि या शिशन के बगल में फुलाव व दर्द।
4. सीने में तेज जलन आदि।

3.4.2 हार्निया के मुख्य कारण– हार्निया का मुख्य कारण पेशियों में शिथिलता, कमजोरी, मोटापा, भारी बोझ उठाना, खांसी, कुपोषण, कब्ज, तनाव, धूम्रपान आदि हैं।

3.4.3 हार्निया के प्रकार – हार्निया मुख्यत: तीन प्रकार का होता है—

3.4..3.1 इन्ग्वायनल हर्निया (Inguinal Hernia) – आंतों का कुछ अंश जब उदर भित्ति को ढकेलकर उसके भीतर घुस जाता है, जिसे पेडू के भाग में फुलाव-सा हो जाता है, उे इस श्रेणी में रखते हैं। ये पुरुषों में अधिक होती है। कई बार आंतोका अंश सरक कर अंडकोषों (Testis) में उतर आता है, जिससे तेज दर्द होता है।

3.4.3.2 फीमोरल हर्निया (Femoral Hernia)– योनि या शिशन के बगल में जब एक प्रकार का फुलाव होता है, उसे फीमोरल हर्निया कहते हैं। ये मोटी महिलाओं में ज्यादा होता है। इससे पांवों के ऊपरी हिस्से में सूजन आ जाती है।

3.4.3.3 हाइटस हर्निया (Hytus Hernia) – आमाशय का कुछ भाग जब ग्रासनली में ऊपर की तरफ चढ़ जाता है, उसे हाइटस हर्निया कहते हैं। इसमें हाइड्रोक्लोरिक रस ऊपर की ओर पहुंचने लगता है, जिससे तेज जलन होती है। भोजन के पाचन पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अधिक उम्र, धूम्रपान, तनाव, मोटापा आदि इसके मुख्य कारण हैं।

3.4.4 जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन

1. भोजन में रेसेदार पदार्थों का उपयोग अधिक मात्रा में करें, जिससे कब्ज जैसी बीमारी, जो इस रोग का मुख्य कारण है, न हो पाए।

2. धूम्रपान का पूर्ण रूप से त्याग करें क्योंकि धूम्रपान इस रोग के मुख्य कारणों में से एक है।

3. कुछ हार्निया मोटे लोगों में ज्यादा पाई जाती है, अत: लम्बाई के अनुरूप अपने वजन को नियंत्रित करें।

हार्निया की प्रेक्षा-चिकित्सा

आसन—उत्तानपादासन, सर्वांगासन, वज्रासन, पश्चिमोत्तानासन।
प्राणायाम—बिना कुंभक के अनुलोम-विलोम—5 मिनट।
प्रेक्षा—आंतों की प्रेक्षा—10 मिनट।
अनुप्रेक्षा—'मेरी आंत अपने स्थान पर स्थिर हो रही है। पेशियों की शिथिलता कम हो रही है।' —15 मिनट
जप—'ह्रौं'—10 मिनट।
तप—गरिष्ठ और तले हुए पदार्थों का वर्जन।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—मधुमेह के विषय में विस्तार से लिखें।
प्रश्न—दमा रोग पर एक लेख लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4.0 सारांश

श्वसन-तंत्र

वातावरण की ऑक्सीजन को शरीर के भीतर पहुंचना तथा शरीर में वर्ज्य पदार्थ के रूप में उत्पन्न कार्बन-डाई-ऑक्साइड को शरीर से बाहर निकालने का कार्य जो तंत्र करता है, उसे श्वसन तंत्र कहते हैं।

श्वसन-प्रक्रिया

यह एक दोहरी प्रक्रिया है।

बाह्य श्वसन—इसे फुफ्फुस श्वसन (pulmonary respiration) भी कहते हैं। फुफ्फुसों तक वायु को ले जाना एवं वहां से बाहर वायु को छोड़ना इसका कार्य है।

अन्तः श्वसन—फुफ्फुसों की वायु को रक्त के माध्यम से कोशिकाओं तक ले जाना, वहां ऊर्जा उत्पादन के फलस्वरूप उत्पन्न कार्बन-डाई-ऑक्साइड को वापिस रक्त के माध्यम से फुफ्फुसों तक छोड़ना अन्तःश्वसन है।

श्वसन-तंत्र के मुख्य अवयव

नासा गुहाएँ—यह नासिका का प्रवेश-द्वार है तथा दो भागों में बंटा होता है।

ग्रसनी—यह नाक, मुंह तथा स्वर-यंत्र के पीछे रहती है।

स्वरयंत्र—श्वासनली के सबसे ऊपर वाले भाग को स्वर-यंत्र कहते हैं। इसी स्थान पर कंठच्छद (Epiglotis) होता है। स्वर-यंत्र का मुख्य कार्य स्वर-रज्जुओं में कम्पन्न पैदा कर ध्वनि को उत्पन्न करना है।

श्वास नली—इसकी लम्बाई 4.5 इंच तथा व्यास एक इंच होता है। यह 16 से 20 उपास्थियों में बंटी होती है।

श्वसनी—श्वास नली अंत में यह दो शाखाओं में बंटती है, जिसे श्वसनी कहते हैं।

श्वसनिक—श्वसनी जब पुनः शाखाओं और अन्य प्रशाखाओं में बंट जाती है, तब उसे श्वसनिकाएं कहते हैं। रचना की दृष्टि से यह श्वसनी के समान ही होती है।

श्वास प्रकोष्ठ—इनकी संख्या दो करोड़ से पन्द्रह करोड़ तक हो सकती है। बहुत ही बारीक झिल्ली से निर्मित होते हैं। इन्हीं के माध्यम से गैसों का आदान-प्रदान होता है।

फुफ्फुस

ये संख्या में दो होते हैं। दायां फुफ्फुस बाएं फुफ्फुस से बड़ा होता है। ये मधुमक्खी के छत्ते की तरह स्पंजी होते हैं।

पाचन-तंत्र

हम जो भोजन ग्रहण करते हैं, उसको ग्रहण करने से लेकर काटना, तोड़ना, पीसना, विभिन्न प्रकार के पाचक रसों को उसमें मिलाना, तत्पश्चात् भोजन के मुख्य पोषक तत्त्वों को अवशोषित करना एवं शेष बचे पदार्थ को शरीर से बाहर निकालना पाचन-तंत्र का कार्य है।

पाचन

यह हमारे शरीर की आंतरिक एवं रासायनिक प्रक्रिया है, जिसमें घटक तत्त्व रक्त द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं अर्थात् अविलय भोजन को स्वांगीकरण के लिए विलय रूप में परिवर्तित कर देना ही पाचन है।

पोषण नाल

यह 10 मीटर लम्बी एक नली है, जो अनैच्छिक पेशियों से बनी होती है। इसके निम्न भाग होते हैं—

मुख गुहा—यह जबड़ों तथा गालों से घिरी एक गुहा है, जिसमें एक जीभ तथा 32 दांत पाये जाते हैं।

ग्रसनी—यह मुख गुहा के पीछे कीप के समान 12 से 15 से.मी. लम्बी एक नली है।

ग्रासनली—यह गर्दन के पीछे की तरफ 25 से 26 से.मी. लम्बी एक नली है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आमाशय—यह 24 से 26 से.मी. लम्बी तथा 10 से.मी. चौड़ी एक थैली है। यहां पर भोजन को और अधिक पीसा और मथा जाता है। इसी स्थान पर जठर रस, पेप्सीन और रैनिन भी भोजन में मिलते हैं।

छोटी आंत्र—यह 6.5 मीटर लम्बी तथा 2.5 से.मी. चौड़ी एक नली है। भोजन का अधिकांश पाचन इसी नली में हो जाता है। यह निम्न तीन भागों में बंटी होती है—

पक्वाशय—यह C आकार की नली है। भोजन का अधिकांश पाचन यहीं होता है।

मध्यान्त्र—यह लगभग 2.5 मीटर लम्बी और 4 से.मी. चौड़ी नली है।

शेषान्त्र—यह लगभग 2.75 मीटर लम्बी नली है।

बड़ी आंत्र—यह 2 मीटर लम्बी तथा 7 से.मी. व्यास की एक नली है।

अंधान्त्र—यह 6 से.मी. लम्बी नली है। यहीं पर आंत्र पुच्छ पाया जाता है।

कोलन—यह अंग्रेजी के उल्टे यू के आकार में उदर में स्थित है।

मलाशय—12 से.मी. लम्बी तथा 4 से.मी. चौड़ी एक नली है, जो पाचन-तंत्र का अंतिम हिस्सा है।

यकृत—यह शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि है। इसका वजन लगभग 1.5 कि.ग्रा. होता है। इसका मुख्य कार्य पित्त का स्राव करना, ग्लुकोज को ग्लाइकोजन के रूप में संचित करना आदि है।

पित्ताशय—यह 4 ईंच लम्बी एक थैली है। इसमें पित्त रस भरा रहता है।

अग्न्याशय—अग्न्याशय की लम्बाई 15 से.मी. तथा चौड़ाई 4 से.मी. होती है। यह अन्त:स्रावी तथा बहिस्रावी दोनों प्रकार की ग्रंथि है।

प्लीहा—इसका इसका मुख्य कार्य बुढ़े हो चुके या बीमार लाल रक्त कणों को नष्ट कर उनसे आवश्यक तत्त्वों को निकाल लेना है।

रोग—दमा एवं ब्रोंकाइटिस, मधुमेह, रक्ताल्पता

दमा- इस रोग में वायु मार्ग संकरा हो जाता है, उसमें सूजन आ जाती है तथा श्लेष्मा का स्राव असामान्य हो जाता है।

ब्रोंकाइटिस- श्वास मार्ग दो भागों में बंट जाता है, जिसको श्वसनिक या ब्रोंकाइ कहते हैं। यह ब्रोंकाइ पुन: छोटे-छोटे भागों में शाखाओं-प्रशाखाओं के रूप में बंटती चली जाती है। इस स्थान पर वाइरस, कीटाणु, फंगस आदि के कारण जब अवरोध उत्पन्न होता है, तो उसे ब्रोंकाइटिस रोग कहते हैं। इस रोग में मुख्य रूप से ब्रोकोस्पास्म पैदा होता है।

मधुमेह- रक्त के अन्दर ग्लुकोज की मात्रा का कम या अधिक हो जाना मधुमेह है।

हर्निया- उदर भाग की पेशियों में शिथिलता के कारण होती है। इस रोग में आंतें नीचे की तरफ खीसक कर एक थैली का रूप बना लेती हैं, जिससे तेज दर्द होता है।

लक्षण—पेडू के भाग में फुलाव, अण्डकोषों (Testis) में तेज दर्द, योनि या शिशन के बगल में फुलाव एवं दर्द, सीने में तेज जलन।

कारण—पेशियों में शिथिलता, कमजोरी, मोटापा, भारी बोझ उठाना, खांसी, कुपोषण आदि।

प्रकार—

इन्ग्वायनल हर्निया (Inguinal Hernia)—यह रोग मुख्यत: पुरुषों में पाया जाता है। आंतों का अंश सरक कर अंडकोषों (Testis) में उतर आता है, जिससे तेज दर्द होता है।

फीमोरल हर्निया (Femoral Hernia)—यह मोटी महिलाओं में ज्यादा होता है। इससे योनि के बगल में फुलाव एवं पांवों के ऊपरी हिस्से में सूजन आ जाती है।

हाइटस हर्निया (Hytus Hernia)—आमाशय का कुछ भाग एवं हाइड्रोक्लोरिक एसिड ऊपर की ओर पहुंचने लगता है, जिससे तेज जलन होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्वसन-तंत्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. पाचन तंत्र को विस्तार से समझाइये।
3. दमा रोग के कारण, लक्षण, प्रकार एवं प्रेक्षा-चिकित्सा लिखिए।
4. मधुमेह रोग पर एक निबन्ध लिखिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. अन्त:श्वसन क्या है?
2. आमाशय का वर्णन कीजिए।
3. एलर्जिक दमा क्या है?
4. तीव्र ब्रोंकाइटिस के लक्षण बताइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. हीमोग्लोबिन रक्त की किन कणिकाओं में पाया जाता है?
2. मधुमेह शब्द का अर्थ बताएँ।
3. इन्सुलिन आश्रित मधुमेह किसे कहते हैं?
4. छोटी आंत्र का कौन-सा भाग अंग्रेजी के 'सी' (C) आकार का होता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–4 शारीरिक तंत्रों का रचनात्मक परिचय संबंधित रोग एवं रोगों का प्रबन्धन

पाठ–ख

रोग–प्रतिरोधी तंत्र—परिचय जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

प्रिय विद्यार्थियों,

पिछले अध्याय में आपने श्वसन–तंत्र एवं पाचन–तंत्र तथा उससे संबंधित बीमारियों के विषय में अध्ययन किया था। अधिकांश बीमारियों का कारण एक ही है, वह है—रोग–प्रतिरोधी तंत्र का किसी कारण से कमजोर हो जाना। अतः प्रस्तुत पाठ में हम रोग–प्रतिरोधी तंत्र तथा उससे संबंधित विकारों के विषय में अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

1. आप रोग–प्रतिरोधी तंत्र का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
2. रोग–प्रतिरोधी तंत्र की कार्य–पद्धति को जान सकेंगे।
3. संबंधित विकारों का ज्ञान होगा।
4. एड्स जैसे खतरनाक रोग के विषय में लोगों को जागरूक कर सकेंगे।
5. रोग–प्रतिरोधी तंत्र की क्षमता बढ़ाने के उपायो को जान सकेंगे।

विषय–वस्तु

1.0 रोग–प्रतिरोधी तंत्र के प्रकार
- 1.1 प्राकृतिक रोग–प्रतिरोधक क्षमता
  - 1.1.1 श्वेत रक्त कण
  - 1.1.2 फेगोसाइटोसिस
  - 1.1.3 प्रति जीवाणु रासायनिक पदार्थ
    - 1.1.3.1 इन्टरफ्रेरॉन
    - 1.1.3.2 काम्प्लीमेन्ट
    - 1.1.3.3 प्रोपर्डीन
  - 1.1.4 त्वचा व श्लेष्मा झिल्लियां
    - 1.1.4.1 यांत्रिक क्रिया
    - 1.1.4.2 रासायनिक क्रिया
  - 1.1.5 इन्फ्लेमेशन
  - 1.1.6 ज्वर
- 1.2 अर्जित रोग–प्रतिरोधक क्षमता
  - 1.2.1 सक्रिय अर्जित रोग–प्रतिरोधक क्षमता
  - 1.2.2 निष्क्रिय अर्जित रोग–प्रतिरोधक क्षमता

2.0 जीवन–विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

3.0 सारांश

4.0 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शरीर में रोगों से लड़ने के अनेक साधन हैं। इन्हीं साधनों के द्वारा शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों से अपनी रक्षा करता है। इस दृष्टि से रोग-प्रतिरोधक क्षमता शरीर की एक रक्षात्मक इकाई है क्योंकि यह रोगों पर आक्रमण नहीं करती है बल्कि जब शरीर पर रोगों का आक्रमण होता है तब शरीर की रक्षा के लिए रोगों पर आक्रमण करती है। यह आक्रमण ठीक उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार कोई देश की सेना अपने देश पर दुश्मन देश के द्वारा किये आक्रमण के समय करती है, जैसे—

1. सेना की तरह इसमें भी सूचना-तंत्र होता है, जो आक्रमण की सूचना देता है।

2. लड़ाई के समय यदि सेना कम पड़ जाए तो उसकी सूचना बार्डर से उच्च अधिकारियों तक पहुंचाई जाती है। ऐसी स्थिति में उच्च अधिकारी और अधिक सेना लड़ने के लिए भेज देते हैं। ठीक यही प्रक्रिया हमारे रोग-प्रतिरोधी तंत्र में भी होती है।

3. दुश्मनों को कई बार सीमा रेखा पर मार दिया जाता है, कई बार उन्हें भीतर ऐसे स्थान पर आने दिया जाता है, जहाँ उन्हें आसानी से मारा जा सके, कई बार दुश्मन की सही पहचान न होने पर दुश्मन आसानी से घुमते रहते हैं तथा किसी प्रतिष्ठान पर आक्रमण की योजना बनाते समय या अन्य किसी पहचान पर उन्हें मार दिया जाता है। यह प्रक्रिया भी हमारे रोग-प्रतिरोधी तंत्र में होती है।

4. दुश्मनों के द्वारा विस्फोट के लिए रखे गये बमों आदि को नष्ट करने का कार्य सेना करती है। उसी प्रकार हानिकारक जीवाणु द्वारा छोड़े गये विषों को भी नष्ट करने का कार्य यह तंत्र करता है।

उपरोक्त जानकारी को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि **रोग-प्रतिरोधी तंत्र हमारे शरीर की एक सुसंगठित सेना है।**

1.0 रोग-प्रतिरोधी तंत्र के प्रकार

रोग-प्रतिरोध के अनेक साधन हैं, जो शरीर के विभिन्न तंत्रों के अन्तर्गत कार्य करते हैं। इन सभी साधनों को मिलाकर एक तंत्र कहा जा सकता है। इस तंत्र की क्षमता निश्चित है। यह क्षमता दो प्रकार की होती है—

1. प्राकृतिक रोग-प्रतिरोधक क्षमता (Natural),
2. अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता (Acquired)।

1.1 प्राकृतिक रोग-प्रतिरोधक क्षमता (Natural)- प्राकृतिक रोग-प्रतिरोधक क्षमता को जन्मजात रोग क्षमता भी कहा जाता है, क्योंकि यह क्षमता जन्म से ही प्राप्त होती है। यह एक सामान्य सुरक्षा-व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत त्वचा कुछ एनजाइम्स, कुछ स्राव, श्वेत रक्त कण, लाइसोसोम, पोली पेप्टाइट आदि आते हैं। ये सभी बाहर से प्रवेश करने वाले विजातीय तत्त्वों को नष्ट कर देते हैं तथा नष्ट हुए जीवाणु व अन्य पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देते हैं। इस प्राकृतिक व्यवस्था को अध्ययन की दृष्टि से निम्न भागों में बांटा जा सकता है—

- ❖ श्वेत रक्त कण
- ❖ प्रति जीवाणु रासायनिक पदार्थ
- ❖ इन्फ्लेमेशन
- ❖ फेगोसाइटोसिस
- ❖ त्वचा व श्लेष्मा झिल्लियां
- ❖ ज्वर

1.1.1 श्वेत रक्त कण

प्रति घन मिलीमीटर रक्त में इनकी संख्या 8000 (आठ हजार) होती है। इस प्रकार लाल रक्त कणों की अपेक्षा इनकी संख्या बहुत कम होती है। यह अनुपात: 1 : 625 होता है। इनका आकार अमीबा की तरह होता है अर्थात् इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। इनकी गति भी अमीबा की ही तरह होती है अर्थात् ये चौड़े-संकरे किसी भी स्थान में पहुंच सकते हैं। इनकी उत्पत्ति अस्थिमज्जा तथा लसिका ग्रंथियों में होती है।

श्वेत रक्त कण हमारे शरीर में अनधिकृत रूप से प्रवेश किये हुए विजातीय पदार्थों तथा रोगजनक जीवाणुओं से हमारी रक्षा करते हैं। जब कभी भी ऐसी स्थिति आती है कि विजातीय तत्त्व किसी प्रकार से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तब श्वेत रक्तकण उन विजातीय तत्त्वों को चारों ओर से घेरकर मार देते हैं। कई बार उन्हें खाकर नष्ट कर देते हैं एवं अपने स्रावों के द्वारा उनके विषों को भी नष्ट कर देते हैं। कई बार श्वेत कण भी इस युद्ध में मारे जाते हैं तथा शरीर की अन्य कोशिकाएँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

भी नष्ट हो जाती हैं। ये सभी मृत अंग, पस (Pus) के रूप में शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार प्रतिपिंड (Anti Bodies) तथा प्रतिविष (Anti-Toxin) की उत्पत्ति कर श्वेत रक्त-कण हमारे शरीर की रक्षा ही नहीं करते बल्कि घाव के भरने में भी मदद करते हैं।

श्वेत रक्त कणों के प्रकार तथा उनकी संख्या निम्न है—

कुल श्वेत रक्त कण	**8000 प्रति घन मिली मीटर रक्त**
A. दानेदार श्वेत रक्त कण (Granular Leucocytes)	75%
1. न्यूट्रोफिल (Neutrophil)	60–70%
2. इस्नोफिल (Eosinophil)	3–5%
3. बेसोफिल (Basophil)	0–1%
B. दाने रहित श्वेत रक्त कण (Non-Granular Leucocytes)	25%
1. लसिका कणिका (Lymphocytes)	20–30%
2. मोनोसाइट (Monocytes)	3–5%

उपरोक्त सभी कणिकाओं के कार्य अलग-अलग हैं।

1.1.2 फेगोसाइटोसिस– जब कोई रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाता है तब वह रक्त प्रवाह तक जा पहुंचता है, इस स्थिति में जीवाणु-रोगाणु को फेगोसाइट नामक कोशिकाएँ रक्त प्रवाह में ही उसे निगल जाती हैं, जिससे वह नष्ट हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को फेगोसाइटोसिस कहते हैं। इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से न्यूरोट्रोफिल श्वेत रक्त कण ज्यादा भाग लेता है।

1.1.3 प्रति जीवाणु रासायनिक पदार्थ – शरीर में कुछ स्राव ऐसे भी होते हैं, जो जीवाणु रोधी होते हैं। इन सभी स्रावों का सुरक्षा करने का तरीका भिन्न-भिन्न होता है। इस प्रक्रिया में प्रोटीन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इनमें से प्रमुख प्रति जीवाणु रासायनिक स्राव निम्न हैं—1. इन्टरफ्रेरॉन, 2. काम्प्लीमेन्ट, 3. प्रोपर्डीन।

1.1.3.1 इन्टरफ्रेरॉन – कोशिकाएँ जब कुछ विशेष प्रकार के वायरस एवं जीवाणु से संक्रमित हो जाती हैं तब एक विशेष प्रकार के प्रोटीन का उत्पादन करती हैं। ये प्रोटीन असंक्रमित कोशिकाओं के सम्पर्क में आकर प्रति वायरस प्रोटीन बनाने को प्रेरित कर देती हैं, जिसके उत्पादन से वायरस की वृद्धि रुक जाती है तथा धीरे-धीरे संक्रमण समाप्त हो जाता है। लिम्फोसाइट श्वेत रक्त कण की इस प्रोटीन उत्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

1.1.3.2 काम्प्लीमेन्ट– काम्प्लीमेन्ट बीस ऐसे प्रोटीनों का समूह है, जो स्वस्थ रक्त में पाया जाता है। जब रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तब यह रसायन उनके साथ एक विशेष प्रकार का बंध बनाती है, जिसके फलस्वरूप उनका विकास रुक जाता है।

1.1.3.3 प्रोपर्डीन– प्रोपर्डीन तीन प्रोटीन का एक जटिल समूह है, जो काम्प्लीमेन्ट रसायन की तरह रोगाणुओं के विकास को अवरुद्ध कर देती है।

1.1.4 त्वचा एवं श्लेष्मा झिल्लियां– त्वचा एवं श्लेष्मा झिल्लियां अनेक प्रकार की यांत्रिक एवं रासायनिक प्रक्रियाओं के माध्यम से हमारे शरीर की रक्षा करती हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

1.1.4.1 यांत्रिक क्रिया – वास्तविकता में त्वचा एवं श्लेष्मा झिल्लियां हमारी सुरक्षा की प्रथम पंक्ति हैं, जो अनेक क्रियाओं के द्वारा हमारे शरीर की सुरक्षा करती हैं। हमारे शरीर की त्वचा दो स्तरों से बनी होती है— 1. इपिडर्मिस (Epidermis), 2. डर्मिस (Dermis)।

इपिडर्मिस त्वचा के ऊपरी स्तर में होती है, वहीं डर्मिस त्वचा के निचले स्तर में होती है। इस रक्षा में कोशिकाओं का जीव-द्रव्य (Protoplasm) किरेटीन नामक एक कठोर पदार्थ में बदल जाता है, जो सुरक्षा-पंक्ति में एक अस्तर के रूप में लगा

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रहता है। यह मजबूत बाधा के रूप में जीवाणुओं, जल आदि को शरीर में प्रवेश नहीं करने देता है। लेकिन इनके माध्यम से तेलीय पदार्थ प्रवेश कर जाते हैं। त्वचा हमारी निम्न प्रकार से भी मदद करती है—

- ❖ बाहरी चोट आदि से शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करती है।
- ❖ शीत, उष्ण आदि उष्मीय परिवर्तनों तथा सूर्य की हानिकारक किरणों से हमें सुरक्षा प्रदान करती है।
- ❖ ऊपरी स्तर एपिडर्मिस की कोशिकाएँ निरन्तर शरीर से गिरती रहती हैं, जिससे इन पर चिपके रोगाणु शरीर से स्वत: ही अलग होते रहते हैं।
- ❖ श्लेष्मा झिल्लियां त्वचा के ठीक नीचे स्थित संयोजी ऊतक के साथ उपकला कोशिका स्तर के रूप में पाई जाती हैं, जो श्लेष्मा का स्राव करती रहती हैं, जिनसे हमारी रोगाणुओं से रक्षा करती है।
- ❖ श्लेष्मा त्वचा के आंतरिक तथा बाह्य दोनों स्तरों को नम रखता है, जिससे बहुत से रोगाणु चिपक कर समाप्त हो जाते हैं।
- ❖ नाक के रोम सर्वप्रथम विजातीय तत्त्वों को रोक देते हैं, शेष को रोकने का कार्य श्लेष्मा करती है।
- ❖ आंख में आंसुओं के द्वारा जीवाणु को भीतर जाने से रोक दिया जाता है।

1.1.4.2 रासायनिक क्रिया– रासायनिक प्रक्रियाओं के अंतर्गत त्वचा में पाई जाने वाली सिबेसियस ग्रंथियों (तैल ग्रंथियों) से एक तैलीय पदार्थ निकलता है, जिसे सीबम कहते हैं। यह त्वचा को चिकना और मुलायम रखता है तथा फटने से बचाता है। इसके भीतर असंतृप्त वसा अम्ल पाया जाता है, जो अनेक रोगाणु, बैक्टीरिया और फफूंद को त्वचा के ऊपर पनपने से रोकता है। त्वचा के अंदर पाई जाने वाली स्वेद ग्रंथियां, पसीने का स्राव करती हैं, जो शरीर के तापमान को नियंत्रित करने एवं अनेक सूक्ष्म जीवाणुओं को शरीर से बाहर निकालने में मदद करती है। स्वेद के अंदर लाइसोजाइम नामक एक एन्जाइम होता है, जो अनेक बैक्टीरिया को नष्ट कर हमारी रक्षा करता है।

1.1.5 इन्फ्लेमेशन– जब रोगाणुओं के आक्रमण या किसी बाहरी चोट अथवा किसी रासायनिक पदार्थ के कारण शरीर की कोशिकाएं घायल हो जाती हैं, तब इन्फ्लेमेशन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। यह एक सुरक्षा का उपाय है, जिसके अन्तर्गत चोटिल स्थान पर चार प्रमुख लक्षण दिखाई देते हैं— 1. स्थान का लाल हो जाना, 2. दर्द होना, 3. अत्यधिक गर्म होना, 4. सूजन होना। इन्फ्लेमेशन एक प्रकार की सुरक्षा और संरक्षा का उपाय है, जिसके द्वारा घायल स्थान से जीवाणुओं, विषैले पदार्थों तथा बाहरी विजातीय पदार्थों को चोट वाले स्थान से बाहर किया जाता है ताकि वे शरीर के अन्दर न फैल सकें। इस प्रक्रिया के तत्काल बाद धीरे-धीरे ये सारे लक्षण समाप्त हो जाते हैं और उस स्थान के टूटे-फूटे और कटे हुए ऊतकों का पुनर्निर्माण हो जाता है।

1.1.6 ज्वर– शरीर में ज्वर उत्पन्न होने का मुख्य कारण किसी बैक्टीरिया या वाइरस का आक्रमण ही होता है। इससे शरीर का तापमान असाधारण रूप से बढ़ जाता है, जिसके कारण रोगाणुओं की वृद्धि रूक जाती है। साथ ही साथ शरीर के भीतर पुन: निर्माण की क्रियाएँ तीव्र हो जाती हैं। वास्तविकता में ज्वर कोई बीमारी नहीं, बल्कि अन्दर पैदा हुई बीमारी को बाहर लाने का एक संकेत है, जो शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को सक्रिय बनाता है।

1.2 अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता (Acquired)

यह रोग प्रतिरोधक क्षमता सभी के अन्दर विकसित रोग प्रतिरोध क्षमता है, जो विशेष प्रकार के घातक बैक्टीरिया, वायरस एवं हानिकारक पदार्थों को समाप्त करने के लिए उपयोग में लाई जाती है। इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया का विकास तब तक नहीं होता, जब तक शरीर में उस प्रकार के विशिष्ट बैक्टीरिया, वायरस एवं हानिकारक पदार्थ प्रवेश नहीं कर जाते। इन सभी हानिकारक पदार्थों को सामूहिक रूप से एन्टीजन कहा जाता है। अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता के अन्तर्गत इन घातक पदार्थों की पहचान करके उनको नष्ट करने के लिए दो विशेष प्रकार की क्षमताओं का विकास शरीर के अन्दर ही हो जाता है, जो निम्न है—

1. सक्रिय अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता,
2. निष्क्रिय अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.2.1 सक्रिय अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता

सक्रिय अर्जित रोग क्षमता तब ही आती है, जब शरीर पर जीवाणुओं का आक्रमण होता है और शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता की शक्तियां, जैसे—जीवाणु भक्षण आदि रोगाणुओं का सामना करने के लिए शरीर में प्रतिपिण्डों (Anti-Bodies) और प्रतिविषों (Anti-Toxins) को उत्पन्न करती हैं। जब ये दोनों ही आक्रमणकारियों से अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं, तभी ये शरीर की रोग से रक्षा करने में समर्थ होते हैं। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत श्वेत रक्त कणिका में एक लिम्फोसाइट T-Cell के रूप में विकसित होती है, जिसे T-Cell लिम्फोसाइट कहते हैं। एन्टीजन के माइक्रोफेगस के सम्पर्क में आते ही माइक्रोफेगस उन्हें T कोशिका के सम्पर्क में ले आता है, जिसके परिणामस्वरूप यह T कोशिका अप्रत्याशित रूप से उत्तेजित होकर बहुत बड़े आकार की हो जाती है और फिर विभाजित होकर विभिन्न प्रकार की T कोशिकाओं में बदल जाती है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जो T कोशिकाएँ बनती हैं तथा उनके कार्य निम्न हैं—

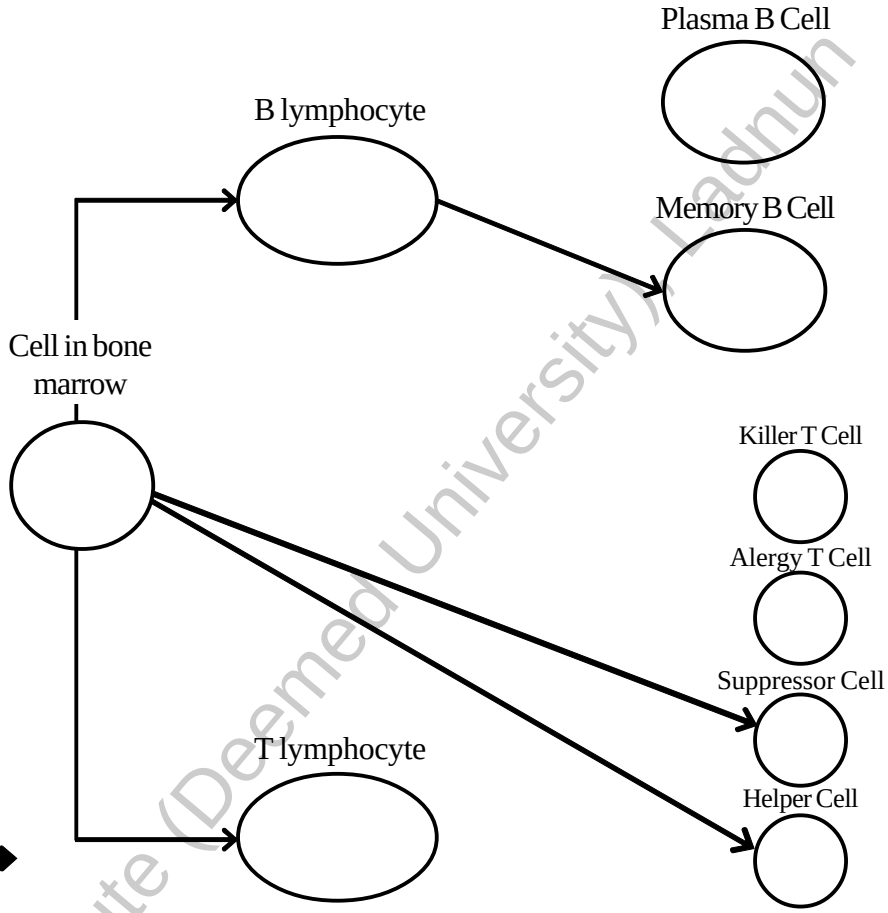

1. एम्प्लीफायर टी कोशिका—दूसरी अन्य टी कोशिकाओं की कार्यक्षमता को बढ़ाती है।
2. मेमोरी टी कोशिका—एन्टीजन की पहचान करती है।
3. हेल्पर टी कोशिका—एन्टीबाडी के उत्पादन में सहायक होती हैं।
4. सप्रेसर टी कोशिका—एन्टीबाडी के उत्पादन को रोकती हैं।
5. किलर टी कोशिका—एन्टीजन पर सीधे वार करके नष्ट करती हैं।
6. एलर्जी टी कोशिका—एलर्जी उत्पन्न करती हैं।

संशोधित और परिवर्धित T-Cell रक्त प्रवाह के द्वारा सारे शरीर में फैल जाती हैं और एन्टीजन्स् को ढूंढ-ढूंढ कर उनसे लड़ती हैं तथा उन्हें नष्ट कर देती हैं। कुछ लिम्फोसाइट बी कोशिका (B-Cell) के रूप मे परिवर्तित होती हैं। जब ये बी कोशिकाएँ एन्टीजेन के सम्पर्क में आती हैं तो इनके पुनर्परिवर्धन की प्रक्रिया शुरू होती है। बी-कोशिकाएँ परिवर्धित होकर बड़ी आकार की हो जाती हैं और फिर विभाजित होकर प्लाज्मा बी-कोशिका और मेमोरी बी-कोशिका के रूप में बदल जाती हैं। प्लाज्मा बी-कोशिका एन्टीबॉडी नामक रासायनिक पदार्थों का उत्पादन करती है, जो एन्टीजेन के साथ संयोग करके उसे नष्ट कर देता है जबकि मेमोरी बी-कोशिका रक्त में मौजूद सारे एन्टीजेन की पहचान कर उन्हें नष्ट करवाने में सहायता करती है।

कुछ रोग जीवन में एक बार ही होते हैं। इसके बाद उनके प्रति रोग क्षमता शरीर में स्थाई रूप से बन जाती है, जिससे ये रोग पुनः मनुष्य को रोगी नहीं बना पाते, जैसे—चेचक जीवन में एक बार ही होती है और फिर व्यक्ति जीवन भर इस रोग से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार की रोग-प्रतिरोधक क्षमता सक्रिय रोग-प्रतिरोधक क्षमता में ही आती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.2.2 निष्क्रिय अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता

इस रोग-प्रतिरोधक क्षमता में जीवाणु नाशक एवं विषनाशक पदार्थों को शरीर के बाहर ही तैयार किया जाता है तथा बाद में उन्हें इंजेक्शन द्वारा शरीर के रक्त में पहुंचा दिया जाता है। उदाहरण के लिए—टिटनेस एवं डिफ्थीरिया के लिए ए. टी.एस. व डी.पी.टी. का टीका। अधिकांशत: इन्हें पशुओं के शरीर में तैयार किया जाता है। जब उनके शरीर में ये तैयार हो जाती हैं तो उनके रक्त को निकाल लिया जाता है तथा रक्त के सिरम को अलग कर शुद्ध कर लिया जाता है। इनमें उपस्थित रोग-निवारक की मात्रा को मालूम करके इन्हें मनुष्य के शरीर में रोग-प्रतिरोध के रूप में इंजेक्शन के द्वारा प्रवेश करा दिया जाता है। ये वस्तुएँ प्रतिविष (Anti-Toxic) या प्रतिजीवाणु (Anti Bacterial Serum) कहलाती हैं। बेक्सीन के द्वारा सक्रिय रोग-प्रतिरोधक क्षमता अर्जित होती है तथा सिरम के द्वारा निष्क्रिय रोग-प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है।

लसीका तंत्र की कार्य-प्रणाली

शरीर में रक्त वाहिकाओं के समान एक अन्य वाहिकाओं का जाल बिछा रहता है, जिसे लसिका वाहिकाएँ कहते हैं। ये वाहिकाएँ ऊतकीय अवकाशों से तरल पदार्थ की क्षति करती हैं। इन्हीं के द्वारा भोजन के वसा पदार्थों का अवशोषण तथा वितरण होता है। इस पूरी प्रक्रिया में कार्य करने वाले तंत्र को लसीका तंत्र (Lymphatic System) कहते हैं। इनमें जो तरल पदार्थ भरा रहता है, उसे ही लसीका (Lymph) कहते हैं। जिन ग्रंथियों से ये बनती हैं, उन्हें लसीका ग्रंथि (Lymph Gland) तथा इनकी कोशिकाओं को लसिका कोशिका (Lymphocytes) कहते हैं।

लसीका वाहिका में सेव के बीज के आकार की लसीका ग्रंथियां पाई जाती हैं। इनकी संख्या गर्दन, चेहरे, बगल, जांघ तथा घुटनों में ज्यादा होती है। जब लसीका बहती हुई इनमें से निकलती है तब ये ग्रंथियां छलनी का कार्य करती हैं अर्थात् विषैले पदार्थ रोगाणु आदि को रोक लेती है। यहीं पर लसीका कोशिका विषैले पदार्थों को समाप्त करने के लिए प्रतिविष (Anti-Toxin) बनाती है, जिससे विषैले पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। चोट लगने या जीवाणुओं के आक्रमण के समय लसिका ग्रंथियां बड़ी हो जाती हैं।

2.0 जीवन-विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि

2.1 आहार- रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में संतुलित आहार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए हमें हमेशा ऐसे आहार का सेवन करना चाहिए, जिसमें पर्याप्त रूप से कार्बोहाइड्रेड, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण एवं रेसेदार पदार्थ उपस्थित हों। साथ ही साथ जल का भी पर्याप्त मात्रा में सेवन आवश्यक है।

रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में विटामिन-सी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अत: ऐसे भोज्य पदार्थों का पर्याप्त उपयोग करना चाहिए, जिनमें विटामिन-सी पर्याप्त मात्रा में हो। वे निम्न हैं—आंवला, नींबू, नारंगी, अंगूर, अनार, मौसमी, प्याज, टमाटर, गाजर, हरी सब्जियां एवं अंकुरित अनाज आदि।

2.2 प्रेक्षा-चिकित्सा- इसके अन्तर्गत रोग-प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने हेतु अभ्यास की निम्नांकित प्रक्रिया कारगर सिद्ध होती है—

आसन—उम्र के अनुसार सभी प्रकार के आसन प्रात: आवश्यक हैं। इन्हें आठ-आठ के ग्रुप में बनाकर प्रतिदिन अभ्यास करते रहना चाहिए।

प्राणायाम—अनुलोम-विलोम।
प्रेक्षा—कायोत्सर्ग, शरीर-प्रेक्षा, दीर्घ श्वास-प्रेक्षा।
अनुप्रेक्षा—स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा।

3.0 सारांश

रोग-प्रतिरोधी तंत्र

यह हमारे शरीर का एक सुसंगठित सैनिक-तंत्र है, जो विजातीय तत्त्वों से हमारे शरीर की रक्षा करता है। यह निम्न प्रकार का होता है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. प्राकृतिक रोग-प्रतिरोधी तंत्र

श्वेत रक्त कण—रक्त में इनकी संख्या 8000 प्रति घन मि.मी. के लगभग होती है। इनका कोई निश्चित आकार नहीं होता है, जिससे ये किसी भी स्थान में पहुंच सकते हैं। इनकी उत्पत्ति अस्थि-मज्जा एवं लसिका-ग्रंथियों में होती है। ये विजातीय तत्त्वों को घेरकर, पहचानकर नष्ट करते हैं।

फेगोसाइटोसिस—फेगोसाइट नाम की कोशिकाएँ जब जीवाणु एवं रोगाणु को नष्ट करती है, तब उस प्रक्रिया को फेगोसाइटोसिस कहते हैं।

प्रति जीवाणु रासायनिक पदार्थ—प्रमुख जीवाणु रासायनिक स्राव निम्न हैं—

1. इन्टरफ्रेरॉन 2. काम्प्लीमेन्ट 3. प्रोपर्डीन

त्वचा व श्लेष्मा झिल्लियां—यांत्रिक एवं रासायनिक दो प्रकार की क्रियाओं के माध्यम से ये हमारे शरीर की रक्षा करती हैं।

यांत्रिक क्रिया—इसमें मुख्य रूप से त्वचा का ऊपरी भाग एवं कैरेटीन कार्य करता है, जो जीवाणु आदि को शरीर के भीतर प्रवेश नहीं करने देता।

रासायनिक क्रिया—इसके अन्तर्गत सिबेसियस ग्रंथियों से निकला तैलीय पदार्थ, जिसे सीबम कहते हैं, त्वचा के ऊपर बैक्टीरिया, रोगाणु व फफूंद को पनपने से रोक देता है।

इन्फ्लेमेशन—जब हमारे शरीर की कोशिकाएँ घायल हो जाती हैं, तब इन्फ्लेमेशन की प्रक्रिया के माध्यम से जीवाणुओं, विषैले पदार्थों और विजातीय पदार्थों को शरीर से बाहर निकालकर कोशिकाओं को ठीक होने में मदद करती है।

ज्वर—यह शरीर के अन्दर छिपी हुई बीमारी को बाहर लाने का एक संकेत है।

2. अर्जित रोग-प्रतिरोधी तंत्र

इस प्रक्रिया का विकास तभी होता है, जब शरीर में कुछ विशेष प्रकार के बैक्टीरिया, वाइरस एवं हानिकारक पदार्थ प्रवेश करते हैं। यह दो प्रकार की होती है—

1. सक्रिय अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता—इस प्रक्रिया में कोशिकाएँ शरीर में प्रतिपिण्डों (Anti-Bodies) एवं प्रतिविषों (Anti-Toxins) को उत्पन्न कर रोगाणुओं से हमारी रक्षा करती हैं।

2. निष्क्रिय अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता—यह रोग-प्रतिरोधक क्षमता बाहर तैयार कर इंजेक्शन के माध्यम से हमारे शरीर में प्रवेश कराई जाती है।

4.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राकृतिक रोग-प्रतिरोधक क्षमता को विस्तार से समझाइये।
2. अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता का विस्तार से वर्णन कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. प्रति-जीवाणु रासायनिक पदार्थ को स्पष्ट कीजिए।
2. सक्रिय अर्जित रोग-प्रतिरोधक क्षमता को समझाइये।
3. श्वेत रक्त कणों पर टिप्पणी लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रति घन मिलीमीटर रक्त में श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्या बताइये।
2. फेगोसाइटोसिस क्रिया में कौन-सा रक्त-कण सर्वाधिक भाग लेता है?
3. त्वचा में कितने स्तर होते हैं? नाम बताएँ।
4. ज्वर बीमारी है अथवा बीमारी को बाहर लाने का संकेत?
5. एन्टीजन की पहचान कौन-सी टी-कोशिका करती है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–5 आहार एवं स्वास्थ्य

पाठ–क

आहार की अवधारणा एवं आवश्यकता आहार के घटक पोषक तत्त्व

प्रिय विद्यार्थियों,

हमने पिछले कुछ अध्यायों में तंत्रों एवं उनसे संबंधित रोगों के विषय में आपसे चर्चा की। अब इस इकाई में आपसे आहार के संबंध में चर्चा करेंगे। प्रस्तुत पाठ में आहार की अवधारणा, आहार की आवश्यकता एवं आहार के घटक पोषक तत्त्वों के विषय में अध्ययन प्रारम्भ करते हैं।

हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं—

उद्देश्य

1. आप आहार की अवधारणा को जान सकेंगे।
2. हमें आहार की आवश्यकता क्यों है, इसका ज्ञान होगा।
3. आहार के घटक पोषक तत्त्व क्या हैं, उनके विषय में ज्ञान होगा।
4. घटक पोषक तत्त्वों के स्रोतों के विषय में आपको जानकारी होगी।

विषय–वस्तु

1.0 आहार की अवधारणा
- 1.1 आहार की वैज्ञानिक अवधारणा
  - 1.1.1 ऊर्जा एवं उष्मा उत्पादक आहार
  - 1.1.2 शरीर वर्धक आहार
  - 1.1.3 शरीर रक्षक आहार
- 1.2 आहार की भारतीय अवधारणा

2.0 आहार की आवश्यकता
- 2.1 आवश्यक किलो कैलोरी

3.0 आहार के घटक पोषक तत्त्व
- 3.1 कार्बोहाइड्रेट
  - 3.1.1 मोनो–सैकेराइड्स
  - 3.1.2 डाइ–सैकेराइड्स
  - 3.1.3 ट्राइ–सैकेराइड्स
  - 3.1.4 पौलो–सैकेराइड्स
- 3.2 प्रोटीन
- 3.3 वसा
  - 3.3.1 संतृप्त वसा
  - 3.3.2 असंतृप्त वसा
- 3.4 खनिज लवण
  - 3.4.1 कैल्शियम
  - 3.4.2 फास्फोरस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.4.3 सोडियम

3.4.4 पोटेशियम

3.5 विटामिन

3.6 रेशेदार पदार्थ

3.7 जल

4.0 सारांश

5.0 प्रश्नावली

6.0 सन्दर्भ-ग्रंथ

1.0 आहार की अवधारणा

मनुष्य आहार को क्षुधा की संतुष्टि के लिए ग्रहण करता है, लेकिन यह आहार का प्रमुख उद्देश्य नहीं है। आहार ग्रहण करने का प्रमुख उद्देश्य शरीर को पूर्ण स्वस्थ, निरोग एवं पुष्टता प्रदान करना है। हम जो भोजन ग्रहण करते हैं वह सर्वोत्तम हो सकता है, लेकिन भारतीय महाद्वीप के देशों में एवं अफ्रीका महाद्वीप के कुछ देशों में अधिकांश व्यक्तियों को शरीर की आवश्यकतानुसार पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है उनके लिए भोजन से क्षुधां शांत हो जाना ही पर्याप्त है। लेकिन उसे आहार नहीं कहा जा सकता है। **आहार वह होता है जो हमारी क्षुधा का शांत करने के साथ-साथ पर्याप्त ऊर्जा प्रदान करने वाला उम्र एवं लम्बाई के अनुसार शरीर के भार को नियंत्रित रखने वाला, शरीर के समस्त अंगों को क्रियाशील स्वस्थ एवं निरोग बनाए रखने वाला, पर्याप्त ऊर्जा प्रदान करने वाला एवं शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक व भावनात्मक विकास में भी सहायक हो।**

1.1 आहार की वैज्ञानिक अवधारणा

दवाइयों को छोड़कर वे सभी खाद्य पदार्थ, जो हम खाते हैं, जिनसे हमारा शरीर विकसित, परिपक्व, परिवर्धित, सुडौल व सुगठित होता है तथा हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होते हैं, उन्हें आहार कहते हैं।

गुण एवं कर्मों के आधार पर आहार—1. ऊर्जा एवं उष्मा उत्पादक आहार, 2. शरीर-वर्धक आहार, 3. शरीर रक्षक आहार।

1.1.1 ऊर्जा एवं उष्मा उत्पादक आहार

ऊर्जा एवं उष्मा उत्पादन के लिए आहार के तत्त्वों में मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट एवं वसा अत्यन्त आवश्यक है। जिस भोजन में कार्बोहाइड्रेट की कमी होती है, वहां उसका कार्य प्रोटीन के द्वारा पूर्ण किया जाता है। ऐसे भोजन की आवश्यकता मुख्य रूप से शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्तियों को होती है। प्रौढ़ व्यक्तियों के भोजन में भी कार्बोहाइड्रेट की अधिक आवश्यकता रहती है, जबकि बच्चों के भोजन के लिए प्रोटीन आवश्यक होता है।

स्रोत—

कार्बोहाइड्रेट—चावल, गेहूं, मक्का, बाजरा आदि।
वसा—तेल, वनस्पति घी, देशी घी, चर्बी आदि।
प्रोटीन—सभी प्रकार की दालें।

1.1.2 शरीर वर्धक आहार

प्रोटीन युक्त भोजन के द्वारा शरीर में वृद्धि एवं टूट-फूट की मरम्मत होती है। शरीर की वृद्धि के लिए कुछ मात्रा में वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज पदार्थों में लोहा, कैल्शियम, फास्फोरस आदि की आवश्यकता रहती है। गर्भवती स्त्रियों तथा बच्चों को ऐसे भोजन की अत्यन्त आवश्यकत होती है।

स्रोत—सभी प्रकार की दालें, गेहूँ, तेल आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.1.3 शरीर रक्षक आहार

अधिक मात्रा में प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण युक्त भोजन शरीर रक्षक भोजन कहलाता है। यह हमारे शरीर के रोग-प्रतिरोधक तंत्र को मजबूत करता है। इसमें मुख्य रूप से दूध, दूध के बने पदार्थ, हरी पत्तेदार सब्जियां, फल, मेवा आदि आते हैं। इनमें भी मुख्यत: आंवला, नींबू, संतरा, मौसमी, गाजर आदि।

1.2 आहार की भारतीय अवधारणा

भारतीय परम्परा में आहार को तीन भागों में बांटा गया है—1. सात्विक, 2. राजसिक एवं 3. तामसिक। इन तीनों के द्वारा सत्व, रजस् एवं तमस् गुणों में वृद्धि होती है।

1. **सात्विक**—सात्विक आहार में फल, कन्द-मूल आदि शामिल हैं।
2. **राजसिक**—अनाज, दाल, साक्-सब्जी (पकाये हुए अथवा कच्चे), नमक मसाला रहित एवं सहित।
3. **तामसिक**—प्रमादकारी पदार्थ, यथा—मांस, अण्डा, शराब, सले-गड़े अशुद्ध, दुर्गंधमय पदार्थ आदि।

मनुष्य के लिए सही भोजन कच्चे फल, सब्जी आदि हैं। जहां तक संभव हो ताजी सब्जियां एवं फलों का सेवन ही करना चाहिए। पकाये गए, बासी, प्राकृतिक गुणों से वंचित, मसालों से मिश्रित एवं रसायन मिले भोजन खाने में तो स्वादिष्ट लगते हैं लेकिन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं।

हमें भोजन में आहार की पौष्टिकता पर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए क्योंकि आहार की पौष्टिकता ही आहार की गुणवत्ता एवं जीवन्तता है। हमारा शरीर एक क्रियाशील यंत्र की तरह है जिसमें निरन्तर कुछ न कुछ क्रियाएं होती रहती हैं, जिसके कारण शरीर में निरन्तर टूट-फूट होने से कोशिकाएँ नष्ट होती रहती हैं। इन नष्ट हुई कोशिकाओं का स्थान नई कोशिकाएँ तभी ले सकती हैं, जब हमारे आहार में सभी पौष्टिक गुण उपस्थित हों।

उपरोक्त दोनों अवधारणाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि **दवाइयों के अतिरिक्त वे सभी पदार्थ जिनके सेवन से शरीर निर्मित्त, विकसित, परिवर्धित व परिपक्व होता है, जो स्फूर्ति गति व ऊर्जा प्रदान करने के साथ ही संतुलित व्यक्तित्व निर्माण में भी सहायक होते हैं, उन्हें आहार कहते हैं।**

2.0 आहार की आवश्यकता

हमारा शरीर विभिन्न रासायनिक तत्त्वों से मिलकर बना है। शरीर में प्रतिक्षण हजारों कोशिकाएँ नष्ट हो रही है, जिससे रासायनिक तत्त्वों की कमी हो जाती है, साथ ही शरीर विकास भी करता है, इसीलिए उसे रासायनिक तत्त्वों के साथ शक्ति भी चाहिए जिनकी पूर्ति आहार के द्वारा होती है। इसीलिए आहार हमारी आवश्यकता है इसे और अधिक विस्तृत रूप से निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझाा जा सकता है—

1. शरीर में एक निश्चित औसत तापमान होता है, जिसे भोजन के द्वारा बनाए रखा जा सकता है।
2. शरीर में वृद्धि और विकास भोजन के द्वारा ही संभव है, इसीलिए आहार की आवश्यकता है।
3. जीवन शक्ति को बनाए रखना भोजन से ही संभव है।
4. शरीर की गतिशीलता के कारण तथा विभिन्न अंगों की निरन्तर क्रियाओं के कारण कोशिकाओं व ऊत्तकों में निरन्तर टूट-फूट होती रहती है तथा नष्ट भी होती रहती है। कोशिकाओं की मरम्मत तथा नई कोशिकाओं के निर्माण के लिए जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है वे आहार से ही प्राप्त होते हैं।
5. शरीर पर निरन्तर रोगों का अक्रमण होता रहता है, इनसे हमारी रक्षा रोग प्रतिरोधक शक्ति करती है। यह शक्ति भी हमें भोजन के द्वारा ही प्राप्त होती है।
6. हमारे शरीर में कार्य करने के लिए विभिन्न शक्ति की आवश्यकता रहती है, जैसे- शरीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, भावनात्मक शक्ति, चिंतनशक्ति, तर्क शक्ति, कल्पना शक्ति, स्मरण शक्ति आदि। ये सभी शक्तियाँ संतुलित आहार के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. शरीर में ऊर्जा तथा शक्ति के भंडार गृह भी है, जिनमें शक्ति संग्रहित रहती है। यह माइटोकोण्ड्रिया में ए.टी.पी. के रूप में, यकृत एवं ऊत्तकों में ग्लाइकोजिन तथा वसा के रूप में संग्रहित रहती है। यह भी हमें आहार से ही प्राप्त होती है।
8. हमारा शरीर शैशवास्था से किशोरावस्था, किशोरावस्था से युवावस्था, युवावस्था से प्रोढ़ावस्था आदि में परिवर्तित एवं विकसित होता जाता है। यह परिवर्तन एवं विकास समय वृद्ध ढ़ंग से होता रहे इसमें आहार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
9. आहार व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती है, आहार के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार को बदला जा सकता है।
10. उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त भी आहार की आवश्यकता है—
   - ❖ स्वागत व सत्कार के लिए आहार की आवश्यकता है।
   - ❖ संबंधों को बनाए रखने के लिए आहार की आवश्यकता है।
   - ❖ सामाजिकता को स्थापित करने के लिए आहार की आवश्यकता है।
   - ❖ सृष्टि द्वारा निर्मित भोक्ता उपभोक्ता चक्र को बनाए रखने के लिए आहार की आवश्यता है आदि।

2.1 आवश्यक किलो कैलोरी

जो ऊर्जा हमें पोषक तत्त्वों से प्राप्त होती है, उस ऊर्जा को जब हम तापमान की इकाई में लिखते हैं तब उसे कैलोरी (Colorie) कहते हैं। एक किलो कैलोरी (Kcal.) से तात्पर्य है कि एक किलोग्राम जल को 15^0 से 16^0C तक गर्म करने में जितनी ऊर्जा खर्च होती है उसे किलो कैलोरी (Kcal) कहते हैं। अब किलोजूल (KJ) इकाई का प्रयोग होने लगा है।

आवश्यक किलोकैलोरी (Kcal)
बच्चा—1500-2000 Kcal
किशोर-किशोरी—2000-2500 Kcal
युवक-युवती—2500-3000 Kcal
गर्भवती महिला—3200-3400 Kcal
स्तनपान कराने वाली माँ—3600-3800 Kcal
भारी परीश्रम करने वाले श्रमिक व खिलाड़ी—3500-3900 Kcal

3.0 आहार के घटक पोषक तत्त्व

हमारे भोजन में कुछ विशिष्ट तत्त्व होते हैं, जिन्हें पोषक तत्त्व कहते हैं। ये सभी तत्त्व शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करते हैं, जिनसे शरीर की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ती होती है। भोज्य पदार्थों में इनकी मात्रा तथा रूप भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं।

मुख्यत: इन पोषक तत्त्वों में आक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन, नाइट्रोजन, गंधक, फास्फोरस आदि तत्त्व उपस्थित होते हैं। यह पोषक तत्त्व पाचन क्रिया के द्वारा अपने सूक्ष्मतम् अन्तिम अंशों में विभक्त हो जाते हैं, तथा आंतों के द्वारा सीधे या अधिकांश यकृत में होकर आवश्यकतानुसार कोशिकाओं में पहुँचते हैं, जहां विभिन्न क्रियाओं के बाद शरीर निर्माण, वर्धन, गठन, क्षतिग्रस्त अवयवों की मरम्मत आदि कार्य करने के साथ-साथ ऊर्जा व उष्णता भी पैदा करते हैं। मुख्य पोषक तत्त्व निम्न हैं—

1. कार्बोहाइड्रेट—Carbohydrate
2. प्रोटीन—Protain
3. वसा—Fat
4. खनिज लवण—Mineral
5. विटामिन—Vitamin
6. जल—Water
7. रेशेदार पदार्थ—Roughage-Cellulose

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.1 कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate)

खाद्य पदार्थों में कार्बोहाइड्रेट, स्टार्च या शर्करा के रूप में उपस्थित होते हैं। वैसे स्टार्च अनेक सरल अणुओं का मिश्रण होता है, जो पाचन क्रिया के माध्यम से सूक्ष्मतम अंश अर्थात् शर्कराओं में विभक्त हो जाता है।

कार्बोहाइड्रेट कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोग से बना होता है, इसका सूक्ष्म रूप मोनोसैकेराइड होता है, जिसमें कार्बन के 6, हाइड्रोजन के 12 और आक्सीजन के 6 परमाणु ($C_6H_{12}O_6$) होते हैं।

काबोहाइड्रेट को मुख्य चार भागों में बांटा जा सकता है—

1. मोनो-सैकेराइड्स Mono-Sacchorides
2. डाई-सैकेराइड्स Die-Sacchorides
3. ट्राई-सैकेराइड्स Tri-Sacchorides
4. पौली-सैकेराइड्स Poly-Sacchorides

3.1.1 मोनो सैकेराइड्स (Mono-Sacchorides)- ये अन्तिम सूक्ष्मतम् अंश है इनमें शर्करा की एक ही इकाई ($C_6H_{12}O_6$) रहती है। इसके मुख्य रूप निम्न है—

1. ग्लुकोज Glucose (डेक्सट्रोज Dex trose)
2. फ्रक्टोज Fructose (लेबुलोज Lavulose)
3. गेलेक्टोज Galactose

3.1.2 डाइसैकेराइड्स (Die-Saccharides)- यह मोनो सैकेराइड्स के दो परमाणुओं से मिलकर बनने वाली शर्करा है इस प्रक्रिया में इसका एक अणु जल (H_20) विसर्जित हो जाता है लेकिन जब यह मोनो में विभक्त होती है तब इसे एक अणु जल की आवश्यकता रहती है—

$$C_6H_{12}O_6+C_6H_{12}O_6 \text{—} C_{12}H_{22}O_{11}+H_2O$$

इसके मुख्य रूप तथा उनका मोनो में विघटन निम्न प्रकार होता है—

माल्टोज Moltose = ग्लुकोज + ग्लुकोज

सुक्रोज Sucrose = ग्लुकोज + फ्रक्टोज

लेक्टोज Loctose = ग्लुकोज + गैलेक्टोज

3.1.3 ट्राइ-सैकेराइड्स (Tri-Saccharides)- ट्राइ-सैकेराइड्स का मुख्य उदाहरण रेफिनोज है। ट्राइ-सैकेराइड्स में मोनो-सैकेराइड्स के तीन परमाणु होते हैं।

3.1.4 पौलो-सैकेराइड्स (Poly-Saccharides)

पौली-सैकेराइड्स जल में धुल नहीं पाते जब मोनो सैकेराइड्स व डाई सैकेराइड्स जल में घुलनशील होते हैं। यह अपने मौलिक स्वरूप में मिठास नहीं दे पाते हैं इनका पाचन अन्तिम अंशों में विभक्त होने पर ही हो पाता है।

एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट 4Kcal ऊर्जा प्रदान करता है।

आवश्यक-दैनिक मात्रा—

1. एक स्वस्थ व्यक्ति को लगभग 50-70 प्रतिशत कैलोरी कार्बोहाइड्रेट से प्राप्त करनी चाहिए।
2. 1 ग्राम कार्बोहाइड्रेट से 4 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।
3. इस तरह लगभग 400 से 450 ग्राम कार्बोहाइड्रेट प्रतिदिन आहार के रूप में सेवन करना चाहिए।

स्रोत—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ग्राम/100 ग्राम में (ICMR)

अनाज	दालें	सब्जियाँ जड़वाली	सब्जियाँ अन्य	फल
चावल–77.9	मूंग–67.8	आलू–22.6	सिघाड़ा–67.00	किसमिस–77.4
गेहूँ–72.1	उड़द–61.1	अरबी–21.2	मटर–15.9	अजीर–68.1
बाजरा–67.3	अरहर–60.3	जिभीकन्द–18.4	कटहल–10.0	खजूर–67.4
मक्का–66.2	राजमा–60.6	शकरकन्द–28.2	प्याज–8.9	आम–17.0
ज्वार–70.3	चना–58.8	गाजर–10.8	भिण्डी–6.4	केला–27.2

उपरोक्त के अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेट के मुख्य स्रोत हैं—

1. शक्कर–99.8
2. गुड़–95.0
3. शहद–79.5

3.2 प्रोटीन (Protein)

प्रोटीन एक रासायनिक सम्मिश्रण है। जिसमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, गंधक फास्फोरस आदि 20 प्रकार के यौगिक होते हैं। इनका आधार नाइट्रोजन है जो लगभग 16 प्रतिशत तक पाया जाता है। इन यौगिकों को एमीनो एसिड कहते हैं जो प्रोटीन का अन्तिम अंश है। इनमें से 8 एमीनो एसिड आवश्यक तथा शेष 12 अनावश्यक है इनकी सूची निम्न है—

आवश्यक	अनावश्यक
ल्यूसिन	हिल्टिडीन
आइसोल्यूसिन	ग्लाइसिन
लाइसिन	आर्जीनिन
वैलिन	सिस्टीन
मिथियोनाइन	सिरिन
थ्रोयोनिन	एस्पारजिन
ट्रिप्टोफेन	ग्लूटामिन
फिनायलेंनाइन	ग्लूटामिन एसिड
एस्पारटिक एसिड	टाइरोसिन

शरीर में उपस्थित प्रोटीन का 1/3 भाग मांसपेशियों, 1/5 भाग अस्थि, दांत त्वचा आदि में तथा शेष ऊत्तक व तरल द्रव्यों में पाया जाता है। **एक ग्राम प्रोटीन 4Kcl ऊर्जा प्रदान करता है।**

आवश्यक दैनिक मात्रा—

1. प्रति किलो शारीरिक वजन के अनुसार प्रति एक ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन आवश्यक है। (60 Kg व्यक्ति के लिए 60 ग्राम श्रेष्ठ)
2. गर्भवती महिला के लिए प्रतिदिन 10 ग्राम अतिरिक्त मात्रा आवश्यक है।
3. स्तनपान कराने वाली महिला को 20 ग्राम अतिरिक्त प्रोटीन आवश्यक है।
4. 7–12 माह तक के बच्चे को 1.7 ग्राम/Kg. शारीरिक भार के अनुसार
5. 1 वर्ष से 3 वर्ष तक के बच्चे को 18 ग्राम/दिन शारीरिक भार के अनुसार
6. 4 वर्ष से 12 वर्ष तक के बच्चे को 30 ग्राम/दिन शारीरिक भार के अनुसार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. बच्चों में वजन के अनुसार 3 ग्राम/Kg. प्रोटीन देना चाहिए।

स्रोत—

ग्राम/100 ग्राम में

दालें	**अनाज**	**सब्जी**	**फल मेवा**
सोयाबीन—43.2	गेहूँ—11.9	मटर—7.2	मूंगफली—27.0
मसूर—25.2	बाजरा—11.6	ग्वारफली—3.2	बादाम—20.8
मूंग—24.1	जौ—11.5	अरबी—3.1	काजू—21.2
उड़द—24.1	मक्का—11.2	सोया—6.1	आखरोट—15.6
अरहर—23.3	ज्वार—10.5	आलू—4.5	पिस्ता—19.8

उपरोक्त के अतिरिक्त प्रोटीन के निम्न मुख्य स्रोत हैं—

क्रीम निकला दूध—38.0

छैना—15.0

पनीर—25.0

खोया—16.0

3.3 वसा (Fat)- वसा का निर्माण कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के संयोग से होता है इसमें आक्सीजन की मात्रा कम होती है। लेकिन ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन की तुलना में दोगुनी होती है इसका कारण यह है कि शरीर में वसा का आक्सीकरण शीघ्रता से होता है। हमारी त्वचा के नीचे एक परत वसा की होती है। इसके अतिरिक्त भी चर्बी के रूप में शरीर के विभिन्न स्थानों पर संग्रहीत रहती है। हमारे भोज्य पदार्थ में जितने भी चिकने पदार्थ मिले होते हैं वे सभी वसा होते हैं।

लिपिड्स (Lipids)- कुछ आर्गेनिक पदार्थ वसा से मिलते-जुलते होते हैं, लेकिन वे वसा नहीं होते हैं। इन्हें वसा की श्रेणी में रखा जा सकता है। लेकिन इनका महत्त्व हमारे लिए होता है, जैसे—

1. ये हार्मोन्स की बनावट में भाग लेते हैं।
2. कोशिकाओं के अंश होते हैं।
3. रक्त व त्वचा में भी विद्यमान रहते हैं।
4. विटामिन के निर्माण में सहायक होते हैं।

इन आर्गेनिक पदार्थों को स्टेरॉल (Sterols) कहा जाता है। इनसे कोलेस्ट्राल (Cholesterol) तथा आर्गेस्टेरॉल (Ergosterol) मुख्य है।

वसा में ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्ल के संयोग से बनने वाले ग्लिसराइड्स तथा चयापचय के बाद बनने वाले ट्राइग्लिसराइड्स भी इसी श्रेणी में आते हैं, अत: वैज्ञानिक दृष्टि से इन सभी पदार्थों को वसा (Fat) न कहकर लिपिड्स (Lipids) कहना ज्यादा उपयुक्त होता है। हमारे शरीर में लगभग 13.8 प्रतिशत भाग वसा का होता है यदि यह बढ़कर 20 प्रतिशत से अधिक हो जाये तो मोटापे (Obrsity) की स्थिति बन जाती है। ऐसी स्थिति बनने से पहले ही भोजन एवं आसन प्राणायाम के द्वारा नियन्त्रण कर लेना चाहिए।

सरलता की दृष्टि से वसा को दो भागों में बांटा जा सकता है-

3.3.1 संतृप्त वसा (Saturated Fat)- संतृप्त वसा बहुत अधिक लाभकारी नहीं होती है। यह मुख्यत: घी, मलाई, मक्खन, पनीर, माँस पर लगी चर्बी एवं उसी चर्बी से बने अन्य पदार्थों में मिलती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.3.2 असंतृप्त वसा (Unsaturated Fat)– यह वसा लाभकारी होती है इससे शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा अधिक नहीं बढ़ती है, हृदय रोगियों तथा मधुमेह एवं मोटापे ग्रस्त रोगियों को आवश्यकतानुसार इसी वसा का प्रयोग करना चाहिए। ये मुख्यत: वनस्पति तेलों में पाई जाती है। **1 ग्राम वसा लगभग 9 Kcl ऊर्जा प्रदान करता है।**

आवश्यक दैनिक–मात्रा

1. कुल आवश्यक कैलोरी का 15 से 20 प्रतिशत भाग वसा से पूर्ण करना चाहिए।
2. लगभग 50 ग्राम वसा प्रतिदिन उपयोग में लेनी चाहिए।
3. लेकिन उक्त में से 20 ग्राम वनस्पति तेल होना चाहिए।

स्रोत—

ग्राम प्रति 100 ग्राम वसा में असंतृप्त वसा—

कुसुम्भ (Saffower) का तेल	—	75
विनौला	—	50
तिल का तेल	—	42
मूंगफली का तेल	—	28
सरसों का तेल	—	5
घी	—	4
नारीयल तेल	—	2

3.4 खनिज लवण

शरीर के विकास में खनिज लवण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि हमारे शरीर का लगभग 1/4 भाग खनिज लवण से निर्मित होता है। खनिज लवण हमारे शरीर के निर्माण के साथ–साथ टूट–फूट की मरम्मत करने का कार्य भी करते हैं। इनके अभाव से रोग हो सकते हैं। खनिज अपना कार्य अच्छी तरह विटामिन के सहयोग से ही कर सकते हैं। हमारे शरीर के लिए आवश्यक मुख्य खनिज निम्न हैं—

1. कैल्शियम 2. फास्फोरस 3. सोडियम 4. पोटेशियम
5. मैग्नेशियम 6. मैंगेनीज 7. जिंक 8. सल्फर
9. कॉपर 10. कोबाल्ट 11. क्लोरीन 12. आयोडीन 13. फ्लूओरीन।

3.4.1 कैल्शियम (Calcium)

कार्य—

1. अस्थि व दांतों का निर्माण करना।
2. रक्त जमने में सहायता करना।
3. तंत्रिकाओं में उद्दीपन पैदा करना।
4. हृदय की मांसपेशियों में संकुचन क्रिया में सहायता करना।

आवश्यक दैनिक मात्रा—

1. 0.8 ग्राम
2. स्तनपान कराने वाली माता को 1.0 ग्राम प्रतिदिन

स्रोत—

1. तिल 2. मेवा एवं फल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. खोया
4. पनीर
5. गाय का दूध
भैंस का दूध

3.4.2 फास्फोरस (Phosphorus)

कार्य—

1. अस्थि व दांतों को मजबूती प्रदान करना।
2. ऐसे एन्जाइम बनाना जो कार्बोहाइड्रेट व वसा के चयापचय में सहायक होते हैं।
3. अम्ल-क्षार संतुलन में सहायता करना।
4. वसीय-अम्ल के संचार में सहयोग करना।

आवश्यक दैनिक मात्रा—

लगभग कैल्शियम के बराबर

स्रोत—

सोया साग	सभी सुखे मेवा	दूध
गाजर	तिल	खोया
मटर	राई	सिंघाड़ा
धनिया	मिर्च	

3.4.3 सोडियम (Sodium)

कार्य—

1. अम्ल-क्षार संतुलन।
2. तंत्रिकाओं में उद्दीपन पैदा करना।
3. ग्लुकोज को कोशिकाओं में प्रवेश करवाने में सहयोग करना।
4. जल वितरण के नियंत्रण में सहयोग करना।

आवश्यक दैनिक मात्रा—

1. 10 ग्राम प्रतिदिन
2. उच्च रक्तचाप एवं गुर्दे की बीमारी वाले रोगियों को कम मात्रा में देनी चाहिए।
3. गर्मी, पसीना, उल्टी, दस्त आदि स्थितियों में ज्यादा मात्रा देनी चाहिए।

स्रोत—

1. नमक
2. सभी स्वादक पदार्थों में अल्प मात्रा पायी जाती है।

3.4.4 पोटेशियम (Potassium)

कार्य—

1. अम्ल-क्षार संतुलन में सहयोग।
2. मांसपेशियों के संकुचन में सहायता करना।
3. तंत्रिकाओं के उद्दीपन पैदा करना।
4. ग्लाइकोजन व प्रोटीन का पुनः निर्माण के लिए एन्जाइम को उत्प्रेरित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आवश्यक दैनिक मात्रा—

1. 2 से 6 ग्राम प्रतिदिन

स्रोत—

मेवा	खीरा	दूध
सेव	पालक	कमड़ी
चुस्दर	सोयावीन	अनाज व दालें

क्र. नाम	कार्य	आवश्यक दैनिक मात्रा	स्रोत
5. मेग्नेशियम (Magnesiam)	अतिसूक्ष्म	अस्थि व दांतों की बनावट में भाग लेना, हार्मोन्स उत्पादन में सहयोग करना, कुछ एन्जाइम को उत्प्रेरित करना, जैसे—कार्बोहाइड्रेट चयापचय में कार्य आने वाले।	दूध मूली, शलजम, प्याज, खीरा, फूलगोभी, टमाटर, पालक, आलू आदि
6. मैंगेनीज (Manganese)	अतिसूक्ष्म	कार्बोहाइड्रेट व वसा चयापचय में उत्प्रेरक का कार्य करता है। थाइरोक्सीन के निर्माण में सहयोग करना	दूध आदि भोज्य पदार्थों से पूर्ति हो जाती है।
7. जिन्क (Zink)	अतिसूक्ष्म	संतुलित हार्मोन्स की स्थिरता बनाये रखना। प्रोटीन पाचक एन्जाइम का उत्प्रेरक बनाना।	दूध आदि भोज्य पदार्थों से पूर्ति हो जाती है।
8. सल्फर (Sulpher)	अतिसूक्ष्म	इन्सुलिन हार्मोन्स के निर्माण में भाग लेना बाल, नाखून व कार्टीलेज निर्माण में भाग लेना।	दूध आदि भोज्य पदार्थों से पूर्ति हो जाती है।
9. कॉपर (Copper)	अतिसूक्ष्म मात्रा	हीमोग्लोबिन के निर्माण में सहयोग करना	खाद्य पदार्थों से पूर्ति हो जाती है।
10. कोबाल्ट (Cobalt)	अतिसूक्ष्म मात्रा	रक्तकणिकाओं के निर्माण में सहयोग करना	खाद्य पदार्थों से पूर्ति हो जाती है।
11. क्लोरीन (Chlorine)	अतिसूक्ष्म मात्रा	सोडियम व पोटेशियम के कुछ कार्यों में उनका सहयोग करना, जैसे—1. अम्ल-क्षार संतुलन, 2. द्रव्य वितरण आदि	आमाशय में HCl और खाद्य नमक से प्राप्त हो जाती है।
12. आयोडीन (Iodine)	.15 से 0.3 Mg.	1. थाइरोक्सीन (Thyroxine) हार्मोन्स का निर्माण करना 2. उक्त हार्मोन्स की कमी से होने वाले रोगों से मुक्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका— जैसे— 1. चयापचय की गति मंद हो जाना, 2. ऊर्जा उत्पत्ति में कमी, 3. आक्सीकरण प्रक्रिया में कमी, 4. विटामिन निर्माण में सहयोग करना, 5. गलकंठ (Goitor) बिमारी को दूर करना।	जल, हरे पत्ते वाली सब्जी, टमाटर, लहसुन, गाजर, केला, मटर, नींबू, नारंगी। वर्तमान में सभी पैकेट युक्त नमक में मिला होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13. फ्लूओरीन (Fluorine)	अतिसूक्ष्म मात्रा	दांतों की इनैमल (Enamel) की स्वस्थता बनाये रखना, संक्रमण रोकना, आंखों को पुष्ट करना। नोट—जहां इसकी मात्रा ज्यादा होती है, वहां व्यक्तियों के दांत पीले पड़ जाते हैं तथा कमर भी जल्दी झुक जाती है,	कमी होने पर फ्लोराइड युक्त टूथ पेस्ट का प्रयोग करें। जल में अतिरिक्त मात्रा मिलायें।

3.5 विटामिन

विटामिन में कोई कैलोरी नहीं होती है, फिर भी यह हमारे शरीर के लिए आवश्यक होते हैं क्योंकि शरीर के चयापचय में रासायनिक प्रक्रियाओं के नियमन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। विटामिन दो प्रकार के होते हैं—

1. जल में विलेय (Water soluble)
   विटामिन—B
   विटामिन—C
2. वसा विलेय
   विटामिन—A
   विटामिन—D
   विटामिन—E
   विटामिन—K

शरीर को सभी प्रकार के विटामिन की आवश्यकता पड़ती है। इनकी कमी से विभिन्न प्रकार के रोग आदि हो जाते हैं। सभी विटामिन के नाम, उनके कार्य, उनकी कमी के लक्षण एवं स्रोत निम्न हैं—

विटामिन-ए (रेटिनॉल)

कार्य—संक्रामक रोगों से त्वचा और आंख की आवश्यक रक्षा करता है। नेत्र ज्योति के लिए आवश्यक।

कमी के लक्षण—शारीरिक वृद्धि में रुकावट, रतोंधी व जीरोप्थैल्मिया, दांतों में पायरिया।

स्रोत—फल, टमाटर, मक्खन, गाजर आदि।

विटामिन-बी$_1$ (थायमिन)

कार्य—वृद्धि, कार्बोहाइड्रेट उपापचय नियंत्रण, हृदय, तन्त्रिका और पेशियों की सक्रियता के लिए आवश्यक।

कमी के लक्षण—वृद्धि का रुकना, भूख और वजन घटना, तन्त्रिका विकास का अवरूद्ध होना, बेरी-बेरी रोग हो जाना, थकान का होना, बदहजमी, पेट की खराबी आदि।

स्रोत—अन्न, दूध, सोयाबीन, अंकुरित अनाज, यीस्ट आदि।

विटामिन-बी$_2$ (राइबोफ्लेविन)

कार्य—कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा के उपापचय में मदद करता है। मांसपेशियों को स्वस्थ रखता है।

कमी के लक्षण—दृष्टि धुंधली होना, वृद्धि का रुकना, जीभ पर छाले पड़ना, असमय बुढ़ापा, नींद में कमी, पेट दर्द और त्वचा पर धब्बे की शिकायत होना।

स्रोत—सोयाबीन, दूध, हरी सब्जी आदि।

विटामिन-बी$_3$ (पैण्टोथेनिक एसिड)

कार्य—कोएन्जाइम-ए तथा ऐसीटाइलकोलीन के संश्लेषण के लिए आवश्यक।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Jadhun

कमी के लक्षण—पेशियों में लकवा, पैरों में जलन महसूस होना।

स्रोत—यीस्ट, दूध आदि।

विटामिन-बी$_5$ (निकोटिनैमाइड)

कार्य—केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का पोषण करता है। कार्बोहाइड्रेड, प्रोटीन और वसा के उपापचय में सहायता करता है। यह सिजोफ्रेनिया नामक बीमारी के इलाज में भी उपयोगी है। रक्त के सीरम में कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम करता है।

कमी के लक्षण—पेलाग्रा रोग, त्वचा का फट जाना, जीभ चिकनी और पाचन क्रिया में गड़बड़ी।

स्रोत—यीस्ट, आलू, साबुत अनाज, टमाटर, पत्ते वाली सब्जियां आदि।

विटामिन-बी$_6$ (पाइरीडॉक्सिन)

कार्य—प्रोटीन को पचाने के लिए आहार में इसकी उपस्थिति अनिवार्य है। इसे प्रोटीन विटामिन भी कहा जाता है। यह संक्रामक रोगों से हमारी रक्षा करता है।

कमी के लक्षण—पाचन शक्ति कमजोर होना, डायरिया, त्वचा रोग रक्ताल्पता आदि।

स्रोत—सभी प्रकार के अनाज।

फॉलिक एसिड

कार्य—यह रक्त की लाल और सफेद कोशिकाओं के निर्माण में सहायक होता है। यह गर्भ में पल रहे बच्चे के स्नायुतंत्र को स्वस्थ रखता है।

कमी के लक्षण—एनीमिया, पेचिस रोग होना।

स्रोत—हरी सब्जियां, यीस्ट आदि।

विटामिन-बी$_{12}$ (साइनोकोबालमिन)

कार्य—यह शरीर की लाल रक्त कणिकाओं के निर्माण में सहायता करता है। न्यूक्लिक अम्लों के संश्लेषण में आवश्यक है। शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए अनिवार्य है।

कमी के लक्षण—रुधिर की कमी का होना।

स्रोत—दूध आदि।

विटामिन-सी (एस्कॉर्बिक एसिड)

कार्य—टूटी हड्डी को जल्दी जोड़ने में सहायता करता है। वाहिकाओं की दीवारों को मजबूत करता है। बच्चों के दांत निकलने में मदद करता है। घाव जल्दी भरने में सहायता करता है।

कमी के लक्षण—स्कर्वी रोग, मसूड़े फूलना, अस्थियां कमजोर होना।

स्रोत—नींबू, संतरा, नारंगी, टमाटर, पत्ती वाली सब्जियां, आंवला, खट्टे पदार्थ आदि।

विटामिन-डी (कैल्सिफैरॉल)

कार्य—हड्डियों को मजबूत और स्वस्थ रखता है।

कमी के लक्षण—बच्चों को सूखा रोग (रिकेट्स), दांतों का कमजोर होना, आस्टियोमैल्सिया।

स्रोत—दूध, सूर्य का प्रकाश आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विटामिन-ई (टोकोफेरोल)

कार्य—शरीर के अंदर रक्त संचार को बनाए रखता है। पुरुषों में शुक्राणुओं तथा स्त्रियों में मासिक धर्म को सुचारू बनाए रखकर स्वाभाविक प्रजनन में सहायता पहुंचाता है। गर्भपात और पेचिस को रोकता है। त्वचा को लावण्यमय बनाता है।

कमी के लक्षण—जनन शक्ति कमजोर होना, गर्भाशय में ही भ्रूण की मृत्यु हो सकती है।

स्रोत—पत्ते वाली सब्जियां, दूध, मक्खन, अंकुरित गेहूँ आदि।

विटामिन-के (फाइलोक्विनोन)

कार्य—रक्त के थक्के को जमाने में मदद करता है। शल्यक्रिया आरम्भ होने के पहले यह विटामिन रोगी को दिया जाता है, जिससे मरीज के शरीर से अधिक मात्रा में खून निकलने न पाए।

कमी के लक्षण—कट जाने पर रक्त का प्रवाह शीघ्र बंद नहीं होता। (हीमोफीलिया)

स्रोत—हरी सब्जियां, सोयाबीन का तेल, टमाटर आदि।

विटामिन-एच (बायोटिन)

कार्य—कार्बोहाइड्रेड, प्रोटीन और वसा के पाचन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कमी के लक्षण—शरीर में इसकी कमी से भूख मर जाती है। त्वचा पीली पड़ जाती है, लकवा हो जाता है।

स्रोत—यह मनुष्य की आंतों में स्वत: बनता है।

विटामिन-पी (एरीओडिक्टायोल)

कार्य—इनकी उपस्थिति से विटामिन-सी सक्रिय रहता है। रेटिना में रक्तस्राव के उपचार में उपयोगी।

कमी के लक्षण—इसकी कमी से शरीर में छोटे-छोटे लाल निशान पड़ जाते हैं। त्वचा से रक्तस्राव हो जाता है।

स्रोत—आंवला, नींबू।

नोट—दूध एक ऐसा भोज्य पदार्थ है, जिसमें अधिकांश पोषक तत्त्व उपस्थित होते हैं (लोह तत्त्व को छोड़कर)।

3.6 रेशेदार पदार्थ (Roughage)

हमारे पाचन संस्थान को क्रियाशील बनाये रखने के लिए रेसेदार पदार्थ बहुत उपयोगी है। ये मांसपेशियों के संकुचन एवं प्रसारण में भी सहायता करते हैं। ये स्वयं तो नहीं पचते लेकिन इनकी उपस्थिति मात्र से अन्य तत्त्वों को पचाने में मदद करते हैं। सभी रेसेदार पदार्थ पूर्ण रूप से मल के साथ बाहर निकल जाते हैं। ये पदार्थ कब्ज को समाप्त करने तथा पाचन तंत्र की सफाई करने में सबसे ज्यादा उपयोगी है। अप्रत्यक्ष रूप से पाचन में इनका सहयोग बहुत अधिक है।

स्रोत—हरी सब्जी, गाजर, शलजम, पत्तागोभी, चुकन्दर, अंजीर, अनाज छिलके (चोकर) आदि।

नोट—आटा छानकर रोटी नहीं बनानी चाहिए, क्योंकि उनमें यह पदार्थ पाया जाता है।

3.7 जल (Water)

हमारे शरीर का लगभग 65 प्रतिशत भाग जल के द्वारा निर्मित्त है, इसलिए कोई भी व्यक्ति बिना जल के एक सप्ताह से ज्यादा जीवित नहीं रह सकता है। रक्त में इसकी मात्रा 60 से 62 प्रतिशत तक पाई जाती है। जो जल की महत्ता को स्पष्ट करता है।

जल का महत्त्व—जल के महत्त्व को निम्न बिन्दुओं के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है—

1. शरीर बनाने वाले लगभग सभी प्रकार के स्रोत का आधार जल ही है।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. जल के कारण ही ऊत्तक अपनी क्रियाएँ सही रूप में कर पाते हैं।

3. भोजन एवं उनका पचा हुआ भाग जल में ही घुलकर शरीर के द्वारा अवशोषित होते हैं।

4. जल शरीर के तापक्रम को संतुलित रखता है।

5. शरीर के हानिकारक पदार्थों को जल के माध्यम से (मल-मूत्र एवं पसीने के द्वारा) ही बाहर निकाला जाता है।

6. शरीर के अन्दर आक्सीकरण की क्रिया जल के द्वारा ही हो पाती है।

7. शरीर की अन्य रासायनिक अभिक्रियायें जल द्वारा ही संभव होती हैं।

8. जल की कमी से मुंह सूखने लगता है तथा प्यास बढ़ जाती है।

9. जल पाचन शक्ति को बढ़ाता है।

10. जल के माध्यम से ही हम कब्ज जैसी बीमारी से बचे रहते हैं।

11. रक्त में जल की कमी होने से उसमें उपस्थित हानिकारक पदार्थ पर्याप्त रूप से छन नहीं पाते हैं।

12. गाठिया, पथरी, अपच, कब्ज, मंदाग्नि आदि बीमारियां जल की कमी के कारण ही होती है।

13. जल मस्तिष्क तथा मेरूदण्ड के लिए पोषक व बफर का कार्य करता है।

14. जल ग्लाइकोजन तथा ट्राइग्लिसराइड के संचयन में सहायक होता है।

15. जल के माध्यम से विभिन्न खनिज पदार्थ शरीर को प्राप्त होते हैं।

प्रिय विद्यार्थियों! जल का महत्त्व उपरोक्त बिन्दुओं के माध्यम से आपके समझ में आ गया होगा। जैसा की आपको ज्ञात है कि किसी भी भोज्य पदार्थ की कमी या अधिकता शरीर के लिए हानिकारक होती है, उसी प्रकार जल की कमी या अधि ाकता हमारे लिए हानिकारक होती है।

जल की कमी से होने वाले प्रभाव

जल की कमी से शरीर पर निम्न प्रभाव होता है—

1. यदि शरीर में जल की मात्रा 20 प्रतिशत तक कम हो जाये तो व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है।

2. 10 प्रतिशत तक जल की कमी से निर्जलीकरण की स्थिति बन जाती है, जिससे निम्न प्रभाव होता है—

   (1) आँखें निस्तेज हो जाती है व अन्दर की तरफ धंस जाती है।

   (2) त्वचा पर झुर्रियां पड़ जाती है।

   (3) हाथों व पैरों में ऐंठन होने लगीत है।

   (4) मुँह सूख जाता है।

   (5) पेशाब लगभग बंद हो जाती है।

   (6) रक्तचाप कम हो जाता है।

   (7) हाथ व पैर ठंडे होने लगते हैं।

   (8) नाड़ी पकड़ से बाहर हो जाती है।

उपचार—

1. समय-समय पर जल पर्याप्त मात्रा में पीते रहना चाहिए।

2. जल पीते समय ओठों का भीगना आवश्यक है। इससे प्यास बुझती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. जल की कमी होने पर जल में चुटकी भर नमक घोलकर पीना चाहिए। ज्यादा कमी होने पर जल में ग्लुकोज व नमक मिलाकर पीना चाहिए।

4. उपरोक्त विधि से लाभ न होने की स्थिति में ग्लुकोज-सेलाइन वाटर तुरन्त नाड़ी के द्वारा शरीर में पहुंचाना चाहिए।

जल की अधिकता से होने वाला प्रभाव

जहाँ जल की कमी हमारे लिए हानिकारक है वहीं जल की अधिकता भी हमारे लिए हानिकारक होती है, जो विभिन्न प्रकार की विकृतियां हमारे शरीर में उत्पन्न करती है। शरीर में जल की अधिकता अधिकांशत जल के पर्याप्त निष्काषन न हो पाने के कारण होती है शरीर जल की अधिकता से निम्न स्थितियां उत्पन्न होने लगती है—

10 प्रतिशत से अधिक जल होने पर शोध की स्थिति बन जाती है इसके निम्न कारण हैं—

I. सोडियम व पोटेशियम परमाणु की क्रमशः अन्तःकोशिका तथा अन्तराकोशिका कभी अधिकता के कारण या प्रोटीन की कमी के कारण होती है।

II. हृदय, यकृत व गुर्दों की बिमारी।

III. अत्याधिक रक्तहीनता।

उपचार—चिकित्सीय परामर्श आवश्यक है।

4.0 सारांश

आहार की अवधारणा

वैज्ञानिक अवधारणा

दवाइयों के अतिरिक्त वे सभी पदार्थ, जिनके सेवन से शरीर निर्मित, विकसित, परिवर्धित व परिपक्व होता है, जो स्फूर्ति, गति व ऊर्जा प्रदान करने के साथ ही संतुलित व्यक्तित्व निर्माण में भी सहायक होते हैं, उन्हें आहार कहते हैं।

गुणों एवं कर्मों के आधार पर आहार—

1. ऊर्जा एवं उष्मा उत्पादक आहार,
2. शरीर वर्धक आहार,
3. शरीर रक्षक आहार।

आहार की भारतीय अवधारणा—

भारतीय अवधारणा में आहार को तीन रूपों में बांटा गया है—

1. सात्विक,
2. राजसिक,
3. तामसिक।

आहार की आवश्यकता

शरीर की वृद्धि, विकास एवं जीवन-शक्ति को बनाए रखने के लिए आहार की आवश्यकता है।

आहार के घटक पोषक तत्त्व

1. कार्बोहाइड्रेट—मुख्यतः इसमें ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन, नाइट्रोजन, गंधक, फास्फोरस आदि तत्त्व उपस्थित होते हैं। यह ऊर्जा एवं उष्णता पैदा करता है। इसे निम्न चार भागों में बांटा जा सकता है—

(1) मोनो-सैकेराइड्स
(2) डाइ-सैकेराइड्स

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(3) ट्राइ-सैकेराइड्स
(4) पौलो-सैकेराइड्स

2. प्रोटीन—यह एक रासायनिक मिश्रण है, जिसमें लगभग 20 प्रकार के यौगिक होते हैं। इनका सभी का आधार नाइट्रोजन है, जो लगभग 16 प्रतिशत तक पाया जाता है। इन यौगिकों को एमिना-एसिड कहते हैं। इनमें से 8 एमिना एसिड आवश्यक होते हैं तथा 12 अनावश्यक। प्रोटीन हमारे मांसपेशी निर्माण के लिए आवश्यक तत्त्व है।

3. वसा—वसा का निर्माण कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन से मिलकर होता है। इसमें ऑक्सीजन की मात्रा कुछ कम रहती है। यह ऊर्जा उत्पादन में हाइड्रोजन एवं प्रोटीन की तुलना में लगभग दुगुनी ऊर्जा उत्पादित करता है।

4. खनिज लवण—हमारे शरीर का लगभग 1/4 भाग खनिज से ही निर्मित होता है। खनिज लवण हमारे अस्थियों के निर्माण के साथ-साथ शरीर की अन्य टूट-फूट की मरम्मत करने का कार्य भी करते हैं। मुख्य खनिज लवण निम्न हैं—

1. कैल्शियम	2. फास्फोरस	3. सोडियम	4. पोटेशियम
5. मैग्निशियम	6. मैंगनीज	7. जिन्क	8. सल्फर
9. कॉपर	10. कोबाल्ट	11. क्लोरीन	12. आयोडीन 13. फ्लोरीन।

5. विटामिन—यह एक ऐसा भोज्य पदार्थ है, जिसमें कोई कैलोरी ऊर्जा नहीं होती है लेकिन फिर भी हमारे शरीर के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इनके माध्यम से ही शरीर में चयापचय एवं रासायनिक प्रक्रियाओं में नियमन होता है। ये दो प्रकार के होते हैं—

1. जल में विलय—विटामिन-बी कॉम्प्लेक्स, विटामिन-सी।
2. वसा में विलय—विटामिन-ए, विटामिन-डी, विटामिन-ई, विटामिन-के।

6. रेशेदार पदार्थ—हमारे पाचन-तंत्र को क्रियाशील बनाए रखने के लिए इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ये स्वयं तो नहीं पचते हैं लेकिन अन्य तत्त्वों को पचाने में सहयोग करते हैं। कब्ज आदि की बीमारी के लिए यह अत्यन्त उपयोगी है।

7. जल—हमारे शरीर का अधिकांश भाग जल के द्वारा ही निर्मित है एवं अधिकांश क्रियाओं में जल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए जल हमारे शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

5.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आहार की अवधारणा एवं आवश्यकताओं को विस्तार से समझाइये।
2. कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा को स्पष्ट कीजिए तथा इनकी दैनिक आवश्यकता तथा स्रोत बताइये।
3. खनिज लवण की आवश्यकता पर एक निबन्ध लिखिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता एवं स्रोत बताइये।
2. लिपिड्स को स्पष्ट कीजिए।
3. कैल्शियम के कार्य, आवश्यक दैनिक मात्रा तथा स्रोत लिखिए।
5. विटामिन 'ए' की आवश्कयता क्यों है? स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. उच्च रक्तचाप की बीमारी में सोडियम ज्यादा मात्रा में देनी चाहिए। यह कथन सत्य है या असत्य?
2. आंखों के लिए कौन-सा विटामिन उपयोगी है?
3. शरीर लगभग कितने प्रतिशत जल से निर्मित है?
4. रेसेदार पदार्थ कितने कैलोरी ऊर्जा प्रदान करते हैं?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इकाई–5 आहार एवं स्वास्थ्य

पाठ–ख

संतुलित आहार की अवधारणा एवं प्रारूप आहार, चयापचय एवं स्वास्थ्य

प्रिय विद्यार्थियों,

पिछले अध्याय में आपने आहार की अवधारणा एवं उसकी आवश्यकताएँ तथा आहार के घटक पोषक तत्त्वों के विषय में अध्ययन किया। इस प्रस्तुत पाठ में आप संतुलित आहार की अवधारणा एवं प्रारूप, आहार चयापचय एवं स्वास्थ्य, उपवास एवं स्वास्थ्य विषय पर अध्ययन करेंगे। अभी तक आपने जिस धैर्य व लगन के साथ अध्ययन किया है, उसी धैर्य व लगन के साथ आप इस अंतिम पाठ का अध्ययन कर अच्छे अंक लाने का सफल प्रयास करेंगे। हमारे इस पाठ के निम्न उद्देश्य हैं–

उद्देश्य

1. संतुलित आहार क्या है, यह जान सकेंगे।
2. चयापचय प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
3. कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं वसा के चयापचय के विषय में विस्तार से जान सकेंगे।
4. उपवास एवं उसकी आवश्यकता तथा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को जान सकेंगे।

विषय–वस्तु

1.0 संतुलित आहार की अवधारणा
2.0 प्रारूप
3.0 आहार चयापचय और स्वास्थ्य
  3.1 चयापचय
    3.1.1 उपचय
    3.1.2 अपचय
  3.2 कार्बोहाइड्रेट चयापचय
    3.2.1 कार्बोहाइड्रेट का उपयोग
    3.2.2 कार्बोहाइड्रेट की कमी या अधिकता से हानियाँ
  3.3 प्रोटीन चयापचय
    3.3.1 प्रोटीन का उपयोग
    3.3.2 प्रोटीन की कमी या अधिकता से हानियां
  3.4 वसा चयापचय
    3.4.1 वसा का उपयोग
    3.4.2 वसा की कमी या अधिकता से हानियां
4.0 उपवास एवं स्वास्थ्य
  4.1 उपवास की आवश्यकता
  4.2 उपवास की अवधि
  4.3 उपवास में सावधानी
  4.4 उपवास व स्वास्थ्य के संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य
5.0 सारांश
6.0 प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.0 संतुलित आहार की अवधारणा

प्रस्तुत विषय पर प्रकाश डालने से पूर्व में उन स्थितियों पर प्रकाश डालना चाहूँगा, जिन स्थितियों के कारण वर्तमान में संतुलित आहार की बात सामने आई। जैसा कि आपको ज्ञात है कि हवाई जहाज बनने से पूर्व दूर देशों की यात्राएँ बड़ी नौकाओं तथा पानी पर चलने वाले जहाजों के द्वारा होती थी। ये यात्राएँ कुछ दिनों से लेकर कई-कई महिनों तक की होती थी। यात्रा समाप्ति के पश्चात् अधिकांश बार यात्रियों में एक ही प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी विकृतियां देखने को मिली। कारण खोजने पर पता चला कि जो भोजन जहाज पर लादा जाता था, वह एक ही प्रकार का होता था, जिससे शरीर में किन्हीं-किन्हीं पोषक तत्त्वों की सीमा से ज्यादा अधिकता हो जाती थी तथा किन्हीं-किन्हीं पोषक तत्त्वों की कमी हो जाती, जिससे स्वास्थ्य संबंधी समान विकृति सभी में दिखलाई देती थी। यहीं से संतुलित आहार की आवश्यकता एवं महत्त्व पर ध्यान दिया जाने लगा तथा इस पर शोधकार्य प्रारंभ हुए एवं अन्य विभिन्न बिन्दुओं को संतुलित आहार में जोड़ा गया।

शरीर में अपने आपको स्वस्थ रखने की समस्त शक्तियां उपस्थित हैं। कतिपय बीमारियों को छोड़ दिया जाए तो शरीर अपने आपको स्वस्थ भी रखता है। साथ ही साथ हम अपने अवयवों का दुरुपयोग रोक दें तो हमारा शरीर निरन्तर स्वस्थ भी बना रह सकता है। लेकिन इन्द्रियों को वश में न रख पाने के कारण काम-लोलुपता, स्वाद-लोलुपता आदि कारणों से हम अपने आपको बीमार बनाये रखते हैं। हमारे शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य का मूल आधार संतुलित भोजन है, जिससे शरीर के लिए आवश्यक सभी पौष्टिक तत्त्व—कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन, जल व रेशा आदि ग्रहण करते हैं लेकिन स्वाद-लोलुपता के कारण इनकी मात्रा असंतुलित हो जाती है, इस कारण हम बीमार हो जाते हैं।

जैन आचार्यों का मानना है कि बीमार होने का बहुत बड़ा कारण अहितकर व अपरिमित भोजन है। कहा गया है कि—

''हियाहारा मियाहारा अप्पाहारा य जे नारा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा।।''

अर्थात् जो हित, मित और अल्प-मात्रा में भोजन करते हैं, उनकी चिकित्सा वैद्य नहीं करते बल्कि वे स्वयं अपने चिकित्सक होते हैं। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, **संतुलित आहार उसे कहा जा सकता है, जिसमें सभी पोषक तत्त्व—कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन, रेशा एवं जल पर्याप्त मात्रा में मिले हुए हों। साथ ही साथ जिससे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास भी हो। इसके अतिरिक्त भोजन सामाजिक दृष्टि से उपयोगी एवं आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हो।**

आहार से प्राप्त मुख्य पोषक तत्त्व कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण एवं जल हैं। ये सभी पोषक तत्त्व विभिन्न पाचन क्रियाओं के द्वारा सूक्ष्मतम (अंतिम अंश) में विभक्त हो जाते हैं तथा आंतों की झिल्लियों द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं। वहां से ये आंतों की कोशिकाओं तथा लसिका वाहिनियों में पहुंचते थे, फिर रक्त द्वारा सीधे या यकृत के माध्यम से आवश्यकतानुसार शरीर की सभी कोशिकाओं में पहुंचकर विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के बाद उन्हें पोषण प्रदान करते हैं। ये पोषक तत्त्व हमारे शरीर में निम्न मात्रा एवं अनुपात में पाये जाते हैं—

(एक 55 कि.ग्रा. स्वस्थ व्यक्ति के अनुसार)

क्र.सं.	पोषक तत्त्व	मात्रा (किलोग्राम)	अनुपात (प्रतिशत)
01.	कार्बोहाइड्रेट	00.55	01%
02.	प्रोटीन	08.80	16%
03.	वसा	06.60	12%
04.	खनिज लवण	03.30	03%
05.	जल	35.75	65%
	कुल पोषक तत्त्व	**15 कि.ग्रा.**	**100%**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रारूप

संतुलित आहार में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उपरोक्त तालिका एवं श्रम के अनुसार व्यक्ति को समस्त पोषक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में मिलते रहें, जिससे स्वस्थ शरीर के साथ-साथ स्वस्थ मन और बुद्धि का विकास हो सके। इसके लिए निम्न बिन्दु ध्यातव्य हैं—

01. आहार में सभी पोषक तत्त्व उचित मात्रा में उपलब्ध हों।

02. आहार परिमाण में उचित मात्रा में उपलब्ध हो। (विटामिन, खनिज लवण आदि की गोलियां भी मिलती हैं लेकिन वे भूख को शान्त नहीं कर सकती हैं।)

03. तापमान की उचित कैलोरी जिससे प्राप्त हो सके।

04. स्वादिष्ट, सुगंधित, दिखने में सुन्दर एवं रुचिकर हो। (भोजन में ये सभी गुण होने से हमारे शरीर के पाचन अंगों से पर्याप्त मात्रा में पाचक रसायन निकलने लगते हैं, जो भोजन को पचाने के लिए आवश्यक होते हैं।)

05. उचित खाद्य पदार्थ का बना हुआ हो।

06. सामाजिक रीति-रिवाज और धार्मिक मान्यताओं के अनुकूल हो।

07. सुगमता से उपलब्ध होने वाला अर्थात् स्थानीय उपज का हो।

08. डिब्बा बंद खाद्य पदार्थ की अपेक्षा ताजे खाद्य पदार्थ का बना हो।

09. भोजन ताजा पका हुआ होना चाहिए।

10. रोगाणु मुक्त खाद्य पदार्थ का बना हुआ हो।

विशेष ध्यान योग तथ्य

1. मैदे से बनी चीजों का प्रयोग कम कीजिए।
2. कृत्रिम रूप से बने व्यंजन के स्थान पर प्राकृतिक चीजों का प्रयोग ज्यादा करें।
3. चाय/काफी का सेवन दिन में दो या तीन बार से ज्यादा न करें।
4. तली हुई वस्तुओं का सेवन कम से कम करें।
5. कृत्रिम रंगों से रंगी मिठाई आदि का सेवन न करें।
6. रोटी, चौकर युक्त आटे से ही बनाएँ।
7. सफेद चीनी के स्थान पर शक्कर, गुड़, शहद आदि का प्रयोग करें।
8. भोजन पकाने के लिए प्रेशर कुकर का प्रयोग करें तथा ठंडा होने के पश्चात् ही खोलें (गैस निकालकर न खोलें)।
9. लाल मिर्च एवं गर्म मसालों का प्रयोग कम से कम करें।
10. आयोडीन युक्त नमक का ही प्रयोग करें।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—मुख्य पोषक तत्त्व शरीर में किस अनुपात में होने चाहिए?

प्रश्न—संतुलित आहार के मुख्य बिन्दु लिखिए।

2.0 आहार चयापचय और स्वास्थ्य

2.1 चयापचय (Metabolism)

चयापचय वास्तविकता में दो प्रक्रियाएँ हैं, जो मिलकर चयापचय कहलाती हैं। ये निम्न हैं—

1. उपचय (Anabolism), 2. अपचय (Catabolism)।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.1.1 उपचय (Anabolism)– कोशिका वस्तु के बनने या निर्माण विधि को उपचय कहते हैं। इस उपचय प्रक्रिया में प्रोटीन के अंतिम अंश एमीनो अम्ल (Amino Acid) आपस में अपने विभिन्न परमाणुओं से संयोग करके नये तत्त्व बन जाते हैं, जो कोशिकाओं के अनुरूप होते हैं। ये नई कोशिकाओं के निर्माण, उनकी क्षतिपूर्ति, उनकी वृद्धि आदि द्वारा शरीर का विकास करते हैं। इसी प्रकार कार्बोहाइड्रेट तथा वसा, ग्लाइकोजन व ट्राईग्लिसराइड (Glycogen and Triglyceride) में परिवर्तित होकर यकृत, मांसपेशी व वसीय ऊतकों में संग्रहीत होकर आवश्यकतानुसार पोषण एवं ऊर्जा प्रदान करते हैं।

2.1.2 अपचय (Catabolism)– कोशिकाओं के टूटने की क्रिया को अपचय कहते हैं। इस अपचय प्रक्रिया में पोषक तत्त्व जब कोशिकाओं में पहुंचते हैं, तब इनका रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा विश्लेषण होता है, जिसमें ये ऑक्सीजन के साथ मिलकर ऑक्सीकरण की क्रिया करते हैं। परिणामस्वरूप ऊर्जा बनती है तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड, नाइट्रोजन व जल मुक्त होते हैं। इस प्रकार पोषक तत्त्वों में छिपी स्थितिज ऊर्जा (Potential Energy) गतिज ऊर्जा (Mechanical or Kinetic Energy) में परिवर्तित हो जाती है, जिससे हमारा शरीर कार्य करता है।

उक्त कार्य करने की अवधि में तथा कोई कार्य न करने की भी अवधि में हमारे शरीर में निरन्तर टूट-फूट होती रहती है। कई कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त होती हैं तथा कई कोशिकाएँ मर जाती हैं। नई कोशिकाएँ भी बनती रहती हैं कोशिकाओं की टूट-फूट तथा पोषक तत्त्वों का आक्सीकरण से विभक्त होना ही अपचय प्रक्रिया है।

उपचय और अपचय दोनों प्रक्रियाएँ मिलकर चयापचय कहलाती हैं।

2.2 कार्बोहाइड्रेट चयापचय (Carbohydrate Metabolism)

पाचन क्रिया में कार्बोहाइड्रेट अंतिम अंश मोनो सेकराइड में परिवर्तित हो जाते हैं तथा आंतों के द्वारा अवशोषित कर लिये जाते हैं। रक्त में जब इनकी मात्रा अधिक हो जाती है तब इन्हें ग्लाइकोजन के रूप में परिवर्तित कर यकृत व मांसपेशियों में एकत्र कर दिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इस ग्लाइकोजन को पुनः ग्लुकोज में परिवर्तित कर रक्त में पहुंचा दिया जाता है। इस प्रकार रक्त में ग्लुकोज का स्तर सामान्य बना रहता है।

आप पूर्व में पढ़ चुके हैं कि कोशिका में माइटोकोन्ड्रिया होते हैं, जो एक तरह से पावर हाऊस का कार्य करते हैं। इन्हीं माइटोकोन्ड्रिया में एन्जाइम ग्लुकोज को पाइरुविक अम्ल (Pyruvic Acid) में परिवर्तित कर देते हैं, जिसके ऑक्सीकरण के परिणामस्वरूप ए.टी.पी. (Adenosine Triphosphate) बनता है, जो ऊर्जा व उष्णता उत्पन्न करने में सहायता करता है। इस ऑक्सीकरण में विटामिन 'बी' और थाइमिन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

अत्यधिक शारीरिक व मानसिक श्रम के समय अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। इस समय एपीनेफ्रीन तथा थाइरोक्सीन नामक हार्मोन्स उत्प्रेरक का कार्य करते हैं, जिससे पहले ग्लाइकोजन तथा बाद में लिपिड्स इस अतिरिक्त मांग को पूरा करते हैं।

(इकाई-2(क) में कोशिका के अन्तर्गत माइटोकाड्रिया तथा इकाई-4(क) में मधुमेह का अध्ययन अधिक जानकारी के लिए पुनः पढ़िये।)

2.2.1 कार्बोहाइड्रेट का उपयोग

1. कार्बोहाइड्रेट ऊर्जा उत्पन्न कर शरीर की समस्त क्रियाओं के लिए शक्ति प्रदान करते हैं।
2. अनावश्यक एमीनो एसिड के निर्माण में सहायक होते हैं।
3. ऊर्जा उत्पत्ति के लिए प्रोटीन पर पड़ने वाले बोझ को कम करते हैं।
4. वसा के चयापचय में सहायता प्रदान करते हैं।
5. दूध में लेक्टोज, ग्लुकोज व गेलेक्टोज में परिवर्तित होकर शिशु को ऊर्जा प्रदान करते हैं।
6. वसा के साथ मिलकर क्षुधा संतुष्टि प्रदान करते हैं।
7. बड़ी आंतों में विटामिन 'बी' समूह के कुछ विटामिन तथा विटामिन 'के' के निर्माण में सहायता करते हैं।
8. सेलुलोज की वजह से पेरीस्टाल्सिस (Peristalsis) पैदा कर कब्ज को दूर करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2.2.2 कार्बोहाइड्रेट की कमी या अधिकता से हानियाँ

1. चाकलेट का अधिक सेवन तथा दांतों का साफ न करने से मुंह के कीटाणु अम्ल पैदा कर देते हैं, जो दांतों के इनेमल (Enamal) को नष्ट कर देता है, जिससे दांत खराब होने लगते हैं।
2. मोटापा बढ़ाने में सहायक होता है।
3. वसा कणों में परिवर्तित होकर चर्बी पैदा करता है।
4. अत्यधिक उपयोग मधुमेह की बीमारी को जन्म देती है।
5. ट्राइग्लिसराइड्स (Triglycerides) उत्पन्न करने में सहयोग करती है, जिसके कारण हृदय-रोग जन्म लेता है।

2.3 प्रोटीन चयापचय

हमारे शरीर में नाखून, त्वचा, बाल, मांसपेशी, हड्डी, रक्त सभी में अलग-अलग प्रकार के प्रोटीन होते हैं इसलिए पाचन क्रिया में प्रोटीन का अंतिम अंश एमीनो एसिड जब कोशिकाओं में पहुंचता है, तब वहां पर अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार रासायनिक क्रिया कर नये ढ़ंग से प्रोटीन का निर्माण कर लिया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में केन्द्रक के D.N.A. की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह कोशिकाओं के अनुरूप एमीनो एसिड को छांटने तथा उनका संयोजन करता है। इस प्रक्रिया में अतिरिक्त एमीनोएसिड वापिस यकृत में पहुंचता है, जहाँ उनका एमीनो-समूह-NH_2 उनसे अलग हो जाता है। एमीनो समूह से निकला नाइट्रोजन अनावश्यक एमीनो एसिड को आवश्यक एमीनो एसिड में बदलता है तथा शेष बचा नाइट्रोजन यूरिया बनकर मूत्र के साथ निष्कासित हो जाता है। एमीनो समूह से NH_2 निकलने के बाद शेष बचा भाग ग्लुकोजनिक व कीटोजनिक (Glucogenic and Ketogenic) एमीनो एसिड में परिवर्तित हो जाता है, जो या तो कार्बोहाइड्रेट की तरह ग्लुकोज या ग्लाइकोजन में परिवर्तित होकर ऊर्जा उत्पन्न करता है या फिर वसा के कणों में परिवर्तित होकर संग्रहीत हो जाता है, जिसका आवश्यकता पड़ने पर ऊर्जा के लिए उपयोग होता है। कोशिकाओं के टूटने-फूटने से भी एमीनो एसिड मुक्त होते हैं, जो आहार से प्राप्त एमीनो एसिड से मिलकर नये रूप में बन जाते हैं तथा शेष उसी प्रकार एमीनो विहीन होकर यकृत में ऊर्जा उत्पत्ति के काम आते हैं। इनसे निकला नाइट्रोजन आवश्यक एमीनो एसिड बनवाने के काम आता है तथा शेष बचा क्रियेटिन (Creatin) के रूप में मूत्र द्वारा निष्कासित कर दिया जाता है।

2.3.1 प्रोटीन का उपयोग

1. ये ग्रंथियों के स्राव व हार्मोन्स की बनावट में भाग लेते हैं।
2. एंटीबाडीज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
3. अन्तरा कोशिका द्रव को रक्त धमनियों में सोखने का कार्य प्रोटीन कण एल्ब्यूमिन करता है।
4. सभी एन्जाइम का मौलिक अंश बन उनका निर्माण करना।
5. कोशिकाओं का निर्माण, वर्धन, गठन, क्षतिपूर्ति कर अंग व शरीर का वर्धन, गठन व विकास करना इसका मुख्य कार्य है। इसलिए वृद्धिकाल में बच्चों के लिए प्रोटीन अति आवश्यक है।

2.3.2 प्रोटीन की कमी या अधिकता से हानियां

1. उम्र के अनुसार शरीर के वर्धन, गठन व विकास में कमी।
2. निस्तेजता।
3. त्वचा पर चकत्ते पड़ जाते हैं।
4. त्वचा पर झुर्रियां पड़ने लगती हैं तथा सूखापन अर्थात् त्वचा की चमक समाप्त हो जाती है।
5. मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं।
6. मानसिक विकास में कमी आ जाती है।
7. बालों में सूखापन आ जाता है तथा बाल टूटने लगते हैं।
8. नाखून में भी सूखापन आ जाता है तथा उन पर सफेद दांत बन जाते हैं।
9. एन्जाइम की कमी के कारण पेट फूलना एवं यकृत का बढ़ना जैसी बीमारी हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. हार्मोन्स की कमी हो कसती है।
11. एण्डीबाडी की कमी के कारण रोगों से बचाव कठिन हो जाता है।
12. चिड़चिड़ापन, क्रोध, भावुकता आदि मनोवैज्ञानिक रोग पैदा हो जाते हैं।
13. जल जमाव शोक (Nutritional Oedema) हो जाता है।
14. बच्चों में सूखे की बीमारी (Kwashiorkor) हो जाती है।

2.4 वसा चयापचय

वसा पाचन क्रिया द्वारा ग्लिसरॉल व फैटी एसिड में विभक्त हो जाता है तथा आंतों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। यहां पर लगभग 70 प्रतिशत नये रूप से क्रिया करके ट्राई ग्लिसराइड्स में परिवर्तित हो जाते हैं तथा लसिका नलिकाओं में प्रवेश कर जाते हैं। शेष यकृत में मोना या डाई ग्लिसराइड्स के रूप में पहुंचते हैं तथा वहां पर ट्राई ग्लिसराइड्स में परिवर्तत हो जाते हैं। ग्लिसराइड्स के ये कण लसिका में श्वेत झलक देते हैं। इन कणों को काइलोमाइक्रोन्स (Chylomicrons) कहा जाता है। एल्व्युयिन कणों के साथ चिपक कर ये रक्त में प्रवाहित होते रहते हैं। आगे चलकर अन्तरा कोशिका द्रव में मिल जाते हैं, जहाँ कोशिका के माइटोकोन्ड्रिया एन्जाइम्स इन्हें पुनः फैटीएसिड तथा ग्लिसरॉल में विभक्त कर देते हैं। ग्लिसरॉल का ऑक्सीकरण होने से यहां ऊर्जा उत्पन्न होती है तथा कार्बन-डाइ-ऑक्साइड एवं जल मुक्त होते हैं।

कुछ ट्राईग्सिराइड्स वसामय ऊतकों (Adipose Tissue) की कोशिकाओं में संग्रह कर लिए जाते हैं, जहाँ पुनः दोनों रूपों में विभक्त होकर ऊर्जा प्रदान करते रहते हैं।

अत्यधिक चीनी भी ट्राइग्लिसराइड्स में परिवर्तित हो जाती है।

2.4.1 वसा का उपयोग

1. विटामिन 'ए', 'डी', 'ई' व 'के' वसा में विलेय हैं अतः ऊतकों तक पहुंचाने का कार्य वसा के द्वारा होता है।
2. विटामिन 'डी' के पूर्वगामी बनकर त्वचा में निर्माण करवाना।
3. सर्दी के दिनों में तापमान संतुलित बनाये रखने में सहायक होती है।
4. आंतरिक अवयवों के चारों ओर जमा होकर उन्हें संरक्षण व स्थिरता प्रदान करने का कार्य वसा के द्वारा होता है।
5. शारीरिक वृद्धि तथा त्वक शोध का निराकरण होता है।
6. आकस्मिक आघात से शरीर की रक्षा वसा द्वारा होती है।
7. भोजन को स्वादिष्ट बनाते हैं।
8. कोशिका झिल्ली को अर्धपारगम्य बनाते हैं।
9. मस्तिष्क व तंत्रिकाओं के निर्माण में फास्फोलिपिड्स के रूप में भाग लेते हैं। तंत्रिकाओं के आवरण को दृढ़ता प्रदान करते हैं।
10. अधिक समय तक, अधिक मात्रा में, स्थाई रूप से ऊर्जा उत्पादित करते हैं।

(हृदय की मांसपेशियों को मुख्यतः यही तत्त्व ऊर्जा प्रदान करते हैं।)

2.4.2 वसा की कमी या अधिकता से हानियां

1. अधिक मात्रा में उपयोग व कम श्रम की स्थिति में मोटापा बढ़ता है।
2. कोलेस्ट्रोल की अधिकता से हार्ट अटैक हो सकता है।
3. इसकी अधिकता पक्षाघात पैदा कर सकती है।
4. मधुमेह की बीमारी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बोध-प्रश्न

प्रश्न—चयापचय क्या है?

प्रश्न—प्रोटीन का चयापचय किस प्रकार होता है?

प्रश्न—वसा की उपयोगिता लिखिए।

3.0 उपवास एवं स्वास्थ्य

भोजन के सन्दर्भ में कहा गया है कि हमें जितनी भूख लगती है, उसे चार बराबर भागों में बांट देना चाहिए। इसमें से दो भाग भोजन के द्वारा तथा एक भाग जल के द्वारा पूर्ण करना चाहिए। शेष बचा एक भाग वायु के लिए छोड़ देना चाहिए लेकिन हम स्वाद लोलुपता के कारण एक के बाद एक व्यंजन खाते चले जाते हैं, जब तक खाना अन्दर जाता जाये। फिर कहते हैं कि पेट फट रहा है। यह कहानी अधिकांश व्यक्तियों की है। इससे भी अधिक रोचक स्थिति तब देखने को मिलती है, जब ऐसा व्यक्ति किसी विवाह, जन्म-दिन आदि पार्टी में खाना खा रहा हो, तब वह प्रत्येक स्टाल पर यह कोशिश करता है कि पूरा पेट इसी व्यंजन से भर लिया जाए। पेट पूरा भर जाता है, फिर देखता है कि कुछ स्टालों पर तो वह गया ही नहीं, आइसक्रीम तो अभी खाई ही नहीं, अमुक व्यंजन भी अभी नहीं खाया। विचार करता है तथा निर्णय यह लेता है कि थोड़ी देर घूमता हूँ, फिर खाऊँगा। ऐसा लगता है कि कई जन्मों का भूखा है। वह व्यक्ति थोड़ी देर घूमता है, फिर खाता है। यह क्रम लम्बे समय तक चलता है। लेकिन आधा-एक घंटा पश्चात् वही व्यक्ति पेट पर हाथ फेरता हुआ लोगों से हाजमोला या पाचक चूर्ण मांगता दिखता है। यह दृश्य आम है।

उपवास से तात्पर्य 'नहीं खाने' से है। यह 'नहीं खाना' विभिन्न रूप में हो सकता है, जैसे—

1. पूर्ण रूप से निश्चित समय के लिए आहार एवं जल का सेवन न करना।
2. आहार का त्याग करना तथा जल का सेवन करना।
3. निश्चित समय में केवल एक बार आहार का सेवन करना।
4. कुछ विशेष प्रकार की वस्तु (जैसे—फल) को छोड़कर शेष का त्याग करना।
5. निश्चित समय में निश्चित पदार्थों (एक या एक से अधिक) का सेवन करना, शेष का त्याग करना आदि।

उपरोक्त के अतिरिक्त भी उपवास के विभिन्न रूप होते हैं। लेकिन मुख्य बिन्दु है—नहीं खाना। भोजन जितना शरीर के लिए आवश्यक है, उतना ही भोजन का सेवन न करना भी शरीर के लिए आवश्यक है। उपवास अच्छे स्वास्थ्य का एक सरल, सस्ता व सुगम साधन होने के साथ आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी आवश्यक है। उपवास के माध्यम से 'त्रिगुप्ति' (कायगुप्ति, मनोगुप्ति व वचनगुप्ति) को साधा जा सकता है। 'त्रिगुप्ति' ध्यान की प्रथम आवश्यकता है। हमारे ऋषि-मुनि आदि साधु-साध्वियों ने कई-कई दिनों व महीनों तक भोजन को त्याग कर अपनी साधना के शिखर तक पहुंचे।

3.1 उपवास की आवश्यकता

प्रश्न है कि हम बीमार क्यों होते हैं? इस प्रश्न के उत्तर अनेक हैं, जैसे—अत्यधिक श्रम, अत्यधिक काम, अत्यधिक भय, अत्यधिक चिंता, अत्यधिक तनाव, अनिद्रा, अयोग्य भोजन आदि। और भी कई कारण हो सकते हैं, जैसे—अल्प श्रम, पर्याप्त नींद न लेना, अल्प भोजन आदि। कारण कोई भी हो लेकिन इन सबका परिणाम एक ही है कि इनके कारण शरीर से हानिकारक तत्त्व बाहर नहीं निकल पाते हैं, जिससे वे रक्त एवं ऊतकों में जमा हो जाते हैं, इससे विभिन्न रोग पैदा होते हैं।

उपरोक्त जितने भी कारण हैं, उनमें अयोग्य भोजन सबसे प्रमुख है। अयोग्य भोजन से तात्पर्य है—अत्यधिक भोजन, जंक फूड, अपौष्टिक भोजन, असंतुलित कैलोरी युक्त भोजन, बासी भोजन, सड़ा भोजन, बीमारी युक्त भोजन, असमय भोजन आदि।

वर्तमान भागम-भाग जीवनशैली में हम अयोग्य भोजन से नहीं बच पाते हैं। परिणामतः हमारा शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य खराब हो जाता है। अगर हम इनसे बच सकते हैं तो सर्वश्रेष्ठ है, अन्यथा उपवास एक सरल एवं सात्विक साधन है। उपवास हमारी आवश्यकता है, क्योंकि—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. उपवास से शरीर में जमा विष द्रव्य बाहर निकल जाते हैं।
2. भोजन मन की क्रियाओं पर प्रभाव डालता है। उपवास से मन शान्त एवं चित्त प्रसन्न रहता है।
3. उपवास काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या को समाप्त करता है।
4. विभिन्न बीमारियों को समाप्त करने तथा नियंत्रित करने से सहयोग करता है।
5. हमारी आध्यात्मिक साधना में सहयोगी होता है।
6. पाचन-तंत्र को विश्राम मिलता है, जिससे उसकी कार्यक्षमता बढ़ती है।
7. विसर्जन की भावना जन्म लेती है।
8. अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता है।
9. मानसिक स्थिति सुदृढ़ होती है।

3.2 उपवास की अवधि

उपवास दस-बारह घंटे से लेकर दो माह या उससे अधिक तक का किया जा सकता है। जैन धर्म में आध्यात्मिक दृष्टि से एक माह एवं दो माह के उपवास तथा वर्ष भर में एक दिन खाना तथा एक दिन नहीं खाना (एकान्तर) आदि उपवास बहुतायत में किये जाते हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से एक-दो दिन के उपवास काफी लाभदायक होते हैं। वैसे उपवास रोगी की स्थिति अनुसार होने चाहिए। इसके लिए रोगी की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति दोनों की जांच आवश्यक होती है।

आध्यात्मिक दृष्टि से लम्बे उपवास का महत्त्व बहुत अधिक है लेकिन ये भी विभिन्न स्थितियों को देखकर या गुरु की आज्ञानुसार करने चाहिए।

3.3 उपवास में सावधानी

उपवास रोग एवं रोगी की शारीरिक व मानसिक स्थिति के अनुसार होने चाहिए। जिस रोगी की जीवन-शक्ति बहुत घट चुकी हो, ऐसे रोगी को उपवास नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त निम्न सावधानी भी आवश्यक है—

1. गंभीर हृदय रोगी को उपवास नहीं करना चाहिए।
2. गुर्दे की पेचीदी बीमारी में भी उपवास नहीं करना चाहिए।
3. तपेदिक के रोगी के लिए भी उपवास वर्जित है।
4. मधुमेह (डायबिटीज इंसीपिंडस) अर्थात् रक्त में शर्करा की मात्रा कम होने वाले रोगी के लिए उपवास वर्जित है।
5. मधुमेह (डायबिटीज मेलाइटस) अर्थात् रक्त में शर्करा की मात्रा ज्याना होने वाले रोगी के लिए भी लम्बे काल का पूर्ण उपवास ठीक नहीं है।
6. गर्भवती महिला के लिए भी लम्बे समय तक भूखा रहना उचित नहीं है।
7. स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवास काल में जल सेवन नहीं छोड़ना चाहिए। (उबले हुए जल का सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।)

3.4 उपवास व स्वास्थ्य के संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य

1. उपवास की अवधि में शरीर का वजन लगभग 400 से 500 ग्राम प्रतिदिन कम होता है। अत: मोटापा को कम करने के लिए उपयुक्त साधन है।
2. उपवास काल में चर्बी 97 प्रतिशत, जिगर 62 प्रतिशत, प्लीहा 57 प्रतिशत, मांसपेशी 31 प्रतिशत कम होते हैं लेकिन मस्तिष्क या तन्तु में कोई कमी नहीं आती है इसलिए उपवास काल में चिंतन-शक्ति, विचार-शक्ति, कल्पना-शक्ति, स्मरण-शक्ति आदि का नियमित उपयोग किया जा सकता है तथा उपवास इनके विकास के लिए भी उपयोगी है।
3. उपवास के समय शरीर के विषैले तत्त्व या तो बाहर निष्कासित हो जाते हैं या भीतर ही नष्ट हो जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. उपवास से बुखार, टाइफाइड, चेचक, बवासीर, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, दमा आदि रोगों का निदान किया जा सकता है।
5. उपवासकाल में पाचन तंत्र को विश्राम मिल जाता है, जिससे उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है।
6. उपवास के द्वारा लम्बी आयु प्राप्त की जा सकती है। चूहों पर किये गये वैज्ञानिक शोधों से यह बात निष्कर्ष के रूप में सामने आती है।
7. उपवास से शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, क्योंकि इस अवधि में श्वेत रक्त कणों (मुख्यत: फेगोसाइट्स व लिम्फोसाइट्स) की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।
8. उपवास से शरीर में स्फूर्ति व ताजगी आती है।
9. उपवास शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ भावनात्मक स्वास्थ्य को बनाये रखने में भी उपयोगी सिद्ध होता है।
10. उपवास काल में कल्पना शक्ति बढ़ जाती है अत: इस अवधि में नये-नये डिजायन तैयार किये जा सकते हैं। लेखन आदि का कार्य किया जा सकता है।
11. इस अवधि में स्मरण शक्ति बढ़ जाती है अत: अध्ययन के लिए यह बहुत ही उपयोगी समय है।
12. उपवास के समय विश्राम काल में नींद अच्छी आती है, जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।
13. शरीर एवं शरीर क्रिया-विज्ञान की दृष्टि से उपवास एक प्रकार से 'शॉक ट्रीटमेंट' जैसा प्रयोग है, जिससे नाड़ी मंडलीय क्रिया-कलाप बढ़ जाता है।
14. उपवास के तीसरे दिन ही त्वचा में परिवर्तन दिखाई देने लगता है। यह हमारी रोग- प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि को दर्शाता है।
15. उपवास के तुरन्त बाद गरिष्ठ भोजन या भरपेट भोजन आदि नहीं करना चाहिए। उपवास के पश्चात् प्रथम खुराक तरल पदार्थ के रूप में (जूस आदि) होना चाहिए तथा दूसरी खुराक दलिया, खिचड़ी आदि सुपाच्य पदार्थ की होनी चाहिए।

नोट—रोगकाल में उपवास चिकित्सक की देखरेख में ही करना चाहिए क्योंकि यह रोग एवं शरीर की स्थिति पर निर्भर है।

बोध-प्रश्न

प्रश्न—उपवास का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

प्रश्न—उपवास की आवश्यकता क्यों है?

4.0 सारांश

संतुलित आहार की अवधारणा एवं प्रारूप

संतुलित आहार से तात्पर्य ऐसे भोजन से है, जिसमें शरीर के सभी आवश्यक पौष्टिक तत्त्व उपस्थित हों, जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य का विकास कर सके तथा समाज के अनुकूल हो।

आहार चयापचय और स्वास्थ्य

चयापचय- उपचय और अपचय दो क्रियाएँ मिलकर चयापचय कहलाती हैं।

उपचय—कोशिका वस्तु के बनने या निर्माण विधि को उपचय कहते हैं।

अपचय—कोशिकाओं के टूटने की क्रियाओं को अपचय कहते हैं।

कार्बोहाइड्रेट चयापचय - कार्बोहाइड्रेट चयापचय में कार्बोहाइड्रेट अपने अंतिम रूप ग्लुकोज में परिवर्तित हो जाता है। माइट्रोकोन्ड्रिया में एन्जाइम ग्लुकोज को पाइरुविक अम्ल में परिवर्तित कर देते हैं, जिसके ऑक्सीकरण के फलस्वरूप ए.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

टी.पी. बनती है, जो ऊर्जा व उष्णता उत्पन्न करने में सहायता करता है।

प्रोटीन चयापचय– प्रोटीन अपने अंतिम अंश एमीना एसिड में परिवर्तित हो जाता है तथा कोशिकाओं में इसको आवश्यकता अनुसार रासायनिक क्रिया करके विभिन्न प्रोटीनों का निर्माण कर लिया जाता है। एमिनो एसिड से टूटकर निकला नाइट्रोजन एवं यूरिया मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। प्रोटीन शरीर की मांसपेशियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

वसा चयापचय – वसा अपने अंतिम रूप वसीय-अम्ल में परिवर्तित होता है। वसा विटामिन-ए, डी, ई व क के विलय के लिए आवश्यक है। इसकी अधिकता से हृदय में कोलेस्ट्रोल जम जाता है, जो का मुख्य कारण है।

उपवास एवं स्वास्थ्य – उपवास से तात्पर्य भोजन का विभिन्न रूपों में त्याग से है। यह किसी भी प्रकार से हो सकता है। उपवास काल में वजन लगभग 400-500 ग्राम प्रतिदिन कम होता है। मस्तिष्क तथा तन्तु में कोई परिवर्तन नहीं आता है। अत: विभिन्न प्रयोगों के लिए उपवास-काल महत्त्वपूर्ण है।

उपवास की आवश्यकता – विभिन्न रोगों को दूर करने के लिए भागमभाग जीवनशैली में कुछ परिवर्तन लाने के लिए शारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक स्वास्थ्य के विकास के लिए उपवास एक श्रेष्ठ साधन है।

उपवास की अवधि – विभिन्न दृष्टियों से उपवास की अवधि अलग-अलग होती है। यह कुछ मिनट से लेकर कई दिन, महिनों एवं सालों तक हो सकती है।

उपवास में सावधानी – गम्भीर रोगों में एवं विशेष परिस्थितियों में उपवास नहीं करना चाहिए।

5.0 प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संतुलित आहार पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
2. उपवास पर एक निबन्ध लिखिए।

लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. संतुलित आहार का प्रारूप लिखिए।
2. प्रोटीन चयापचय को समझाएँ।
3. उपवास की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
4. उपवास में किन-किन बातों की सावधानी रखनी चाहिए?
5. उपवास एवं स्वास्थ्य के संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्यों को लिखें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शरीर में कार्बोहाइड्रेट कितने प्रतिशत होता है?
2. कोशिका वस्तु की निर्माण-विधि को क्या कहते हैं?
3. ग्लाइकोजन किस अंग में एकत्रित किया जाता है?
4. विटामिन-डी किसमें विलेय है?
5. उपवास-काल में प्रतिदिन शरीर का वजन कितने किलोग्राम कम होता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सन्दर्भ ग्रंथ

1. Kathleen A. Mulligan–Atlas of Human Anatomy, Springhouse, Pennsylvania.
2.Vander Sherman Luciano–Human Physiology, McGraw-Hill Publishing Company, New York, Vth edn.
3. Trevor Weston–Know Your Body, Ulysses Press, Berkeley.
4. Atlas of Anatomy, Eagle Editions, China.
5. डॉ. प्रमिला वर्मा, डॉ. कान्ति पाण्डेय—शरीर-क्रिया-विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
6. आचार्य महाप्रज्ञ—अहिंसा प्रशिक्षण, जैन विश्वभारती, लाडनूँ
7. डॉ. जे.पी.एन. मिश्रा—जीवन विज्ञान, प्रेक्षाध्यान एवं योग (एम.ए./एम.एस.सी. उत्तरार्द्ध पाठ्यक्रम), जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ
8. डेविड वर्नर—जहां डॉक्टर न हो, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली
9. राजीव गर्ग—डायबिटीज (मधुमेह : कारण, रोकथाम और चिकित्सा), मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली
10. पत्रिका इयर बुक-2007, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर
11. आचार्य महाप्रज्ञ—अमृत पिटक, तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्वभारती, लाडनूँ
12. डॉ. अत्तरसिंह—एक्युप्रेशर (प्राकृतिक उपचार), एक्युप्रेशर हेल्थ सेण्टर, चंडीगढ़
13. डॉ. रवि अम्बष्ट, डॉ. देवेन्द्र बालायण—आहार, स्वास्थ्य एवं योग शिक्षा (खण्ड 1-3), खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली.
14. डॉ. सत्यदेव आर्य—आहार एवं पोषाहार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
15. डॉ. देवन्द्र बालायण—स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली
16. डॉ. के. भास्कर—स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-7
17. डॉ. एन.पी. शर्मा—शरीर रचना तथा शरीर क्रिया विज्ञान, खेल साहित्य केन्द्र, नई दिल्ली
18. मुनि महेन्द्रकुमार, जेठालाल झवेरी—प्रेक्षाध्यान स्वास्थ्य-विज्ञान, जैन विश्वभारती, लाडनूँ
19. डॉ. नागेन्द्र कुमार नीरज, डॉ. मंजू चौहान—रोगों की सही चिकित्सा, निरोगी दुनिया प्रकाशन, जयपुर-3

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अभ्यासात्मक कार्य

1. पाचन–तंत्र के विभिन्न अवयवों से निकलने वाले पाचक रसों की एक तालिका निम्नानुसार बनायें—

क्र.सं.	ग्रंथि का नाम	पाचक रस का नाम	पाचक रस का कार्य
01.			
02.			
03.			
04.			
05.			

2. विटामिन से संबंधित एक तालिका निम्नानुसार बनावें—

क्र.सं.	विटामिन का नाम	स्रोत	कार्य
01.			
02.			
03.			
04.			
05.			

3. खनिज लवण के विषय पर एक तालिका निम्न प्रकार बनायें—

क्र.सं.	खनिज लवण का नाम	स्रोत	कार्य
01.			
02.			
03.			
04.			
05.			

4. व्याधि का वर्णन तालिका के रूप में करें। तालिका का प्रारूप निम्न प्रकार होना चाहिए—

क्र.सं.	रोग के प्रकार	रोगों का नाम	लक्षण
01.			
02.			
03.			
04.			
05.			

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

लाडनूं-३४१३०६ (राज.)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

बी.ए. द्वितीय वर्ष

विषय - जीवन विज्ञान

द्वितीय-पत्र—जीवन विज्ञान एवं स्वास्थ्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कापीराइट
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

लेखकः
डॉ. संजीव कुमार गुप्ता

Edition : 2013

Printed Copies : 500

प्रकाशकः
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	**स्वास्थ्य शिक्षा और जीवन–विज्ञान**	**1–30**
पाठ–क	स्वास्थ्य की अवधारणा एवं परिभाषाएँ, निर्धारक तत्त्व, पर्यावरण और स्वास्थ्य के अन्तर्सम्बन्ध	1–16
पाठ–ख	स्वास्थ्य शिक्षा : सिद्धान्त एवं प्रविधि, जीवन विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य संवर्धन (प्रेक्षा चिकित्सा)	17–30
इकाई–2	**शरीर का रचनात्मक संगठन**	**31–68**
पाठ–क	शरीर संगठन का प्रारूप, कोशिका, ऊतक एवं तंत्रों का संगठनात्मक परिचय	31–47
पाठ–ख	जीवन का रासायनिक स्वरूप वर्धन, वार्धक्य, आधि, व्याधि एवं उपाधि	48–68
इकाई–3	**शारीरिक तंत्रों का रचनात्मक–कार्यात्मक परिचय, संबंधित रोग एवं रोगों का प्रबन्धन–I**	**69–94**
पाठ–क	अस्थि तंत्र—परिचय अस्थि–तंत्र के विकार—गठिया एवं गर्दन का दर्द जीवन–विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि	69–80
पाठ–ख	पेशी–तंत्र—परिचय पेशी तंत्र के विकार—पेशीय डिस्ट्राफी, स्लीपडिस्क (कंकाल पेशीय रोग) जीवन–विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि	81–94
इकाई–4	**शारीरिक तंत्रों का रचनात्मक परिचय संबंधित रोग एवं रोगों का प्रबन्धन–II**	**95–129**
पाठ–क	श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र—परिचय श्वसन तंत्र एवं पाचन तंत्र के विकार— दमा एवं ब्रोंकाइटिस, मधुमेह, हर्निया जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि	95–122
पाठ–ख	रोग–प्रतिरोधी तंत्र—परिचय रोग प्रतिरोध एवं जीवन विज्ञान द्वारा प्रबन्धन प्रविधि	123–129
इकाई–5	**आहार एवं स्वास्थ्य**	**130–155**
पाठ–क	आहार की अवधारणा एवं आवश्यकताएँ आहार के घटक पोषक तत्त्व	130–145
पाठ–ख	संतुलित आहार की अवधारणा एवं प्रारूप आहार, चयापचय, उपवास एवं स्वास्थ्य	146–155
सन्दर्भ–ग्रंथ		**156**
अभ्यासात्मक कार्य		**157**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun